विपाशा

हिमाचल प्रदेश के भाषा एवं संस्कृति विभाग की द्वैमासिक पत्रिका

डॉ. यशवन्त सिंह परमार विशेषांक

हिमाचल प्रदेश के पूर्ण राज्य घोषित होने के अवसर पर 25 जनवरी, 1971 को प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी के साथ माल रोड से गुजरते, जनता का अभिवादन स्वीकार करते हुए हिमाचल निर्माता डॉ. यशवन्त सिंह परमार।

डॉ. यशवंत सिंह परमार विशेषांक

विपाशा

साहित्य, संस्कृति एवं कला की द्वैमासिकी

वर्ष 39, अंक 222, सितम्बर-अक्तूबर, 2023

मुख्य संपादक

डॉ. पंकज ललित

निदेशक, भाषा एवं संस्कृति, हि.प्र.

उपसंपादक

अजय शर्मा

सम्पर्क : संपादक-विपाशा, भाषा एवं संस्कृति विभाग, हि.प्र.
39-एस.डी.ए., शिमला-171009,
दूरभाष : 0177-2626614-15-16, फैक्स : 2628789
सदस्यता शुल्क बैंक खाते में जमा करवाकर उसका विवरण और अपना पूरा पता
e-mail : vipashapatrika@gmail.com पर भेजें।
बैंक खाता संख्या : 50100562040901, **IFSC:** HDFC0002447
खाता धारक : निदेशक, भाषा एवं संस्कृति
SBI COLLECT: https://www.onlinesbi.sbi/sbicollect/icollecthome.htm?corpID=5493608
त्रैवार्षिक शुल्क : 150 रुपये, वार्षिक : 60 रुपये, एक प्रति : 15 रुपये

क्रम

3. संपादकीय

लेख

5. हिमाचल निर्माता डॉ. यशवंत सिंह परमार बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न दूरदर्शी राजनेता : **पी.सी. लोहमी**

12. डॉ. परमार का हिमाचल के निर्माण और विकास में योगदान : **श्रीनिवास जोशी**

18. एक शुचितापूर्ण जीवन : डॉ. यशवंत सिंह परमार : **पद्‌म गुप्त अमिताभ**

23. सोने सा खरा, हिमाचल का एक पुरखा : **नवनीत शर्मा**

27. कहानी हिमाचल के गठन की : **डॉ. यशवंत सिंह परमार**

31. विशाल हिमाचल की स्थापना और डॉ. यशवंत सिंह परमार : **सुदर्शन वशिष्ठ**

37. कर्मयोगी और सच्चे लोकनायक डॉ. परमार : **जगदीश शर्मा**

40. राजनीति और लोक संस्कृति के पुरोधा : डॉ. परमार : **आचार्य ओमप्रकाश राही**

44. डॉ. यशवंत सिंह परमार होने के मायने : **मनजीत शर्मा**

संस्मरण

48. प्रदेश के विकास का जुनून : **आर.आर. वर्मा**

50. कृषि महाविद्यालय पालमपुर में डॉ. परमार : **डॉ. सुशील कुमार फुल्ल**

53. डॉ. परमार : कुछ संस्मरण : **के. आर. भारती**

57. जब से हिमाचल है तब से हिमाचली : **डॉ. प्रत्यूष गुलेरी**

59. विराट व्यक्तित्व के धनी : डॉ. परमार : **राजेंद्र राजन**

67. लोक संस्कृति के संरक्षक यशवन्त सिंह परमार : **विद्यानंद सरैक**

साक्षात्कार

70. पहाड़ी व्यंजन, पहाड़ी भाषा के पक्षधर डॉ. वाई. एस परमार : **कुश परमार से दिलीप वसिष्ठ की बातचीत**

74. उनका ऊँचा व्यक्तित्व था : **कंवर अजय बहादुर सिंह से अनन्त आलोक की बातचीत**

77. आत्मनिर्भर हिमाचल था डॉ. परमार का सपना : **आनंद परमार से राजन पुंडीर की बातचीत**

79. विकास के लिए सड़क : डॉ. परमार : **मामराज शर्मा की देवेन्द्र सिंह शास्त्री से बातचीत**

82. पारदर्शिता भरा जीवन : **तुलसी राम चौहान से अनिल हारटा की बातचीत**

वक्तव्य

83. डॉ. परमार : पहाड़ी राज्य का नेतृत्व   95. डॉ. परमार की बहुमुखी विकास दृष्टि

115. **यादगार छायाचित्र,**   123. **जीवन वृत्त**

रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं, इनमें संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं। -**संपादक**

संपादकीय

हिमाचल का इतिहास नायक

"कई बार सोचता हूँ कि इस उच्च नैतिकता के पाबंद लोग धीर-धीरे इस दुनिया से जा रहे हैं और उनकी जगह लेने वाले बहुत कम पैदा हो रहे हैं। पंजाब में प्रताप सिंह कैरों ने जो भूमिका अदा की थी, वही हिमाचल में डॉ. पामार ने किया। दोनों ही अपने-अपने प्रांत के दीवाने थे।...हिमाचल आज जो भी है, बहुत कुछ परमार के कारण है। उन्हें यदि हिमाचल का निर्माता कहा जाए तो गलत न होगा।...डॉ. परमार को हिमाचल के इतिहास से कोई नहीं निकाल सकता। मेरे सामने केवल उस परमार का चित्र है, जो हिमाचल का जन्मदाता है, जिसने हिमाचल को हिमाचल बनाया।"

ये शब्द 'वीरप्रताप' के यशस्वी संपादक श्रीवीरेंद्र के हैं, जिन्होंने हिमाचल का बनना और डॉ. पामार का ज़माना एक अनुभवी पत्रकार की नज़र से देखा था। 2 मई, 1981 को शिमला में डॉ. यशवंत सिंह परमार का निधन होने के बाद श्रीवीरेन्द्र ने 'डॉ. परमार भी चले गए' शीर्षक से अपने संपादकीय में उनके प्रति ये विचार व्यक्त किए थे। तभी डॉ. परमार के लिए 'हिमाचल निर्माता' का सम्बोधन आम लोगों की ज़ुबान पर चढ़ गया था। दरअसल यह उनके प्रति अवाम के मन का भी शब्द था।

हिमाचल के लिए पूर्ण राज्य का सपना पालते हुए डॉ. यशवंत सिंह परमार पहाड़ की समस्याओं को लेकर गंभीरता से अध्ययन और चिंतन कर रहे थे। 15 अप्रैल, 1970 को अपने भाषण में उन्होंने कहा था—"पहाड़ों की अपनी विशिष्ट समस्याएँ हैं और अखिल भारतीय प्राथमिकता हमेशा इसके उपयुक्त नहीं हो सकती। यह तथ्य राष्ट्रीय नेतृत्व और आयोजकों के समक्ष लाए गए हैं, जिन्होंने, मुझे खुशी है, हमारी वास्तविक कठिनाइयों को अनुभव करना शुरू कर दिया है। वास्तव में पहाड़ों के लिए एक नए चार्टर की ज़रूरत है, जिससे देश के इस महत्त्वपूर्ण किन्तु विरले बसे हुए क्षेत्र के प्रति हुए अन्याय को दूर करने की कोशिश की जा सके।"

"पहाड़ी लोग बुनियादी तौर पर शांतिप्रिय और कानून के पाबंद हैं, किन्तु इस गुण को कमज़ोरी नहीं समझना चाहिए। वे सहानुभूति पूर्वक व्यवहार के अधिकारी हैं और मुझे विश्वास है कि उनके कल्याण के कार्यक्रम निर्धारित करते समय इन तथ्यों को ध्यान में रखा जाएगा।"

अब उन्हें विश्वास हो चुका था कि पूर्ण राज्य का सपना पूरा हो जाएगा। इस उपलब्धि के लिए उन्होंने समाज-आर्थिक तथा भाषायी-सांस्कृतिक अध्ययन व्यापक रूप से किया था और प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्रों की यात्राएँ निरंतर करते रहे थे। इसी के

फलस्वरूप वह समझ गए थे कि हिमाचल भूमि की अलग पहचान है। इसी अध्ययन के आधार पर उन्होंने केंद्रीय नेतृत्व को भली प्रकार स्पष्ट कर दिया था कि हिमाचल अलग पूर्ण राज्य के लिए हर तरह से सक्षम है। डॉ. परमार की इसी सर्जक ज़िद के फलस्वरूप 25 जनवरी, 1971 को प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने स्वयं शिमला आकर हिमाचल को भारत का 18वां पूर्ण राज्य घोषित किया। डॉ. परमार के साथ हिमाचल वासियों के लिए यह बेहद खुशी की बात थी। इसके साथ ही लोकप्रिय मुख्यमंत्री ने राज्य के विकास के लिए बहुमुखी योजनाओं का सूत्रपात किया और हिमाचल दिवस, 1976 की पूर्व संध्या पर आकाशवाणी शिमला से प्रसारित संदेश में उन्होंने गहरा संतोष यों व्यक्त किया था—"इन 28 सालों में हम अपने प्रदेश को कहाँ से कहाँ ले आए हैं, यह सोचकर गहरा संतोष होता है। खासतौर पर जब 1948 से पहले और आज के हिमाचल की तुलना करता हूँ तो अपने लोगों की मेहनत लगन और बाधाओं से लगातार संघर्ष पर मेरा सर गर्व से ऊँचा हो जाता है। मुझे फख्र है कि इन्तहाई गुरबत, पसमान्दगी और गैर-यकीनी हालात के बावजूद हमारे लोग इस बात को बखूबी समझते थे कि अगर उन्हें बेहतर तौर पर ज़िंदगी गुज़ारनी है और तरक्की के मैदान में आगे बढ़ना है तो उन्हें एक इकाई के रूप में कायम रहना होगा...फिर चाहे जो भी मुश्किलात आएँ और चाहे जो भी कीमत पड़े। ...हमें खुशी है कि हम अपनी इस जद्दोजहद में कामयाब हुए। हमारे प्रदेश को उचित आकार भी मिला और जायज़ दर्जा भी। आज हम बिना झिझक कह सकते हैं कि तरक्की की दौड़ में भी हम किसी से पीछे नहीं।

आज के देशकाल में हिन्दुस्तान और हिमाचल के राजनीतिक परिदृश्य से पीछे मुड़कर डॉ. यशवंत सिंह परमार और उनके ज़माने के राजनीतिक परिदृश्य पर नज़र दौड़ाते हैं तो डॉ. परमार गांधी-नेहरू युग के विख्यात नेता थे। हिमाचल और पहाड़ों के बहुमुखी विकास के दृष्टि सम्पन्न नेता होने के साथ वह एक उच्च-नैतिकता के नेता भी थे। उनकी नैतिकता और योग्यता के कई सच्चे किस्से आज भी जनता के बीच सुनने को मिलते हैं। 16 मार्च, 1964 को विधानसभा में दिए अपने बक्तव्य में वह कहते हैं—"बहुत अच्छी बात ये है कि सहनशीलता होनी चाहिए और खासतौर से विचारों की सहनशीलता होनी चाहिए बगैर हिंसा के। मेरे नज़दीक अहिंसा न सिर्फ मांस नहीं खाने से, अंडा न खाने से, जीव को न मारने से, बल्कि मैं तो समझता हूँ जो शब्द कहे जाएँ और जिनसे किसी के मन को ठेस लगे, दुख पहुँचे वह भी हिंसा है। मेरे नज़दीक वह बहुत बड़ी हिंसा है। इसलिए मुझे अफसोस है कि अहिंसा की बात करते हैं और हिंसा करते हैं। हम जितना कुछ मुमकिन हो सके, जो मौका इस माननीय सदन के ज़रिये से अपने प्रदेश और समाज की सेवा करने का हम सब लोगों को मिला है उसको हम ठीक तरह से इस्तेमाल करके, इस प्रदेश को आगे पहुँचा सकें।"

अहिंसा के पालन की इस व्याख्या में गांधी विचार साक्षात उतर आता है और यह भविष्य के लिए सतर्क करनेवाली उनकी दृष्टि थी।

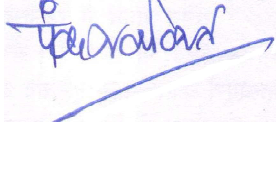

लेख

हिमाचल निर्माता डॉ. यशवंत सिंह परमार बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न दूरदर्शी राजनेता

❑ पी.सी. लोहमी

हिमाचल की राजनीति के पुरोधा और समकालीन मुख्यमंत्रियों में अग्रणी डॉ. यशवंत सिंह परमार एक बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न और दूरदर्शी नेता थे, जिन्होंने लगभग तीन दशक तक प्रदेश के राजनैतिक और सामाजिक परिवेश को मूर्तरूप देने में अभूतपूर्व योगदान दिया। एक पिछड़े हुए पहाड़ी क्षेत्र की समस्याओं, सम्भावनाओं और क्षमताओं का गहन आकलन कर डॉ. परमार ऐसी दूरगामी नीतियों को कार्यान्वित करने के प्रति समर्पित रहे, जो भविष्य में हिमाचल प्रदेश के सर्वांगीण विकास की आधारशिला बनी।

डॉ. परमार की पथ-प्रदर्शक नीतियाँ तथा अद्वितीय पहल हिमाचल की विकास गाथा का मील का पत्थर बनी, जिनसे प्रदेश दृढ़ता से प्रगति की ओर अग्रसर हुआ। हिमाचल की नैसर्गिक सुन्दरता और पर्यावरण तथा सामाजिक ताने-बाने से छेड़-छाड़ किये बिना प्रदेश को ऐसा आकार दिया, जिससे हिमाचल एक सशक्त और विकसित राज्य के रूप में उभर कर सामने आया। इसी कारण उन्हें हिमाचल निर्माता के रूप में पहचान मिली।

लगभग चार वर्ष तक सिरमौर राज्य में सत्र न्यायाधीश के रूप में कार्य करने के बाद उन्होंने राजनैतिक कारणों से पद से त्यागपत्र दे दिया तथा प्रजामण्डल आन्दोलन से जुड़ गए। स्वतंत्रता प्राप्त करने के पश्चात् उन्होंने पहाड़ी राज्यों को एकसूत्र में बांधकर 1948 में हिमाचल के गठन में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की तथा अपनी योग्यता तथा कुशल नेतृत्व के कारण वे हिमाचल के प्रथम मुख्यमंत्री बने और 24 मार्च, 1952 से 31 अक्तूबर 1956 तक पद पर बने रहे। हिमाचल के पंजाब में विलय के बढ़ते हुए दबाव के बीच उन्होंने प्रदेश का अस्तित्व बचाने के लिए पद से त्यागपत्र दिया तथा पुनः संघर्ष जारी रखा।

प्रथम जुलई, 1963 को हिमाचल को केन्द्रशासित प्रदेश का दर्जा मिलने के बाद डॉ. परमार पुनः मुख्यमंत्री बने, परन्तु इस बार उनकी डगर आसान नहीं थी। उनके कट्टर विरोधी ठाकुर कर्म सिंह एवं वरिष्ठ नेता थे तथा 40 सदस्यीय विधानसभा में बहुमत के अतिरिक्त उन्हें तत्कालीन उपराज्यपाल श्री वजरग बहादुर सिंह (बद्री) का भी पूर्ण समर्थन प्राप्त था, परन्तु अंतिम क्षण में मैदान छोड़ गए और डॉ. परमार के मुख्यमंत्री बनने का मार्ग प्रशस्त हुआ।

पंजाब के पुनर्गठन के बाद 1 नवम्बर, 1966 को पंजाब के पहाड़ी क्षेत्रों का हिमाचल

में विलय हो गया तथा हरियाणा का नए राज्य के रूप में गठन हुआ।

1967 के विधानसभा चुनावों में कांग्रेस की 60 में से 34 सीटों पर विजय हुई, परन्तु विधायक दल के नेता के रूप में उनका चुनाव निर्विरोध नहीं हुआ। कामरेड रामचन्द्र ने उनके विरुद्ध चुनाव लड़ा, परन्तु उनके पक्ष में केवल 6 मत पड़े।

डॉ. परमार द्वारा मुख्यमंत्री का पद ग्रहण करने के बाद भी असंतुष्ट कांग्रेसी नेताओं का एक बड़ा गुट जिसका नेतृत्व ठाकुर कर्म सिंह कर रहे थे, उनका विरोध करता रहा।

विधानसभा के मॉनसून सत्र में विपक्ष द्वारा सरकार के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव लाया गया तो ऐसा प्रतीत हो रहा था कि सरकार का गिरना निश्चित है। सत्र के दौरान एक नाटकीय घटनाक्रम में ठाकुर कर्म सिंह, पं. पद्मदेव और पंडित विद्याधर सदन से उठकर चले गए तथा डॉ. परमार से मंत्रणा के बाद जब वे सदन में लौटे तो अविश्वास प्रस्ताव का विरोध करने की घोषणा कर दी और प्रस्ताव गिर गया। डॉ. परमार तथा असंतुष्ट नेताओं के बीच समझौते का खुलासा तब हुआ जब ठाकुर कर्म सिंह तथा पं. पद्मदेव को कैबिनेट मंत्री तथा पंडित विद्याधर को उपमंत्री के रूप में मंत्रिमण्डल में शामिल किया गया।

भारत-पाक युद्ध के बाद 1972 में हुए विधानसभा चुनावों में कांग्रेस को भारी बहुमत मिला तथा सभी प्रमुख नेता, जिनमें मण्डी ज़िला से ठाकुर कर्म सिंह तथा पंडित सुखराम शामिल थे, चुनावों में विजयी रहे। मण्डी में ठाकुर कर्म सिंह तथा पंडित सुखराम के एक-दूसरे के विरुद्ध कार्य करने के आरोप लगे तथा डॉ. परमार ने कूटनीति के अंतर्गत एक चौंकाने वाला निर्णय लिया तथा जिन नेताओं पर पार्टी विरोधी कार्य करने के आरोप लगे थे, उन्हें मंत्रिमण्डल में शामिल नहीं किया और मण्डी से मनसाराम को राज्यमंत्री के रूप में शामिल किया गया। मनसाराम को उनके मंत्रिमण्डल में शामिल किये जाने के बारे कोई सूचना नहीं थी तथा पत्रकारों ने उन्हें इस बारे में बताया तो स्तब्ध रह गए और कहा कि जब तक डॉ. परमार से इस बारे में सूचना नहीं आती कोई बधाई स्वीकार नहीं करूँगा।

1972 में मुख्यमंत्री बनने के बाद डॉ. परमार 28 जनवरी, 1977 तक पद पर बने रहे तथा उन्हें असंतुष्ट विधायकों के विरोध का सामना करना पड़ा। पार्टी के 18 असंतुष्ट विधायक ठाकुर कर्म सिंह और डॉ. सालीग्राम के नेतृत्व में चुपचाप दिल्ली पहुँच गए तथा प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी से भेंट कर डॉ. परमार को हटाने की माँग की। परन्तु जब इंदिरा गांधी ने प्रश्न किया कि 'आपका नेता कौन है' तो सभी निरुत्तर हो गए तथा श्रीमती गांधी को आभास हो गया कि इनका उद्देश्य केवल डॉ. परमार को हटाना है।

कूटनीति में माहिर डॉ. परमार ने एक और चाल चली और डॉ. सालिग्राम को पद से बर्खास्त कर दिया, परन्तु एक मुखर असंतुष्ट नेता सरला शर्मा जो कि राज्यमंत्री थीं कोई कार्रवाई नहीं की। इसी बीच असंतुष्टों ने फतेहपुर में एक बड़ी रैली का आयोजन किया, जिसे तत्कालीन अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की महासचिव चन्द्रशेखर ने सम्बोधित किया। कुछ पत्रकार जिनमें मैं भी शामिल था, रैली कवर करने फतेहपुर गए। रैली से लौटते समय शीर्ष असंतुष्ट नेता नेकराम नेगी हमारे साथ थे तथा उन्होंने कहा, हम होशियारपुर मार्ग से होकर चलेंगे। लगभग एक घंटे के बाद हम 'भृगु संहिता' के ज्योतिष कार्यालय, रेलवे मण्डी मार्ग पहुँच गए। पंडित जी ने सभी को कुंडलियों के रजिस्टर दिए और अपनी-अपनी कुंडलियाँ ढूँढने को कहा। काफी परिश्रम के बाद भी मैं और मेरे साथी पत्रकार बनियाल और प्रभाकर

अपनी कुंडली नहीं ढूँढ पाये, परन्तु नेगी जी भाग्यशाली रहे और उनकी कुंडली मिल गई।

पंडित जी ने कुंडली देख एक इंडेक्स कार्ड निकाला जिसमें लिखा था कि नेक राम नामक व्यक्ति जिसकी आयु 40 वर्ष है और जो नदी के पास किसी शहर में पैदा हुआ है, रविवार को तीन व्यक्तियों के साथ जिनके नाम श्रावण, विद्या और प्रकाश होंगे यहाँ आएगा। नेगी जी को हमारे प्रथम नाम मालूम नहीं थे तथा कुछ कहना चाहते थे तो मैंने उन्हें टोक कर कहा। यह हम तीनों के नाम हैं। पंडित जी ने नेगी जी को एक नोटबुक लाने को कहा और हम तीनों को बाहर भेज दिया। लगभग एक घंटे के बाद जब नेगी जी बाहर आए तो हमने उनसे भविष्यवाणी के बारे में पूछा तो वे चुप रहे। इस घटना के दो-तीन दिन बाद डॉ. परमार ने बड़ोग में एक प्रेसवार्ता की, जिसमें नेगी जी ने डॉ. परमार का समर्थन करने की घोषणा कर दी तथा असंतुष्टों के अभियान के अंत का आरम्भ हो गया।

डॉ. परमार एक अतिस्वाभिमानी व्यक्ति थे तथा दिल्ली में संजय गांधी के बढ़ते हुए प्रभाव से असहज महसूस करने लगे थे तथा उन्होंने मुख्यमंत्री पद छोड़ने का मन बना लिया। उन्होंने इस बारे में अपने निकट सहयोगी कैबिनेट मंत्री लाल चंद प्रार्थी को विश्वास में लिया। वास्तव में अपने उत्तराधिकारी के रूप में श्री प्रार्थी उनकी पहली पसंद थे तथा उन्होंने श्री प्रार्थी को दिल्ली जाकर केंद्रीय नेताओं से मिलने की सलाह दी। श्री प्रार्थी ने इस बारे में अपने एक विश्वस्त अधिकारी से बात की तथा उन्होंने भी श्री प्रार्थी को शीघ्र दिल्ली जाने का परामर्श दिया। परन्तु नियति को कुछ और ही मंजूर था तथा दिल्ली जाते समय उन्हें परवाणु में दमे का दौरा पड़ा तथा स्वस्थ होने में काफी समय लगा।

इस बीच ठाकुर रामलाल मुख्यमंत्री की दौड़ में काफी आगे निकल गए, जबकि वे डॉ. परमार की पहली पसन्द नहीं थे।

मीडिया की आलोचना के प्रति सहिष्णु

डॉ. परमार प्रेस-सेवी नहीं थे तथा आलोचना के प्रति सहिष्णु थे, परन्तु आलोचना का उत्तर देने का उनका अपना तरीका था। जब डॉ. परमार ने महारानी महिन्दर कौर से चायल पैलेस और ओक ओवर क्रय किया तो विपक्ष द्वारा उनके निर्णय की काफी आलोचना हुई। उन्होंने तत्कालीन लोक संपर्क विभाग के निदेशक हरिकृष्ण मिट्टू से प्रेस पार्टी चायल ले जाने का प्रबंध करने के आदेश दिये तथा तत्कालीन केंद्रीय पर्यटन एवं नागरिक उड्डयन राज्य मंत्री डॉ. सरोजनी महिषी को भी आमंत्रित किया, जो चायल पैलेस की विशाल वाटिका और घने देवदार के वनों को देखकर बहुत प्रभावित हुईं तथा डॉ. परमार को सम्पति क्रय करने के लिए बधाई दी।

डॉ. परमार में एक सामान्य व्यक्ति और अभिजात्य का समन्वय था। वे ग्रामीण क्षेत्रों में जाने के लिए पारम्परिक पहाड़ी पोशाक पहनते तथा आम लोगों के साथ लोकनृत्य (नाटी) में शामिल होते और सरकारी कार्यक्रमों और महत्त्वपूर्ण बैठकों में सुरुचिपूर्ण और औपचारिक वस्त्र धारण करते थे। डॉ. परमार का अपने विश्वसनीय साथियों, विशेषकर अधिकारियों पर विश्वास का स्तर बहुत ऊँचा था तथा वे अपने विश्वस्त अधिकारियों के कारण कटु आलोचना सहन करते थे, परन्तु उनकी साख पर आंच नहीं आने देते थे।

लोकनृत्य एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों में गहरी रुचि रखने वाले डॉ. परमार महिलाओं में बहुत लोकप्रिय थे तथा उनकी खेलों में विशेषकर आईस स्केटिंग, स्कीइंग, गोल्फ तथा

क्रिकेट में विशेष रुचि थी। पहाड़ी व्यंजनों के शौकीन डॉ. परमार सभी को पहाड़ी तथा स्थानीय व्यंजन खाने के लिए प्रेरित करते थे। 1971 के लोकसभा चुनावों के दौरान जब मैं और वरिष्ठ पत्रकार पी.एन. शर्मा चुनाव कवर कर वापिस लौट रहे थे तो भराड़ीघाट में सड़क किनारे डॉ. परमार की कार दिखाई दी। हम उत्सुकतापूर्वक बाहर निकले और ढाबों की ओर देखा तो डॉ. परमार, सत्यावती डांग के साथ एक लकड़ी के बेंच पर बैठे कढ़ी-चावल खा रहे थे। जैसे ही उनकी नज़र हम पर पड़ी तो उन्होंने हाथ हिलाकर अपनी ओर आने का इशारा किया और भोजन करने का आग्रह किया। उन्होंने कहा कि उन्हें भराड़ीघाट के कढ़ी-चावल बहुत पसंद हैं और वे अक्सर यहाँ रुकते हैं। प्रवास के दौरान वे अपने साथ चलने वाले पत्रकारों और अधिकारियों के खान-पान का विशेष ध्यान रखते थे। लोकसभा चुनावों में जब हम शिमला संसदीय क्षेत्र को कवर कर रहे थे तो लगभग हर स्थान पर खाने को चावल और मांस शामिल रहता, जब हमारे साथ प्रवास कर रहे लोकसंपर्क विभाग के संयुक्त निदेशक चतर सिंह ने डॉ. परमार के ध्यान में लाया कि मैं विशुद्ध शाकाहारी हूँ तो उन्होंने तत्काल अपने निजी सचिव को निर्देश दिये कि सभी स्थानों पर शाकाहारी भोजन और दही की व्यवस्था करें।

दूसरा विवाह

डॉ. परमार जिस तरह अपनी राजनैतिक चाल को गुप्त रखते, उसी प्रकार वे अपने निजी जीवन को भी गुप्त रखते तथा उनके अत्यंत करीबी भी इससे अनभिज्ञ रहते तथा उनका दूसरा विवाह इसका प्रमाण था।

14 अक्तूबर को डॉ. परमार ने 'हिन्दुस्थान समाचार संवाद समिति के कार्यालय का उद्‌घाटन किया था। औपचारिक कार्यक्रम का आयोजन ग्रैंड होटल में किया गया। कार्यक्रम के बाद हिन्दुस्थान समाचार के मुख्य सम्पादक तथा महाप्रबंधक बालेश्वर अग्रवाल जो विशेष रूप से कार्यक्रम में भाग लेने शिमला आए थे, मुझे आदेश दिया कि मैं व्यक्तिगत रूप से धन्यवाद पत्र डॉ. परमार को सौंपूँ।'

जब मैंने उनके निजी सचिव आर.सी. कौशिश से मिलने के लिए समय माँगा तो उन्होंने कहा कि डॉ. परमार का बाहर जाने का कार्यक्रम है अतः मैं प्रातः 8 बजे ओकओवर पहुँच जाऊँ और मैं 16 अक्तूबर को निर्धारित समय पर वहाँ पहुँच गया और कुछ देर में कांग्रेस विधायक केवल राम चौहान भी वहाँ आ गए। लगभग डेढ़ घंटे बाद जब डॉ. परमार बाहर आए तो सत्यावती डांग भी उनके साथ थीं तथा मैंने पत्र उनको सौंपा और वे दोनों पार्क में खड़ी कार में बैठकर चले गए। शाम को 6 बजे आकाशवाणी शिमला के स्थानीय बुलेटिन में डॉ. परमार और सत्यावती डांग के विवाह तथा बम्बई पहुँचने का समाचार प्रसारित हुआ तो सुबह सारे घटनाचक्र की पुनरावृत्ति हो गई। शाम को जब कॉफी हाउस में श्री कौशिश से भेंट हुई तो उन्होंने शरारत भरी मुस्कान में कहा, 'आप तो वहीं थे, पर आपको इस बारे में कतई खबर नहीं मिली।'

पूर्णराज्यत्व के संघर्ष के अग्रदूत

डॉ. परमार की सबसे बड़ी उपलब्धि पूर्णराज्य का दर्जा दिलवाना था। वे पूर्ण राज्य के लम्बे संघर्ष के अग्रदूत थे। 1968 में जब तत्कालीन उपप्रधानमंत्री मोरारजी देसाई शिमला आए तो उन्होंने सार्वजनिक मंच से पूर्ण राज्य की माँग को सिरे से नकार दिया तथा कहा कि हिमाचल जैसा पहाड़ी राज्य आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर नहीं हो सकता। केंद्र सरकार से

बार-बार माँग उठाने के बाद डॉ. परमार यह मनवाने में सफल हो गए कि पूर्ण राज्य का दर्जा आर्थिक निर्भरता नहीं, अपितु प्रदेश की विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान को अक्षुण्ण रखने के लिए अपरिहार्य है और 25 जनवरी, 1971 को भारत के मानचित्र में हिमाचल का देश के 18वें राज्य के रूप में उदय हुआ।

हिमाचल के विकास के बारे में उनका चिंतन स्पष्ट था तथा पहली पंचवर्षीय योजना के दौरान योजना आयोग ने उनसे प्रदेश की प्राथमिकताओं के बारे में पूछा तो उन्होंने कहा कि मेरी प्रथम, द्वितीय, तृतीय प्राथमिकतायें सड़क निर्माण है। उनका हद विश्वास था कि कठिन भौगोलिक स्थिति से जूझ रहे हिमाचल प्रदेश के दूर-दराज़ क्षेत्रों का विकास तब तक अर्थहीन है, जब तक इन क्षेत्रों को सड़क से नहीं जोड़ा जाता। यदि आज डॉ. परमार जीवित होते तो उन्हें इस बात का संतोष होता कि हर क्षेत्र का सड़क से सम्पर्क स्थापित करने का उनका सपना साकार हो रहा है।

बागवानी और विद्युत उत्पादन को डॉ. परमार हिमाचल का भविष्य मानते थे। अक्सर कहा करते थे कि एच.पी. का अर्थ ही हॉर्टीकल्चर तथा पॉवर है तथा नाथपा-झाकड़ी परियोजना उनकी सोच की देन है।

जापान तथा कुछ अन्य देशों के भ्रमण के बाद डॉ. परमार त्रिमुखी वानिकी की अवधारणा को लेकर आए तथा उन्होंने ऐसे वृक्ष लगाने को प्रोत्साहन देने का आह्वान किया जिनसे भोजन, चारा तथा ईंधन की आवश्यकता की पूर्ति हो सके।

पर्यावरण के बारे में डॉ. परमार अत्यंत संवेदनशील थे। जब तत्कालीन उपराज्यपाल द्वारा नारकंडा में परिधिगृह के निर्माण के लिए देवदार के वृक्ष कटवाये गए तो वे इतने क्रोधित हुए कि इस परिधिगृह में कभी नहीं ठहरे। उनके कार्यकाल में प्रदेश में औद्योगिकरण को प्रोत्साहित करने के लिए परवाणू, काला अम्ब, पौंटा साहिब, गगरेट तथा बद्दी में औद्योगिक क्षेत्रों को विकसित किया गया। आधारभूत ढांचा विकसित न होने के कारण उद्योगपति हिमाचल में उद्योग लगाने में रुचि नहीं दिखा रहे थे तथा उनको आकर्षित करने के लिए कई प्रकार के प्रोत्साहन दिये गए तथा प्रदेश अधिकांश जन उपक्रम जो औद्योगिक विकास को गति देने के लिए आवश्यक थे डॉ. परमार के कार्यकाल में ही स्थापित किये गए।

पूर्व विधायकों को पेंन्शन तथा भू-सुधार कानून

पूर्व विधायकों को पेंन्शन देने के लिए डॉ. परमार ने कानून बनाया तो उनकी भारी ओलाचना हुई, परन्तु वे निर्णय पर अटल रहे और सभी पूर्व सांसद तथा राज्यों के पूर्व विधायक न केवल सम्मानजनक पेंन्शन प्राप्त कर रहे हैं बल्कि उसमें लगातार वृद्धि भी हो रही है।

डॉ. परमार ने हिमाचल प्रदेश किरायेदार तथा भूमि-सुधार अधिनियम पारित कर न केवल किरायेदारों को मालिकाना हक दिया, बल्कि धारा 118 के माध्यम से गैर कृषकों को भूमि खरीदने के अधिकार से वंचित कर दिया। वे भली-भांति जानते थे कि बाहर के लोग भोले-भाले हिमाचलियों की ज़मीनें खरीद कर उन्हें भूमिहीन बना देंगे। इसी धारा के कारण आज किसानों की भूमि सुरक्षित है तथा उनमें जागरूकता पैदा हुई। इस कानून का लघु ज़मींदारों द्वारा भारी विरोध हुआ तथा उनके आंदोलन ने हिंसात्मक रूप भी लिए, परन्तु डॉ. परमार अडिग रहे तथा कानून को सख्ती से लागू किया गया।

डॉ. परमार की कार्यशैली अलग प्रकार की थी तथा वे अधिकांश फाइलें घर पर ही

निपटाते थे। दोपहर बाद सचिवालय में लोगों से मिलते थे। यदि कोई महत्त्वपूर्ण बैठक या अन्य कार्यक्रम निर्धारित होते तभी वे दोपहर से पूर्व सचिवालय आते थे। वे समय के बहुत पाबंद थे तथा मंत्रियों और विधायकों को भी उनसे मिलने के लिए समय लेना पड़ता था। उन्हें अनावश्यक वार्तालाप पसन्द नहीं था तथा मिलने वालों का निपटारा शीघ्रता से करते थे। उनके कार्यकाल में प्रदेश में दो बड़े आंदोलन हुए जिसमें 1968 में अध्यापकों द्वारा कोठारी आयोग के संशोधित वेतनमान की सिफारिशों को लागू करना तथा 1970 में कर्मचारियों द्वारा पंजाब वेतनमान देने की माँग के समर्थन में 35 दिनों की हड़ताल शामिल थे।

अध्यापकों की हड़ताल सत्तारूढ़ दल के नेताओं के दबाव के कारण विफल हो गयी परन्तु कुछ समय बाद उनकी माँग स्वीकार कर ली गई। कर्मचारियों का आंदोलन मेरे लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण था, क्योंकि मैंने कुछ समय पूर्व ही हिन्दुस्थान समाचार के प्रतिनिधि के रूप में शिमला में कार्यभार सम्भाला था। उस समय जालंधर से उर्दू-हिन्दी और पंजाबी में 16 समाचार पत्र प्रकाशित होते थे तथा सभी समाचार पत्र हिन्दुस्थान समाचार की सेवाएँ ले रहे थे। सभी समाचार पत्रों में हिन्दुस्थान समाचार के हड़ताल सम्बंधी समाचार प्रमुखता से छपने के कारण सरकार काफी नाराज़ हुई। उन्हीं दिनों दि ट्रिब्यून में ताराचंद गुप्ता, जो कि एक बहुत वरिष्ठ पत्रकार थे, शिमला में कार्यरत थे। सरकार की आँख की किरकिरी बन गए थे। मुझे उनका सहयोग तथा परामर्श लगातार मिलता रहा, जो भविष्य में भी अत्यंत लाभदायक सिद्ध हुआ। आंदोलन को कुचलने के लिए सी.आर.पी.एफ. बुलाई गई थी तथा उसके द्वारा रिपोर्टिंग रूम के बाहर कर्मचारियों पर लाठी चार्ज भी किया गया जिसमें कुछ कर्मचारी और स्थानीय लोग घायल भी हुए। हड़ताल के बीच में ही केंद्र सरकार ने सी.आर.पी.एफ. को वापिस बुला लिया, जबकि सरकार चाहती थी कि सी.आर.पी.एफ. आन्दोलन समाप्त होने के बाद ही वापिस भेजी जाए। हमने 'मुख्यमंत्री के सी.आर.पी.एफ. को कुछ समय तक न हटाये जाने के बावजूद सी.आर.पी.एफ. वापिस' के शीर्षक से खबर छपने के बाद तत्कालीन मुख्य सचिव बहुत क्रोधित हुए और हम पर हड़ताल को बढ़ावा देने का आरोप भी लगा दिया।

25 जनवरी, 1975 की रात को आपातकाल की घोषणा के बाद विरोधी राजनैतिक नेताओं और कार्यकर्ताओं की धर-पकड़ आरम्भ हो गई। गुप्तचर विभाग के अधिकारी द्वारा यह सूचना मिलने के बाद कि मुझे भी गिरफ्तार किया जा सकता है, मेरे सहयोगियों ने मुझे भूमिगत होने की सलाह दी तथा मैं 26 जून को ही स्टेट्स मैन के वरिष्ठ पत्रकार प्रेम कुमार, जो मेरे पास ही ठहरे हुए थे के साथ चण्डीगढ़ चला गया। इसी बीच डॉ. परमार ने अपने निवास स्थान पर पत्रकारवार्ता की तथा जब उन्हें यह मालूम हुआ कि गिरफ्तार होने की आशंका से मैं प्रदेश से बाहर चला गया हूँ तो उन्होंने मेरे एक सहयोगी पत्रकार से मुझे वापिस बुलाने और उनसे मिलने को कहा। जब मैं शिमला लौटकर डॉ. परमार से मिला तो उन्होंने कहा 'No body is going to arrest you' (तुम्हें कोई ऐरेस्ट नहीं कर रहा) और आपातकाल के दौरान जब भी उनसे मिलना होता तो वे पूछते 'कोई परेशानी तो नहीं है'।

आपातकाल के दौरान पुलिस आई.वी. तथा सी.आई.डी. की कड़ी निगरानी रही, परन्तु बंदी नहीं बनाया गया। डॉ. परमार बदले की भावना से कार्य नहीं करते थे। हिमाचल एकमात्र कांग्रेस शासित प्रदेश था जहाँ आपातकाल के दौरान सबसे कम नेता बंदी बनाए गए। उन्होंने बंदी नेताओं के सम्बंधियों को उनके घरों के निकट स्थानांतरित किया तथा बुज़ुर्ग

और बीमार नेताओं के प्रति अति नर्म व्यवहार किया।

एक कुशल प्रशासक के रूप में डॉ. परमार राजनैतिक दबाव में नहीं आते थे, परन्तु असंतुष्टों की गतिविधियों के कारण कई बार विधायकों के हस्तक्षेप को सहन कर लेते थे। आपातकाल के दौरान जब सिरमौर ज़िला के चार विधायकों ने एक वरिष्ठ पुलिस अधिकारी के स्थानांतरण की माँग को लेकर उनके कार्यालय में धरना दे दिया तथा डॉ. परमार को उस अधिकारी को बदलना पड़ा। एक अन्य अवसर पर ऊना के विधायक अध्यापक के स्थानांतरण को लेकर कहने लगे कि ये उनकी प्रतिष्ठा का प्रश्न है तो डॉ. परमार ने तुरंत कहा कि एक स्थानांतरण जैसे छोटे मुद्दे के लिए अपनी प्रतिष्ठा को दाव पर मत लगाइये तथा इसके लिये कोई बड़ा मुद्दा होना चाहिए, तथा उस विधायक को निरुत्तर कर दिया।

मुख्यमंत्री का पद छोड़ने के बाद भी उनके चेहरे पर शिकन तक नहीं थी तथा वे शिमला और बागथन आते-जाते थे। कई बार वे सड़क पर लम्बी बातचीत करते तथा मैं ये सुनिश्चित करता था कि जब तक वे बात कर रहे हैं, उन्हें सुनता रहूँ।

1980 के लोकसभा चुनाव में प्रचार के दौरान उनकी कार उत्तराखण्ड में रुद्र प्रयाग के निकट दुर्घटनाग्रस्त हो गई तथा उनके शरीर में एक ट्यूमर बना, जो बाद में कैंसर बन गया। सत्यावती परमार उन्हें उपचार के लिए अमेरिका ले जाना चाहती थीं, परन्तु डॉक्टर सहमत नहीं हुए। डॉ. परमार ने 2 मई, 1981 को इंदिरा गांधी मेडिकल कॉलेज अस्पताल में अंतिम साँस ली और उसी दिन फिल्म तारिका नर्गिस की भी अमेरिका में कैंसर से मृत्यु हुई। श्रीमती परमार ने मुझसे कहा कि अब मुझे डॉ. परमार को अमेरिका ले जाने का पश्चाताप नहीं है। क्योंकि अगर अमेरिका में डॉक्टर, नर्गिस दत्त को नहीं बचा सके तो डॉ. परमार को भी नहीं बचा पाते। यदि नर्गिस दत्त बच जाती तो मैं जीवन पर्यन्त इस अपराध-बोध से ग्रसित रहती कि मैं डॉ. परमार को अमेरिका क्यों नहीं ले गई।

डॉ. परमार जीवन-भर चुनौतियों से जूझते रहे तथा प्रदेश के हितों की रक्षा के लिए प्रतिबद्ध रहे तथा लगभग 18 वर्ष तक प्रदेश के मुख्यमंत्री रहने के बाद भी उन पर कोई लांछन नहीं लगा और वे ईमानदारी और निष्ठा की अमिट छाप छोड़कर संसार से विदा हुए।

असगर गोडवी का ये शे'र—

चला जाता हूँ हंसता खेलता मौज-ए-हवादिस से
अगर आसानियाँ हों ज़िन्दगी दुश्वार हो जाये।

डॉ. परमार पर पूर्णतया लागू होता है।

[सी-5, बैमलोई, शिमला-171002]

मो. 94180 23883

डॉ. परमार का हिमाचल के निर्माण और विकास में योगदान

❑ श्रीनिवास जोशी

डॉ. परमार की बदौलत आज हर हिमाचली अपने को हिमाचली कहते हुए गर्व महसूस करता है। उनका त्याग, उनकी ईमानदारी, उनकी लगन आज के राजनेताओं के लिए महज़ कहने की बातें रह गई हैं। उन पर लिखी हर किताब इबारत पढ़ती है, 'यशवन्त सिंह परमार का जन्म 4 अगस्त, 1906 को सिरमौर के चन्हालग गाँव में हुआ था और 2 मई, 1981 को उन्होंने शिमला में अंतिम सांस ली।' कोई पुस्तक यह नहीं कहती कि इन दो तारीखों के बीच में जो डैश है वही उनका कर्मज है, कर्मस्थली है। वह बचपन में अपने जन्म स्थान में घुटरियों चलते हैं और फिर विशाल गुणी की भांति सारे संसार में डग भरते हैं। उनका प्रदेश और उनका देश उनका घर बन जाता है और उनका आलिंगन इतना बृहत कि हर कोई उसमें समा जाता है। डॉ. परमार 1952 से 1956 और फिर 1963 से 1977 तक इस प्रदेश के मुख्यमन्त्री रहे। इतना लम्बा अरसा मुख्यमन्त्री रहे और जब हटे तो केवल 5000 रुपये डाकखाने में जमा थे। मुख्यमन्त्री पद से हट जाने के बाद आप बड़े आराम से एचआरटीसी की बस में आम नागरिक की भांति नाहन से शिमला आया करते थे। लोग स्वयं उन्हें सबसे आगे वाली सीट में बैठने का आग्रह करते थे जिसे वह स्वीकार करते थे। आप शिमला में सचिवालय से कुछ पीछे 'दी रूट्स' नाम के घर में रहते थे जिसे सत्या डांग ने बनवाया था। वहाँ से सब्ज़ी मण्डी जाते थे और कन्धे में झोला उठाए सब्ज़ी खरीद कर घर चले आते थे। सचिवालय की ओर दौड़ती सरकारी गाड़ियाँ उन्हें इस प्रकार पैदल चलता देख रुक जाती थीं, पर वह उनमें सवार नहीं होते थे। क्या अब कभी भी कोई ऐसा मुख्यमन्त्री हो सकेगा? शायद नहीं। शायद क्यों? कभी नहीं।

आज का हिमाचल जो हम सब देख रहे हैं शायद ऐसा कभी न होता, यदि डॉ. परमार जैसा स्वप्नदृष्टा हिमाचल बनने के तुरन्त बाद हमारा रहनुमा न होता। उसने स्वप्न देखा था इसे 'सेब राज्य' से 'फलों की तश्तरी' बनाने का; उसने स्वप्न देखा था त्रिमुखी बन खेती का जो वन-संरक्षण, पेड़ों के फल और पशुधन को आधार मान कर तैयार की गई थी जिससे चारा, बालन और शहतीर मिले; उसने स्वप्न देखा था इस पहाड़ी प्रदेश में हर जगह से हर जगह को मिलाने वाली सड़कों का। अपने 18 वर्ष के मुख्यमन्त्री के लम्बे कार्यकाल में उनकी कोई भी नीति ऐसी न थी जिसमें पहाड़ी संस्कृति की झलक न हो। उनकी एक आँख शासन पर रहती थी तो दूसरी पहाड़ी संस्कृति पर। शासन की बात करते समय हमें तत्कालीन प्रशासनिक इकाइयों का ज्ञान होना ज़रूरी है, जिनके चलते या जिनके बदलते डॉ. परमार ने अपना मुख्यमंत्रीत्व काल बिताया।

पहाड़ी रियासतों के विलय समझौते के अंतर्गत 15 अप्रैल, 1948 को हिमाचल प्रदेश

(प्रशासन) अध्यादेश 1948 घोषित हुआ और एक चीफ कमिश्नर को अध्यक्ष नियुक्त कर नए सूबे हिमाचल प्रदेश की स्थापना 30 पहाड़ी रियासतों के गठबन्धन से हुई। चीफ कमिश्नर 30 सितम्बर, 1948 को गठित एक सलाहकार परिषद के माध्यम से राज्य को चलाया करते थे। इस परिषद में कांग्रेसी सदस्यों का नेतृत्व डॉ. परमार किया करते थे। यह प्रणाली जनतांत्रिक न होने के कारण जनभावनाओं का सही प्रतिनिधित्व नहीं करती थी, अतः डॉ. परमार की रहनुमाई में सलाहकार परिषद ने 9 मई, 1950 को चीफ कमिश्नर को बाध्य किया कि वह भारत सरकार को प्रस्ताव भेजे कि हिमाचल प्रदेश ले. गवर्नर और लोकप्रिय मंत्रीमंडल वाला राज्य बने। पार्ट सी राज्य के अधिनियम को राष्ट्रपति का अनुमोदन 6 सितम्बर, 1951 को प्राप्त हुआ और उसी वर्ष के अन्त में प्रदेश में चुनाव हुए। 24 मार्च, 1952 को डॉ. परमार की अगुवाई में मंत्रीमंडल बना। तब इस प्रदेश के चार ज़िले थे, 23 तहसील थीं, 5 उप-तहसीलें थीं और 13 शहरी क्षेत्र थे। यहाँ यह भी बता दूँ कि तब एस.डी.एम. तथा विकास खंड अधिकारी जैसी संस्थाएँ नहीं होती थीं। अप्रैल, 1953 में परमार सरकार ने जैलदारी प्रथा को समाप्त कर दिया और साथ ही साथ ऋण लघुकरण बिल के माध्यम से गाँव के लोगों को अत्यधिक ब्याज पर कर्ज़ देने की प्रथा पर रोक लगाई। ब्याज की दर 7.5 प्रतिशत प्रति सैकड़ा प्रति वर्ष नियत कर दी गई।

डॉ. परमार के अथक परिश्रम से Abolition of Big Landed Estate, Private Forest जैसे महत्त्वपूर्ण विधेयक पास हुए। वनों और कृषि वाली संस्कृति से पलते बढ़ते हिमाचल में इन दो मुद्दों पर बल देते हुए प्रदेश को समाजवाद की ओर ले जाने के सफल प्रयास शुरू हुए। सड़कें बनने लगीं, स्कूल और हस्पताल खुलने लगे, लोग फटेहाल से बाहर निकलने लगे पर केन्द्र की नज़रों में पार्ट-सी राज्य एक खर्चीली प्रशासनिक इकाई रही। डॉ. परमार ने तब सी राज्यों के मुख्यमंत्रियों का कन्वेंशन कर डाला, जिसे उन्होंने जानबूझ कर फागू में करवाया। फागू में करवाने के दो उद्देश्य थे—एक, बाहरी लोगों को हिमाचल की संस्कृति से वाकिफ करवाना ताकि यहाँ के लोगों के रहन-सहन, भाव-बर्ताव को देखकर वे हिमाचल के पंजाब या अन्य किसी राज्य में विलय का विरोध कर सकें और दूसरा पार्ट सी राज्य होते हुए भी प्रदेश के विकास से पहचान बना सकें। इस कन्वेंशन में अज़मेर से हरिभाउ उपाध्याय, भोपाल से शंकरदयाल शर्मा, कुर्ग से सीएम पुनाचा, दिल्ली से ब्रह्म प्रकाश, विन्ध्य से शम्भूनाथ शुक्ल आए थे। इन सभी दिग्गजों ने हिमाचल में दो साल की लोकप्रिय सरकार के अधीन प्रगति की प्रंशसा की और इस प्रणाली को जारी रखने की ज़ोरदार अपील की।

इसी दौरान हिमाचल प्रदेश की प्रशासनिक इकाइयाँ भी बढ़ने लगीं। सन् 1952 में तीन सामुदायिक विकास प्रॉजेक्ट जारी हुए—कुनिहार, बल्ह और पांवटा में। सामुदायिक विकास राष्ट्रीय विस्तार सेवा में बदला और अन्ततः विकास खंड में। 1954-55 में पूरे देश में विकास खंडों की स्थापना हुई। 1954 में बिलासपुर हिमाचल में मिला और फागू कन्वेंशन की सिफारिशों के बावजूद सन् 1956 में हिमाचल प्रदेश को केन्द्रीय प्रशासित क्षेत्र घोषित कर दिया गया। एक दुरज्जी यहाँ स्थापित हुई—प्रशासन को उप-राज्यपाल और क्षेत्रीय परिषद के बीच विभक्त कर दिया गया। क्षेत्रीय परिषद लोकतन्त्र के लॉलीपॉप के समान यहाँ की जनता को थमा दिया गया। तब डॉ. परमार के लिए चालू हुई पल्ली-पल्ली, गाँव-गाँव, परगना-परगना यात्रा। डॉ. परमार की यह आवाज़ लोगों को सुनाई पड़ती थी—"हम पहाड़ के लोगों की अपनी अलग संस्कृति है। अपनी

अलग भाषा है हमारी। हमारा खान-पान अलग है, पहरावा अलग है। विश्वास और श्रद्धा, रीति-रिवाज़ और परम्परा पंजाब में रहने वाले हमारे भाई-बहिनों के रिवाज़ों के साथ मेल नहीं खाते। इसलिए हिमाचल का पंजाब में विलय अर्थहीन होगा। हमारा अलग अस्तित्व था, है और रहेगा। मेरे भाइयो और बहिनों, मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि यदि आप एकजुट हमारा साथ दें तो हिमाचल प्रदेश सदा-सदा इस अलग अस्तित्व को कायम रखेगा।"

अब डॉ. परमार ने अपना पूरा ज़ोर हिमाचल को अलग राज्य बनाने पर लगा दिया। 1953 में बने State Reorganisation Commission के सामने बोलते हुए उन्होंने कहा, "हिमाचल के पंजाब में विलय से जटिल पंजाब और अधिक जटिल समस्याओं से जूझ जाएगा। वहाँ हिन्दुओं के बाद पहाड़ी एक और अल्पसंख्यक वर्ग हो जाएगा। ऐसे मामलों में हर राज्य के लोगों की भावनाओं का आदर करना चाहिए। माना कि दो राज्यों में कुछ सांस्कृतिक साम्यता है पर पहाड़ी संस्कृति की अपनी विलक्षणताएँ हैं।" कमीशन के दो सदस्यों ने अपनी सिफारिश हिमाचल के पंजाब और पेप्सू में विलय की दे दी पर उसके अध्यक्ष फ़ज़ल अली ने इसका विरोध किया। उनका कहना था कि इस राज्य को चाहे छोटा रुतबा दिया जाए पर इसे अलग राज्य ही रहना चाहिए। भारत सरकार के अधिकतर मन्त्री चाहते थे कि इस छोटे राज्य का विलय पंजाब में हो जाए पर परमार अकेली लड़ाई लड़ कर इसे अलग राज्य के रूप में रखना चाहते थे। 27 जुलाई, 1956 को प्रदेशवासियों ने राहत की सांस ली, जब हिमाचल प्रदेश को एक अलग इकाई के रूप में स्वीकृति दी गई, क्योंकि फ़ज़ल अली ने अन्य दो सदस्यों से अपनी असहमति ज़ाहिर करते हुए लिखा था—"It was necessary to give some elbow-room to this State for development at the present stage" और एक छोटे नोट द्वारा, जिसमें कहा गया था कि अन्ततः इस राज्य का विलय पंजाब में कर दिया जाएगा, सिर पर तलवार लटका दी गई थी।

1 मई, 1960 को महासू से किन्नौर को निकाल कर एक अलग सीमांत ज़िला बनाया गया। पूरी सीमारेखा पर सीमांत ज़िले अन्य प्रदेशों में भी बनाए गए थे। यहीं से एस.डी.एम. प्रणाली की नींव पड़ी जब पूह, निचार और कल्पा में एस.डी.एम. लगाए गए।

उधर अलग राज्य के लिए अकेले ही लड़ाई लड़ते, हार न मानते डॉ. परमार केन्द्र सरकार के हर दरवाज़े पर थपकी देते रहे। जो कोई भी कुछ था, उसे मिलते रहे और हिमाचल के गाँवों की कहानी सुनाते अलग राज्य की छवि उसको समझाते रहे। अलग संस्कृति और अलग शासन की लड़ाई फल लाई जब केन्द्रीय क्षेत्र सरकार में बिल 1963 में पास हो गया और उसी वर्ष पहली जुलाई को डॉ. परमार ने एक बार फिर मुख्यमंत्री का कार्यभार संभाला।

इस अवधि तक ज़िला मुख्यालयों में रेवेन्यू ऑफिसर, जनरल एसिस्टैंट, कम्पनशैसन आफिसर, एडीपीडीओ तथा ट्रेज़री आफिसर हुआ करते थे और मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी का काम चलाते थे। पहली बार ज़िला मुख्यालयों के बाहर सुन्दरनगर और सोलन में 1965 में मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी के पद सृजित किए गए और फिर हर उपमण्डल में एस.डी.एम. तैनात कर दिए गए। इसका मकसद था कि जनता को अपने कष्ट निवारण के लिए दूर न जाना पड़े। 1 नवम्बर, 1966 को हिमाचल ने आज के हिमाचल का स्वरूप धारण कर लिया और 25 जनवरी, 1971 को हिमाचल भारत का 18वां संघबद्ध राज्य बना।

डॉ. परमार जनता की आवाज़ के सच्चे रहनुमा थे और यही कारण है कि केन्द्र में

भारी विरोध के बावजूद उन्हें अपने लक्ष्य की प्राप्ति हुई। हिमाचल बृहद् हुआ और पूर्ण राज्य का दर्जा ले सका। डॉ. परमार जानते थे कि उनके राज्य में किसान हैं जो अधिकतर सीमान्त हैं अतः सबसे पहले उन्होंने अपना ध्यान कृषकों की भलाई की ओर खींचा। कुछ अधिनियमों का बखान हम पहले कर चुके हैं पर 1972 में Tenancy and Land Reforms Act आया जो एक क्रांति लाया और जिसने मज़दूर काश्तकारों को भूमि का मालिक बना दिया।

कृषि उत्पाद बढ़ने लगे, खेत आलू उगलने लगे, बागीचे फल देने लगे, ऊन और उससे बने वस्त्र तैयार होने लगे पर उन्हें बेचें कहाँ? सड़कें तो थी नहीं। रियासतों ने इस ओर ध्यान दिया नहीं था और अंग्रेज़ों ने अपने ऐश के लिए बनाए शहरों तक सड़कें बना रखीं थीं। डॉ. परमार ने प्राथमिकता से सड़कें बनवाई। 1953 में ही उन्होंने सड़कों के विकास के लिए एक दस-साला योजना तैयार करवाई थी। शिमला-मण्डी मार्ग 14 नवम्बर, 1952 को तैयार हो चुका था—इस क्षेत्र के गाँव समृद्ध होने लगे थे। उन गाँवों की बहबूदी देख कर अन्य गाँव भी उफान भरने लगे थे कि उन्हें भी शहरों से जुड़ना है। हिमाचल ने डॉ. परमार के ज़माने में अपने बजट का 30 प्रतिशत केवल सड़क निर्माण पर खर्च किया, क्योंकि वह जानते थे कि यही वे रेखाएँ हैं, जो हमारे गाँवों को फलता-फूलता बना सकती हैं। डॉ. एम.एस. रन्धावा, डॉ. परमार के बारे में कहते हैं—"उनके अथक परिश्रम और कार्य के कारण आज के हिमाचल प्रदेश को वे लोग पहचान भी न पाएँगे जिन्होंने इस इलाके को आज़ादी से पहले देखा होगा। हर स्थान से हर स्थान को जाने के लिए यहाँ सड़कें हैं, आज सेब और आलू के लिए यहाँ सड़कें मण्डी उपलब्ध करवातीं हैं जिससे यहाँ सम्पन्नता और समृद्धि आई है।"

यह जानते हुए भी कि हिमाचल प्रदेश में शिक्षा पर प्रति व्यक्ति खर्च 235 रुपये है, जबकि पंजाब में यही 112 और हरियाणा में 118 है, हिमाचल को मुंडू संस्कृति से उभारने के लिए उन्होंने बजट का माकूल हिस्सा शिक्षा पर खर्च किया। 1967-68 में हिमाचल प्रदेश की सकल घरेलु आय का 3.7 प्रतिशत शिक्षा पर खर्च हो रहा था जबकि पंजाब, हरियाणा और भारत में इसकी प्रतिशतता कमशः 2.3, 2.1 और 2.7 थी। इसका परिणाम डॉ. रंधावा के इन शब्दों में मिलता है—"जब लोग बताते हैं कि घरेलू नौकर मिलने मुश्किल हो गए हैं, क्योंकि हिमाचल से अब नौजवान आते नहीं तब मुझे खुशी होती है यह समझ कर कि अब हिमाचल के लोगों के लिए वहीं नए आयाम खुलने लगे हैं। वे वहाँ गरिमा से जीने लगे हैं।" कथाकार सुंदर लोहिया लिखते हैं—"आज हम अपने आपको पहाड़ी कहलाने में गर्व अनुभव करते हैं। पहाड़ की पहचान को उभारने में डॉ. परमार का योगदान चिरस्मरणीय रहेगा। मैं इसे मनोवैज्ञानिक मुक्ति यज्ञ का नाम देना चाहता हूँ क्योंकि इसमें लाखों लोग हीनभाव की ग्रन्थि से मुक्त होकर अपने अस्तित्व और अस्मिता को प्राप्त करते हैं।"

"हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय बनाने में उनका योगदान रहा जब उन्होंने इस ओर बढ़ने के लिए डॉ. आर.के. सिंह, मेरठ विश्वविद्यालय के कुलपति की अध्यक्षता में एक समिति बनाई जिनमें देश के प्रमुख विद्वान जनों को शामिल किया था। आज यदि हिमाचल साक्षरता और शिक्षा के शिखर पर है तो उन्हीं के नाम से चल रहे इस विश्वविद्यालय में मुझे यह कहते ज़रा भी हिचकिचाहट नहीं है कि यह केवल और केवल डॉ. परमार के कारण है। वह यह भी चाहते थे कि हिमाचल के विपुल लोक साहित्य का संरक्षण और विकास हो तथा हिन्दी के साथ-साथ हिमाचली भाषा को लिंक लेंगुएज के रूप में विकसित किया जाए।"

डॉ. परमार न होते तो शायद हिमाचल फल राज्य न कहलाता। वह स्वप्नदृष्टा थे। उन्होंने राज्य के उत्तर में सेब, आडू आदि को उगाने का स्वप्न देखा तो दक्षिण में किन्नु, संतरा तथा माल्टा। वह इस सेब राज्य को 'फलों की तश्तरी' के रूप में विकसित होते देखना चाहते थे। अपने गाँव बागथन में उन्होंने हर प्रकार के फल लगाए। उनके सुपुत्र कुश परमार कहते हैं, "उनकी मुख्य रुचि कृषि और बागवानी में थी। बागथन में उनका लगाया बागीचा एक्सपैरीमैन्टल आर्चर्ड है जिसमें अमरूद, अंजीर, जैतून, प्लम और नाशपाती की कई किस्में हैं। चार किस्म के आडू की कलमें उन्होंने अमरीका से मंगवाई थीं। इन्दिरा जी की पसन्द का फल, दक्षिण भारतीय आडू, अपनी ज़मीन में पैदा किया और उन्हें भेजा करते थे।" हिमाचल के भूमि उपयोग प्रबन्धन के बारे में उनकी राय थी कि यहाँ की भूमि उद्यान, चारागाह और वनों के लिए अनुकूल है। इसीलिए उन्होंने 1970 में कृषि से निकाल कर उद्यान विभाग की अलग स्थापना की, ताकि प्रदेश में फलोत्पादन को बढ़ावा मिले। आज यह कहना सहज लगता है कि हिमाचल को सड़कों और फलों ने पहचान दी है और समृद्ध बनाया है। पर उस वक्त जब सब जगह अंधेरा हो, कुछ सूझ न रहा हो तब एक मोमबत्ती जलाने वाला मिल जाए तो राह नज़र आने लगती है। इस मोमबत्ती जलाने वाले का विज़न था—पहाड़ी प्रदेश, पहाड़ी संस्कृति, सड़कें, फल, जंगलात और पढ़े-लिखे नागरिक। इस विज़न को लेकर यह व्यक्ति निरन्तर आगे बढ़ता रहा।

सम्भावनाओं को दिशा देने के इस प्रयास पर 1971 की चार अगस्त को लोकसभा के तत्कालीन अध्यक्ष गुरदयाल सिंह ढिल्लों ने डॉ. परमार को इंगित कर कहा था, "मैं कह सकता हूँ कि हिमाचल प्रदेश इनका शिशु है और यह इनका पावन जीवन-लक्ष्य रहा कि वह उसे पूर्ण पुरुषत्व में देखें।"

डॉ. परमार किसी भी पहाड़ी क्षेत्र के वनों की महत्ता और उपयोगिता को समझते थे। वह जानते थे कि हिमाचल के वन यहाँ की पाँच प्रमुख नदियों के कैचमेन्ट क्षेत्र का बचाव करते हैं और इन नदियों के जल को नियमित प्रवाह देते हैं, जो मैदानों की कृषि के लिए आवश्यक है। यहाँ के वन संरक्षण पर जलवायु संरक्षण निर्भर है। दूसरी ओर उन्हें मालूम था कि पहाड़ की 90 प्रतिशत जनता अपनी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए वनों पर निर्भर है, चाहे पशुओं के लिए चारा हो, चाहे चूल्हा गरम रखने के लिए बालन हो, चाहे घर बनाने के लिए लकड़ी हो। सर्दियों में यहाँ के लोग घर गरम रखने के लिए भरपूर बालन का प्रयोग करते थे। यह कहाँ से आता था? ज़ाहिर है वनों से चाहे अवैध कटान के रूप में आया हो। इस समस्या का समाधान उन्हें बिजली में नज़र आया। गाँव-गाँव तक बिजली पहुँचाने का लक्ष्य उन्होंने बांधा और आज उनकी दूरदर्शिता का आनन्द हम यह जान कर ले रहे हैं कि हिमाचल के शत-प्रतिशत गाँव आज बिजली की रोशनी में नहा रहे हैं। बिजली को गाँवों तक पहुँचाना एक लम्बी अवधि की योजना थी। डॉ. परमार ने 1976 में 'थ्री डी फॉरेस्टरी' नाम से एक योजना आरम्भ की जिसमें समुदाय के सहयोग से चौड़े पत्ते वाले पेड़ों का वन तैयार करना था जिनमें गाँव वालों के हकूक हों और वे ही उसकी देखभाल करें। थ्री डी 'थ्री डाइमैन्शन्स' यानि तीन आयाम—पहला, पशुओं के लिए पत्तियों का चारा उपलब्ध करवाना, दूसरा, बालन की उपलब्धि और तीसरा, घर बनाने के लिए इमारती लकड़ी के अतिरिक्त लकड़ी की आवश्यकता पूर्ण करना। हिमाचल की इस पहल को अन्य राज्यों ने भी अपनाया और सामाजिक वानिकी या सामुदायिक वानिकी का नाम दिया। पहाड़ी संस्कृति को देख-परख कर

उस पर आधारित शासकीय नीति तैयार करने में डॉ. परमार का कोई सानी न था।

अर्थ व्यवस्था और लोगों के रहन-सहन पर गहरा प्रभाव पड़ा है। वैसे पर्यटन, स्वास्थ्य, मछली पालन, पंचायत, सहकारिता, उद्योग कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं था जिस पर डॉ. परमार ने अपने शासनकाल में अपनी छाप न छोड़ी हो। यहाँ यह कहने से भी नहीं चुकूँगा कि सुशासन की सुदृढ़ नींव उन्होंने अपने प्रशासन में रखी।

डॉ. परमार का व्यक्तित्व अपने साथियों के मध्य इतना विशाल था और उनके उसूल 'चढ़ाई को और प्रतिद्वन्द्वी को आहिस्ता-आहिस्ता मारो' के कारण उनके प्रतिद्वन्द्वी ऐसे धराशायी हो जाते थे कि सहभागिता और मतैक्यता उनके शासनकाल में अन्य द्वारा न चाहते हुए भी उन्हें मिलती रही। हाँ, ऐसे व्यक्तित्व और निरकुंश राजकाज चलाने की आदत पड़ जाने पर उन पर rule of law के भंजन की तोहमत भी यदा-कदा लगती रही, परन्तु प्रमाणित न हो पाई। सुशासन के अन्य लक्षणों पर उनकी सरकारें खरी उतरी और आने वाली सरकारों के लिए राह बना गई।

मछली से बने व्यंजनों के शौकीन डॉक्टर साहब हिमाचली भोजन में इंद्रे, खीर, पटांडे, कांजन, सीडू और अश्कलियाँ बहुत पसन्द करते थे। अपनी पुस्तक 'यशवन्त सिंह परमार' में राजेन्दर अत्री, डॉ. परमार के पुत्र लव को 1962 में लिखे एक पत्र का ज़िक करते हैं कि वे 27 को बागथन पहुँच रहे हैं और लव महासालजी से कहें कि दिन के भोजन में अश्कलियाँ तैयार करके रखे। अश्कलियाँ चावल से बनने वाली इडली किस्म की होती हैं जिन्हें पत्थर गरम कर उस पर पकाया जाता है।

सिरमौर ज़िला शिकायत समिति की बैठक के वह अध्यक्ष होते थे। मैं सन् 1975 में नाहन में आजकल के सहायक आयुक्त पद पर नियुक्त था। यकीन मानिए कि उस शख्स का इतना दबदबा था कि हर अधिकारी इतनी तैयारी करके बैठक में भाग लेता था कि लगता था नौकरशाही में जबरदस्त परिवर्तन आ गया है। नाहन के बाद अन्य ज़िलों में मैंने इस बैठक को इतनी गम्भीरता से लेते कभी नहीं देखा।

डॉ. परमार को पहाड़ी होने पर गर्व था। उन्हें यह बात बहुत अखरती थी कि हिमाचली युवक बाहर जाकर 'मुंडू' कहलाए और मुंडूगिरी करे। डॉ. परमार अपने प्रदेश में ही शिक्षा और रोज़गार के इतने अवसर प्रदान करवाना चाहते थे कि कोई भी यहाँ से घरेलू काम करने के लिए बाहर जाने की ज़रूरत न समझे। उन्होंने ऐसा किया भी।

जब केन्द्र की राजनीति में संजय गांधी अति सक्रिय हो गए तब डॉ. परमार के लिए अधिक बहरा होना कठिन हो गया और उन्होंने मुख्यमंत्री पद छोड़ दिया। 1981 में जब इस शख्स ने इस जहाँ से रुख्सत ली तो हर आदमी की ज़ुबाँ पर एक ही फिकरा था यह वह इन्सान है जो हिमाचल प्रदेश के लिए जिया और हिमाचल प्रदेश के लिए मरा।

ऐसे इन्सान को जिसे यहाँ की नाटी से प्यार हो, लोइया और हिमाचली सदरी से प्यार हो, यहाँ के खाने से प्यार हो, यहाँ के लोगों से प्यार हो, यहाँ के फल, जंगल और खेती से प्यार हो—पर अगर किसी से प्यार न हो तो कुर्सी से प्यार न हो—"कहाँ हैं, कहाँ हैं अब ऐसे सनाख्वाने तक्दीसे हिमाचल कहाँ हैं?"

['पंचवटी', गाँव कनैना (पगोग), वाया ए.जी. डाकघर, शिमला-171003]

मो. 94180 57698

एक शुचितापूर्ण जीवन : डॉ. यशवंत सिंह परमार

❑ पद्म गुप्त अमिताभ

यों तो शिमला की हर सुबह खास होती है, सुहानी और खुशगवार, किन्तु वो सुबह कुछ विशेष थी। मैं बात कर रहा हूँ 25 जनवरी, 1971 की क्योंकि उस दिन हिमाचल प्रदेश के लाखों निवासियों का एक चिरस्वप्न साकार हो रहा था। पूर्ण राज्य प्राप्ति का स्वप्न। स्वतंत्र भारत में हिमाचल प्रदेश राज्य के अस्तित्व में आने के 23 वर्ष बाद यह संभव हुआ था और इसमें दो राय नहीं कि प्रदेश के प्रथम और तत्कालीन मुख्यमंत्री डॉ. यशवंत सिंह परमार का इसमें प्रमुख योगदान था।

वह ठंडी शांत सुबह एक उत्कंठा से अभिष्ट थी और सबसे प्रमुख बात थी भारत की लोकप्रिय प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी का इस अवसर पर शिमला में पधारना। वे रिज मैदान से स्वयं इसकी घोषणा करके प्रदेशवासियों को यह तोहफा देने वाली थीं। प्रदेश के सभी भागों से लोग आए थे और रिज मैदान खचाखच भर गया था। मैं स्वयं इस अवसर विशेष का साक्षी था क्योंकि टेलीफोन विभाग के प्रतिनिधि के रूप में उपस्थित था। उन दिनों आकाशवाणी द्वारा कार्यक्रम और भाषणों के प्रसारण के लिये सुविधा जुटाने में विभाग की भूमिका रहती थी। तब सुरक्षा व्यवस्था भी इतनी कठोर नहीं थी और जब प्रधानमंत्री और मुख्यमंत्री मंच पर पहुँचे तो मैं भी मंच पर जाकर उनके एक-डेढ़ कदम पीछे जा खड़ा हुआ।

इंदिरा गांधी ने सभी प्रदेशवासियों और विशेषतः डॉ. यशवंत सिंह परमार को हिमाचल को पूर्णराज्य का दर्जा मिलने की बधाई दी। प्रदेश के उज्ज्वल भविष्य के लिये आशीर्वाद और शुभकामनाएँ देते हुए उन्होंने केन्द्र के पूर्ण सहयोग का आश्वासन दिया। समस्त प्रकृति इसी क्षण की प्रतीक्षा कर रही थी। इंदिरा जी के भाषण के दौरान ही पहले हल्की, फिर भारी बर्फ़ पड़ना शुरू हो गई। हिमाचल वाले बर्फ़ से घबराते नहीं हैं, इसके बरक्स शिशिर का आगमन होते ही बर्फ़बारी की प्रतीक्षा करने लगते हैं। यहाँ बर्फ़ पड़ना किसी उत्सव से कम नहीं और यह तो एक महान उत्सव का शुभारंभ था। इंदिरा जी के भाषण के और कृतज्ञ व भावविभोर डॉ. परमार का संक्षिप्त भाषण समाप्त होते-होते, वहाँ उपस्थित समस्त जनता और वहाँ के सम्पूर्ण वातावरण को बर्फ़ की कुछ इंच मोटी परत ने ढाँप दिया और वह क्षण इतना स्तब्धकारी था कि एक भी व्यक्ति वहाँ से हिला नहीं।

25 जनवरी को शुरू हुई यह बर्फ़ रुकी नहीं। दरअसल पूर्णराज्यत्व की घोषणा एक आनन्दोत्सव था जिसमें प्रकृति पूरे मनोयोग से शामिल हो गई। अगले दिन गणतंत्र दिवस था। उसी बर्फ़बारी में रिज पर तीन दिन उत्सव होते रहे। अलाव के गिर्द रात-दिन नाचते-गाते

लोगों के उल्लसित समूह और उनके चारों ओर बर्फ़ का साम्राज्य। यह बर्फ़बारी दो दिन और दो रात होती रही। 27 की सुबह जाकर मौसम खुला।

यहाँ मैं एक बात बताता चलूँ। पूर्ण राज्य बनने के बाद प्रदेश की वित्तीय आवश्यकताओं का आकलन करने के लिए केन्द्र ने वित्त मंत्रालय के संयुक्त सचिव की अध्यक्षता में अधिकारियों का एक दल भेजा। संयुक्त सचिव एक सिंधी सज्जन थे जिनसे मेरा पारिवारिक परिचय था। उन्होंने अपने व्यस्त कार्यक्रम से समय निकालकर मुझसे मुलाकात की और मालरोड पर मेरे साथ सुबह का नाश्ता भी किया।

प्रदेशवासियों के सपने को साकार करने के पीछे हिमाचल के महान सपूत डॉ. यशवंत सिंह परमार का अथक संघर्ष था। किसने सोचा होगा कि हिमालय क्षेत्र की एक पहाड़ी रियासत सिरमौर के छोटे से गाँव चन्हालग में जन्मा यह बालक एक दिन प्रदेश के भविष्य का निर्धारण करेगा। उनके पिता भंडारी शिवानन्द परमार राजा के सचिव थे। राजा ने इस अवसर पर अपने सचिव के साथ मुँह मीठा किया होगा, किन्तु इसे भी विडम्बना ही कहा जाएगा, यही यशवंत सिंह परमार, वहाँ पहले सब जज और फिर ज़िला व सत्र न्यायाधीश रहे तो राजनैतिक मतभेद के चलते राजा ने उन्हें अवांछित व्यक्ति घोषित करके सिरमौर राज्य की सीमा में उनके प्रवेश को प्रतिबंधित कर दिया।

1857 की क्रांति के संदर्भ में हिमाचल का नाम प्रायः नहीं लिया जाता, किंतु उस समय सभी अंग्रेज़ों ने शिमला के आसपास की पहाड़ी रियासतों में शरण ले ली थी। मई क्रांति का पहाड़ी क्षेत्रों में भी व्यापक असर हुआ था। तुलसी रमण अपनी पुस्तक 'व्यक्तिवाचक' की भूमिका में लिखते हैं—"14 अगस्त, 1857 तक पहाड़ी रियासतों के लगभग 50 देशभक्त फांसी के फंदे पर चढ़ चुके थे। गांधी जी के सत्याग्रह आंदोलन से भी पहले यहाँ सत्याग्रह आंदोलन शुरू हो चुके थे। इनमें 1859 का बुशहर का 'दूम्ह' आंदोलन (पशुओं सहित वन में पलायन), 1862 से 1878 के सुकेत के जन-आंदोलन, 1877 का नालागढ़ का जनसंघर्ष और 1883 का बिलासपुर का 'झुग्गा' (जंगल में सपरिवार झोंपड़ी बनाकर रहना) आंदोलन प्रमुख रहे। इसी तरह 1878 का सिरमौर भूमि आंदोलन, 1895 का चम्बा किसान आंदोलन तथा 1909 का मंडी विद्रोह। ये सभी रियासतों के शासकों के खिलाफ भू-बंदोबस्त में हेरा-फेरी, लगान बढ़ाने और बेठ-बेगार जैसी दमनकारी नीतियों के विरोध में थे।"

कांग्रेस और गांधी जी की नीति और प्रभाव के कारण पहाड़ी और तत्कालीन पंजाब के शासकों के विरुद्ध 'प्रजामंडल' आंदोलन प्रारंभ हुआ। भारत के राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह ने भी कभी फरीदकोट के शासक के विरुद्ध प्रजामंडल आंदोलन में भाग लिया था। हिमाचल में सिरमौर, मंडी, बाघल (अर्की), कुनिहार, धामी, बुशहर और शिमला की अन्य हिल स्टेट्स में प्रजामंडल आंदोलन शुरू हो गए। इनका उद्देश्य सामंती तथा अंगेज़ी शासन से मुक्त होकर स्वतंत्रता हासिल करना था।

प्रजामंडल से अनेक क्रांतिकारी नेता अग्रणी भूमिका में आ गए। इस वातावरण में डॉ. यशवंत सिंह इन सबके नेता होकर उभरे। इसका कारण था कि एक पहाड़ी व्यक्ति होते हुए भी उन्होंने विभिन्न स्थानों पर रहकर उच्च शिक्षा प्राप्त की थी तथा पूरे प्रदेश के लिये उनके ऊँचे सपने थे। 1926 में फोरमैन क्रिश्चियन कॉलेज लाहौर से बी.ए. आनर्स करने के बाद, लखनऊ से एल.एल.बी. और समाजशास्त्र में पी-एच.डी. किया। इनका शोध विषय

था 'Polyandry in the Himalayas' (हिमालय क्षेत्र में बहुपति प्रथा)। इसमें उन्होंने महाभारत काल से पूर्व चली आ रही इस प्रथा के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक कारणों का व्यापक विश्लेषण किया था। उनका यह कार्य एक समाज सुधारक की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण था, क्योंकि जो लोग इस प्रथा को एक कुरीति के रूप में मानकर इस पर नाक-भौं सिकोड़ते थे, डॉ. परमार की पुस्तक से इस प्रथा को सही परिप्रेक्ष्य में देख-समझ पाने के कारण उनका दृष्टिकोण व्यापक हुआ।

रही बात डॉ. परमार की, तो लाहौर और लखनऊ जैसे शहरों की शिक्षा ने युवा यशवंत की बौद्धिक समझ विकसित करने के कारण उनके व्यक्तित्व को भी एक नया और समृद्ध आयाम प्रदान किया। ये दोनों शहर शिक्षा, पत्रकारिता, राजनीति, संस्कृति और व्यापार के केन्द्र थे। लाहौर तो लाला लाजपतराय की कर्मभूमि थी।

इसके अतिरिक्त उन्होंने 'हिमाचल, इसका आकार और स्थिति' (Himachal Pradesh: Its shape and status) 'हिमाचल प्रदेश स्टेटहुड', 'हिमाचल-एरिया एंड लैंग्वेज' आदि पुस्तकों के द्वारा प्रदेश की विशिष्ट भौगोलिक स्थिति, भाषाओं, संस्कृति और सामाजिक व राजनीतिक विषयों पर भी लिखा। हिमाचल के काश्मीर के साथ अटूट सम्बंध थे। चम्बा, कांगड़ा, कुल्लू और जम्मू क्षेत्र में तो डोगरी का ही प्रभुत्व रहा। गद्दी भी सभी क्षेत्रों में आते-जाते थे। इसी प्रकार लद्दाख, तिब्बत, चीन और मध्य एशिया के देशों से व्यापारिक और सांस्कृतिक सम्बंध थे। 1962 के चीनी आक्रमण से पहले इन सभी देशों-प्रदेशों से हिमाचल के व्यापारिक सम्बंध थे और रामपुर बुशहर का वार्षिक 'लवी मेला' इस आदान-प्रदान का बड़ा केन्द्र था।

लखनऊ में अपने प्रवास के दौरान युवा यशवंत 'थियोसोफिकल' सोसायटी के सदस्य भी रहे। 1875 में अमेरिका में रूसी महिला मैडम ब्लावात्सकी (Helena Petrovna Blavatsky) और अटार्नी विलियम क्वा जज (William Quau Judge) और कर्नल हैनरी स्टील आल्काट द्वारा स्थापित सोसायटी का उद्देश्य मानव जीवन और उसके अस्तित्व से जुड़े प्रश्नों पर विचार करना था। 1879 में ब्लावात्सकी और स्टील ने भारत के मद्रास राज्य के अडयार में इसके अंतर्राष्ट्रीय मुख्यालय की स्थापना की। उन्होंने उत्तर भारत और आल्काट ने दक्षिण को अपना कार्य क्षेत्र बनाया। दक्षिणी केन्द्र ने लंका के बौद्धों के बीच बहुत काम किया। मैडम ब्लावत्सकी की मृत्यु के बाद अंग्रेज़ी सामाजिक कार्यकर्ता एनी बेसेंट ने इसका काम संभाल लिया।

एनी बेसेंट का कहना था, 'भारत की ज़रूरतों में, राष्ट्रीय भावना का विकास, भारतीय आदर्शों पर आधारित शिक्षा प्रणाली और एक ऐसी संस्कृति जो पाश्चात्य विचारों और संस्कृति के समकक्ष स्वयं को समृद्ध करे, उससे दबे नहीं।'

सोसायटी सभी प्राच्य धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँची कि विश्व का सबसे आध्यात्मिक धर्म, हिन्दू धर्म ही है। सोसायटी का मुख्य ध्यान कर्म सिद्धांत और पुनर्जन्म की अवधारणा पर केंद्रित था। परतंत्र भारत में ऐसे विचारों का, विशेषकर पढ़े-लिखे हिन्दू वर्ग पर होना स्वाभाविक था। अपने इंग्लैंड प्रवास के दौरान गांधी जी भी इनके सम्पर्क में आए और नेहरू के एक यूरोपीय शिक्षक तो एनी बेसेंट की सिफारिश पर ही नियुक्त हुए थे। जाति, पंथ, वंश और लिंग-भेद से ऊपर उठकर सार्वभौमिक भ्रातृ भाव का संदेश उस युग के भारत के

लिए सर्वथा उपयुक्त था।

ऐसे प्रभावों ने युवा यशवंत को भी परिष्कृत किया जिससे वे हिमाचल में लौटकर तत्कालीन वातावरण में विभिन्न रियासतों के क्रांतिकारियों के नेतृत्व का भार सक्षमता से वहन कर सके। सिरमौर राज्य में पहले सब जज और फिर चार वर्ष तक ज़िला एवं सत्र न्यायाधीश रहने के बाद उनके राजा से राजनैतिक मतभेद हो गए और उन्हें अवांछित व्यक्ति घोषित करके रियासत की सीमाओं से निर्वासित कर दिया। यह एक प्रकार से अच्छा ही हुआ, क्योंकि इससे प्रदेश की भावी राजनीति में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका तय हो गई। कुछ वर्ष सिरमौर एसोसिएशन के सचिव रहने के बाद वे हिल स्टेट काउंसिल के प्रधान और ऑल इंडिया पीपल्स कॉन्फ्रेंस के सदस्य रहे। तब तक प्रजामंडल भी सक्रिय हो चुका था। डॉ. परमार सिरमौर प्रजामंडल के प्रधान रहे और सुकेत आंदोलन में तो उनकी अग्रणी भूमिका रही।

प्रदेश की कुल मिलाकर छोटी-बड़ी 31 रियासतों के विलय का निर्णय हो जाने पर 15 जनवरी, 1948 को सोलन कस्बे में बघाट रियासत के राजा दुर्गा सिंह के नेतृत्व में हुई बैठक में नये पहाड़ी राज्य के गठन पर सहमति बनी। डॉ. परमार ने नये राज्य का नाम 'हिमालयन स्टेट' या 'हिमालय प्रांत' रखने की सलाह दी, किन्तु वहाँ उपस्थित संस्कृत के अध्यापक आचार्य दिवाकर दत्त शर्मा ने 'हिमाचल प्रदेश' नाम का प्रस्ताव रखा, जो सर्वसहमति से स्वीकार कर लिया गया। उस समय हिमाचल के चार ज़िले थे—चम्बा, मंडी, सिरमौर और महासू (जो सोलन और शिमला के क्षेत्रों को मिलाकर नवगठित ज़िला था)। उस समय चम्बा प्रदेश के बाकी तीनों ज़िलों से कटा हुआ था और शिमला शहर भी पंजाब में था। 1954 में कहलूर रियासत का बिलासपुर पाँचवाँ ज़िला बना तथा 1 नवम्बर, 1966 को राज्य पुनर्गठन के निर्णय लागू होने के बाद कांगड़ा, कुल्लू, लाहौल स्पीति, ऊना, शिमला, नालागढ़ और डलहौजी क्षेत्रों को पंजाब से निकाल कर हिमाचल में सम्मिलित कर लिया गया। जिससे दो भागों में विभक्त हिमाचल प्रदेश की एक संघटित सम्पूर्ण राज्य बनने की यात्रा सम्पूर्ण हुई और इसी के साथ पूर्ण हुआ डॉ. परमार का वह सपना जो उन्होंने आज़ादी से पहले इस प्रदेश के लिए देखा था।

आज़ादी से पहले 1943-46 के बीच डॉ. परमार सिरमौर एसोसिएशन के सचिव, 1946-47 में हिल स्टेट परिषद् के प्रधान तथा Grouping and Amalgamation committee और All India peoples conference के सदस्य रहे। प्रजामंडल सिरमौर के प्रधान रहने के अतिरिक्त सुकेत आंदोलन के संचालक तो वे थे ही। 'हिमाचल राज्य' के अस्तित्व में आने के बाद यहाँ की शासन व्यवस्था मुख्य आयुक्त के अन्तर्गत रखी गई। डॉ. परमार इसकी सलाहकार परिषद के सदस्य बने। इसी बीच कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष भी रहे, किन्तु देश में आम चुनावों के साथ यहाँ भी चुनाव हुए तो डॉ. परमार सर्वसम्मति से प्रदेश के मुख्यमंत्री बने। उनके सामने इस निर्धन और विकास के लगभग सभी मानकों पर अति पिछड़े हुए प्रदेश को विकसित प्रदेश बनाने की चुनौती थी। इससे पहले कि वह कुछ अधिक कर पाते कि इस बीच राज्य पुनर्गठन आयोग बन गया और हिमाचल की विधानसभा भंग करके उसे उपराज्यपाल के अधीन केन्द्र शासित प्रदेश बना दिया गया और डॉ. परमार सांसद बन गए।

लम्बे संघर्ष के बाद लोकतांत्रिक व्यवस्था फिर से बहाल हुई और 1963 में डॉ.

परमार फिर मुख्यमंत्री बने। प्रदेश के विकास को दिशा और गति प्रदान करने के इस स्वर्णिम अवसर का उन्होंने भरपूर उपयोग किया। साथ ही उन्होंने हिमाचल वासियों को एक सम्मान और गरिमा प्रदान की। बाहर के प्रदेशों में एक आम हिमाचली को 'मुंडू' (अत्यल्प वेतन पाने वाला साधारण घरेलू नौकर) के रूप में देखा जाता था। डॉ. परमार ने कहा, 'यदि हिमाचल का 'कर्मठ' और 'ईमानदार' युवा मुंडू है तो पहला 'मुंडू' मैं हूँ। इस प्रकार उन्होंने पहाड़ के लोगों को एक हीन भावना से मुक्त करके उन्हें आत्मविश्वास और स्वाभिमान से भर दिया।

उन दिनों हिमाचल में सड़कें न के बराबर थीं, वे मीलों पैदल चलते, खच्चरों पर, अथवा उन कच्चे रास्तों पर जीप से यात्रा करते। वे लोगों के बीच रचे-बसे थे और इसीलिए इतने लोकप्रिय थे। उनके पारिवारिक, ग्राम्य उत्सवों और मेलों में शामिल होते, साधारण पहाड़ी ग्रामीण भोजन करते और ज़मीन पर सोते। वे लिबास भी पहाड़ी लोइया और गर्म सूथन (पाजामा) पहनते। ज़मीन पर सोने की प्रदेश में परम्परा ही थी। बागथन में उनके साधारण से दो-मंज़िला मकान में भी उनकी पत्नी चंद्रावती के अतिरिक्त सभी ज़मीन पर ही सोते थे। लोगों में उनके प्रति अपनत्व का भाव कितना गहन था, उसकी एक मिसाल हिमाचल की प्रतिष्ठित पत्रिका 'हिमप्रस्थ' के प्रथम संपादक और लेखक रामदयाल नीरज ने देते हुए बताया था कि एक अवसर पर जब वे सिरमौर यात्रा में डॉ. परमार के साथ थे तो गाँवों की बड़ी-बूढ़ी औरतें और पुरुष डॉ. परमार को देखकर 'म्हारा जसमत' (हमारा यशवंत) कहते हुए गर्व से भर जाते थे। ऐसा था लोगों का उनके प्रति प्रेम।

अपनी जीवन यात्रा में अपनी भूमिका निर्धारित करने और उस कालखंड पर अपनी छाप छोड़ने के लिए कोई भी युग पुरुष स्थितियों का मोहताज नहीं होता। किन्तु यह तो मानना ही पड़ेगा कि डॉ. परमार ने एक ऐसी पीढ़ी में जन्म लिया जो स्वतंत्रता आंदोलन को एक शताब्दी के आंदोलन और स्वतंत्रता हासिल कर लेने के बाद के प्रारंभिक वर्षों से गर्भनाल की तरह जुड़ी हुई थी। एक ऐसी पीढ़ी जिसके लिए राष्ट्र और समाज की निस्वार्थ सेवा एक शुचितापूर्ण उद्देश्य था और अनुशासन, त्याग और समर्पण ही प्रमुख थे।

जब उन्हें लगा कि परिवर्तित वातावरण और स्थितियों में अपने मूल्यों के साथ समझौता नहीं कर पाएँगे तो उन्होंने सत्ता को तिलांजलि देने में एक क्षण की भी देर नहीं की। उन कारणों पर विश्लेषण करने का काम तो उस क्षेत्र से जुड़े लोगों का है। 24 जनवरी, 1977 को अपने पद से त्यागपत्र देने के चार दिन बाद वे हिमाचल परिवहन की साधारण बस से अपने गाँव के लिए रवाना हो गए। अपने जीवनकाल में डॉ. परमार ने अपने बेटों को राजनीति से दूर ही रखा।

हिमाचल के इस महान सपूत का 2 मई, 1981 को कैंसर से निधन हो गया। हिमाचल निर्माता के रूप में उन्हें सदैव स्मरण किया जाएगा।

[20, आसा सिंह बाग, नारायण गढ़ रोड, अम्बाला शहर, हरियाणा-134007]

मो. 94163 78090

सोने सा खरा, हिमाचल का एक पुरखा

❑ नवनीत शर्मा

डॉ. परमार नहीं रहे...एक आठ वर्षीय बच्चे के लिए इस खबर का इतना ही अर्थ था कि कोई बुज़ुर्ग अब नहीं रहा। 1981 के मई माह में यह खबर पिता जी लाए थे। घरेलू चर्चाक्रम में प्रतिदिन यह नाम गूँजता था...परमार साहब...डॉ. परमार। केवल परमार कोई नहीं कहता था। यह सम्मान गुणी व्यक्ति ही कमाते हैं। हालाँकि इतना तो आभास होता था कि हमारे मुख्यमंत्री रहे हैं। उसके बाद जब कभी पिता जी अगस्त के आरंभ में एक-दो दिन के किसी प्रवास के लिए अपना सामान तैयार कर रहे होते तो मेरा प्रश्न होता कि कहाँ जा रहे हैं? उत्तर मिलता था—'परमार जयंती है न। तुम्हारे लिए कुछ लाऊँगा।' प्रायः फोटो देखता था...डॉ. परमार बंद गले का कोट और चूड़ीदार पाजामा पहने हुए। चेहरे पर स्निग्ध मुस्कान है...कहीं दूर देख रहे हैं। अब समझ में आता है कि वह दूर क्यों और क्या देखते थे।

मेरे नज़दीक पहाड़ी अस्मिता का सूत्र प्रतीक हैं डॉ. यशवंत सिंह परमार। उनका व्यक्तित्व बताता है कि अस्मिता बनाए और बचाए रखने के लिए जड़ों से जुड़ना अति आवश्यक होता है। फोरमैन क्रिश्चियन कॉलेज लाहौर से पढ़ा राजा सिरमौर के सचिव बेटा कैनिंग कॉलेज लखनऊ से वकालत की शिक्षा लेता है और फिर बहुपति प्रथा पर डॉक्टरेट भी करता है...आकर कुछ दिन सिरमौर रियासत में सेशन जज बनता है, किंतु अंततः प्रजामंडल में शामिल हो जाता है...क्योंकि राहें पता थी। अन्यथा राजपरिवार से जुड़े युवा के पास सुविधाओं की कमी कैसे हो सकती थी। आज की राजनीति में एक वाक्य विभिन्न राजनेताओं के लिए प्रायः प्रयोग में लाया जाता है—अमुक क्षेत्र तो अमुक नेता का गढ़ है। डॉ. परमार के संदर्भ में यह वाक्य केवल सिरमौर के लिए नहीं, पूरे हिमाचल प्रदेश के लिए लागू होता है। ऊपर और नीचे के हिमाचल का विमर्श डॉ. परमार का विषय नहीं था, शायद इसीलिए। उनके लिए पूरा हिमाचल एक था। जितनी गिरि और बाता नदियाँ परमार की थीं, उतनी ही ब्यास, रावी, सतलुज, यमुना या चंद्रभागा। वह जितने चूड़धार के थे, उतने ही धौलाधार के भी।

पूरे हिमाचल को एक शक्ल देने की ज़िद प्रजामंडल के माध्यम से साकार हुई और इसमें पहला मील पत्थर बना सुकेत सत्याग्रह। वहीं से 15 अप्रैल, 1948 को हिमाचल प्रदेश के अस्तित्व का रास्ता बना। मुख्य आयुक्त का राज्य बना हिमाचल और मुख्य आयुक्त के सलाहकार बने डॉ. परमार। फिर 1952 में मुख्यमंत्री बने। केंद्र की और पंजाब की तत्कालीन सरकारें चाहती थीं कि हिमाचल प्रदेश के रूप में खिले नए फूल को अपने आँगन में रख

लें। फिर राज्य पुनर्गठन समिति की सिफारिशें तो थीं ही हिमाचल प्रदेश के खिलाफ। विरोधस्वरूप, डॉ. परमार ने त्यागपत्र दे दिया और हिमाचल केंद्र शासित प्रदेश बन गया। फिर 1963 में डॉ. परमार पुनः मुख्यमंत्री बने और 1966 में भाषायी आधार पर हिमाचल प्रदेश को उसके वे क्षेत्र मिल गए जो वह चाहता था। 25 जनवरी, 1971 को हिमाचल प्रदेश पूर्ण राज्य बन गया। डॉ. परमार ने 1967 में जिसके बारे में विधानसभा में कहा था, 'मुकम्मल राज्य बनाने के लिए पुरअम्न कोशिशें जारी रखेंगे।' सब जानते हैं कि उस अवसर पर तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी शिमला आई थीं।

1977 आते-आते डॉ. परमार और कांग्रेस के तत्कालीन युवा नेतृत्व के बीच तनातनी बढ़ने से पूर्व ही डॉ. परमार ने त्यागपत्र दे दिया। उस समय खाते में कितने पैसे थे, इस पर कोई स्रोत एकमत नहीं है। कुछ 563 रुपये बताते हैं, कुछ पाँच हज़ार रुपये बताते हैं। जो हो, अधिकतम वाली राशि भी मान ली जाए तो आश्चर्य होता है कि यह हिमाचल निर्माता का बैंक खाता था।

जो एक-एक तिनका जोड़कर आशियाना बनाता है, उसे हर संसाधन का पता होता है। डॉ. परमार ने आराम का जीवन न चुन कर संघर्ष को प्राथमिकता दी। जौन एलिया ने कहा था—

कौन इस घर की देखभाल करे
रोज़ एक चीज़ टूट जाती है।

डॉ. परमार को हिमाचल के लिए चीज़ें जुटाने का जुनून था। सिरमौर के उनके अनन्य मित्र स्वर्गीय बस्ती राम पहाड़ी के पुत्र यतींद्रनाथ शर्मा कहते हैं, 'पिता जी बताते थे कि डॉ. परमार वाहन के अकारण प्रयोग के खिलाफ थे और कहते थे कि भई बस जाती है, उसमें चले जाओ। क्यों गाड़ी में तेल फूँकना?' हिमाचल पथ परिवहन निगम की बसों में किसी ज़माने में चालक के बगल या पीछे वाली सीट सांसद और विधायक के लिए आरक्षित होती थी। यह विचार डॉ. परमार का था। उस ज़माने की सड़कों पर बसों की आरक्षित सीट भी सम्मान थी और अब सड़कें बेशक कहीं बेहतर हैं, महंगे वाहन अवश्य आवश्यकता में गिने जाते हैं।

हिमाचल प्रदेश के पूर्व राज्य निर्वाचन आयुक्त और शांता कुमार के मुख्यमंत्री रहते हुए उनके प्रधान सचिव रह चुके के.सी. शर्मा के पास एक ऐसी याद है, जिससे डॉ. परमार का चेहरा और साफ दिखता है। के.सी. शर्मा तब ऊना के एस.डी.एम. थे। डॉ. परमार लोकसभा चुनाव के सिलसिले में चंबा से आए और तलवाड़ा की ओर से ऊना की सीमा में प्रविष्ट हुए। के.सी. शर्मा से पूछा, 'आप यहाँ क्या कर रहे हैं एस.डी.एम. साहब? चुनाव चल रहे हैं, आप जाइए और आराम कीजिए।' एस.डी.एम. ने उत्तर दिया, 'सर, मैं एस.डी.एम. हूँ और आप मुख्यमंत्री, आपकी सुरक्षा मेरा दायित्व है।' डॉ. परमार जवाब देते हैं, 'आप निश्चिंत होकर जाएँ, यहाँ मेरी सुरक्षा को कोई खतरा नहीं है।'

वास्तव में डॉ. परमार ने हिमाचल प्रदेश को बिजली, पानी, बागवानी, कृषि कार्य संस्कृति या आर्थिक शुचिता के बारे में ही केवल (आचरण से भी) जागरूक नहीं किया, हर व्यक्ति के सम्मान का सूत्र भी दिया था। यतींद्रनाथ शर्मा कहते हैं कि राजकीय बहुतकनीकी संस्थान सुंदरनगर के प्राचार्य को मुख्यमंत्री कार्यालय से एक तार मिला। उसमें लिखा था कि

इतने बजे सड़क के पास आ जाएँ, मुख्यमंत्री महोदय को कोई ज़रूरी बात करनी है। प्राचार्य अगले दिन बताए गए समय पर सड़क के पास खड़े हो गए। किंतु मुख्यमंत्री का वाहन नहीं आया। प्राचार्य ने आधा-पौना घंटा प्रतीक्षा की। इतने में उनकी क्लास का समय हो गया था। प्राचार्य ने चपरासी से कहा कि वह वहाँ खड़ा रहे और मुख्यमंत्री जी आएँ तो सूचित करे। प्राचार्य क्लास लेने चले गए तो पीछे से मुख्यमंत्री का वाहन आ गया। मुख्यमंत्री ने पूछा, 'कहाँ हैं प्राचार्य महोदय?' चपरासी ने जवाब दिया कि वह तो क्लास में हैं पर उन्होंने कहा था कि—'मुख्यमंत्री जी आएँ तो मुझे क्लास से बुला लेना।' मुख्यमंत्री ने मुस्कराते हुए कहा, 'कोई बात नहीं, रहने दो...मैं लौटते हुए मिल लूँगा।'

हमीरपुर में मेवा विधानसभा सीट थी जिसे अब भोरंज कहा जाता है। वहाँ से एक विधायक थे अमर सिंह। विधायकी चली गई तो मेले में चूड़ियाँ बेचने लगे। उसी मेले में डॉ. परमार पहुँचे। देखा कि पूर्व विधायक चूड़ियाँ बेच रहे हैं। डॉ. परमार के पूछने पर बताया कि साधन कोई है नहीं, इसलिए मेले लगाता हूँ, क्या करूँ, जीवन-यापन तो करना है। वहीं से विधायकों की पेंन्शन का विचार डॉ. परमार को आया था जिसे उन्होंने लागू भी किया। आज विधायकों को मिलने वाली यह पेंन्शन बेशक एक लाख रुपये के करीब है पर इसका आरम्भ 300 रुपये से हुआ था।

सिरमौरी व्यंजन असकली, पटांडे, लुश्के और धरोटी के शौकीन डॉ. परमार जनता के बीच जाते तो सत्तू मांग लेते थे। उनके पौत्र जिला पार्षद और जिला कांग्रेस अध्यक्ष आनंद परमार का यह कहना डॉ. परमार के व्यक्तित्व की झलक कितनी स्पष्टता से देता है कि वह आगंतुकों को लोइया और डांगरा जैसी वस्तुएँ भेंट करते थे। लोइया सतत ताप का प्रतीक है जबकि डांगरा कुल्हाड़ी या फरसे की तरह का औज़ार है, जो कृषि-बागवानी के काम भी आता है।

पूर्व मुख्यमंत्री शांता कुमार बताते हैं कि पहली बार विधायक बने तो विधानसभा में खूब गरज-बरस कर भाषण दिया। संयोगवश, अगले ही दिन शांता कुमार के किसी नज़दीकी व्यक्ति को डॉ. परमार से काम निकल आया। बकौल शांता कुमार, वह घबराए कि कल ही तो आग उगली है, आज कैसे जाऊँ। उन्हें कंवर दुर्गा चंद ने बताया कि डरें नहीं, जाएँ और अपना काम बताएँ। शांता कुमार आज भी याद करते हैं कि काम एक ही दिन में हो गया।

लेकिन सार्वजनिक जीवन में प्रतिद्वंद्वी किसके नहीं होते? डॉ. परमार के भी थे। नए या निचले हिमाचल या खासतौर पर कांगड़ा के साथ भेदभाव का ज़िक्र उस दौर में भी होता था। जबकि सत्य यह है कि भेदभाव का आरोप तो डॉ. परमार पर सिरमौर क्षेत्र के संदर्भ में भी लगाया जा सकता है, क्योंकि सड़कों को भाग्यरेखाएँ बताने वाले पहले मुख्यमंत्री के घर तक सड़क बहुत बाद में बनी है। सिरमौर को कोई विशेष प्राथमिकता उनके दौर में मिली हो, ऐसा दिखता नहीं है। उनके मन में भेदभाव होता तो वह पहाड़ और पहाड़ी के इतने आग्रही न होते। वह राजनीति की क्षुद्रताओं में पड़ते तो प्रदेश का पहला बहुतकनीकी संस्थान सुंदरनगर में न बनता, जो मूलतः सिरमौर के लिए आया था। विधानसभा में 1967 में दिए गए भाषण में डॉ. परमार ने कहा था, 'इससे पहले कि मैं बजट की खास बातें पेश करूँ, मैं पहाड़ी इलाके के लोगों की उन खुशियों में शामिल होना चाहता हूँ, जो पहाड़ी इलाकों के इकट्ठा

हो जाने से पैदा हुई हैं और जिनके फलस्वरूप विशाल हिमाचल का जन्म हुआ है। एक जैसे जुगराफियाई हालात और संस्कृति के बावजूद पहाड़ के लोग गैर कुदरती इंतज़ामी रुकावटों की वजह से एक-दूसरे से सदियों तक बिछड़े रहे। घटनाओं और इतिहास की राह में ये गैर कुदरती रुकावटें खड़ी न रह सकीं और एक नवंबर, 1966 को नए सवेरे का जन्म हुआ। हमारे प्रदेश में दोनों क्षेत्रों (नए और पुराने) के कानूनों और सुविधाओं में कुछ इख्तिलाफ है। इस सदन की इच्छा के अनुसार हमें उनमें एकरूपता लानी है, क्योंकि हमारे प्रदेश के लोग दो अलग-अलग कानूनों के अधीन नहीं रह सकते।'

इसके बाद 5 जून, 1972 को विधानसभा में दिए भाषण में उन्होंने कहा, 'जो कुछ किया गया है और जो कुछ करने का प्रस्ताव है, उसकी एक सामान्य रूपरेखा मैंने प्रस्तुत की है। यहाँ मैं नए शामिल क्षेत्रों खासतौर पर कांगड़ा के लोगों के प्रति काल्पनिक अन्याय के बारे में सरकार की नीतियों की जो आलोचना की जाती है, उसकी संक्षेप में चर्चा करूँगा।' फिर डॉ. परमार ने आंकड़े दिए कि किस मद में पुराने क्षेत्रों से अधिक बजट कांगड़ा के लिए रखा गया है। इसके बाद वह कहते हैं—'ऊपर के सम-संभावित आंकड़े अपनी कहानी खुद सुनाते हैं और मुझे उम्मीद है कि ऐसे गैर ज़िम्मेदार अनासिर को, जिन्होंने भेदभाव के विषय को हवा देकर गलत असर पैदा करने की कोशिश की थी, पूरा जवाब मिल गया होगा।'

डॉ. परमार संत हृदय थे, यह बात बार-बार साबित होती है। उनके बड़े कद को रिज की प्रतिमा से या हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय में परमार पीठ से या डॉ. परमार जयंती पर साहित्य संगोष्ठियों से ही नहीं आंका जा सकता। दलीय सीमाएँ होने के बावजूद विधानसभा ने एक पुस्तिका डॉ. यशवंत सिंह परमार के विचारों पर प्रकाशित की थी जिसमें तत्कालीन अध्यक्ष डॉ. राजीव बिंदल और विधानसभा सचिव यशपाल शर्मा के संदेश हैं। यह हिमाचल को बनाने वाले पुरखे के प्रति सुंदर और प्रभावी आदरांजलि है। डॉ. परमार के व्यक्तित्व और कृतित्व को हिमाचल प्रदेश के शैक्षणिक पाठ्यक्रमों में भी उचित स्थान मिलना चाहिए। यह हिमाचल प्रदेश के लिए गौरव की बात है कि डॉ. परमार के बाद भी जितने मुख्यमंत्री हिमाचल प्रदेश को मिले, वे सब सुशिक्षित रहे। हिमाचल प्रदेश की जिस आत्मनिर्भरता का आग्रह विधानसभा में डॉ. परमार द्वारा उर्दू में दिए गए भाषणों में मिलता है, वही आग्रह आज की आवश्यकता भी है।

[राज्य संपादक, दैनिक जागरण, धर्मशाला, ज़िला कांगड़ा, हि.प्र.-176215]

मो. 70184 19751

कहानी हिमाचल के गठन की

❑ **डॉ. यशवंत सिंह परमार**

हिमाचल के गठन से पहले छोटे-छोटे पहाड़ी राजाओं और रानाओं की हुकूमत थी। पहाड़ी लोगों की ज़िन्दगी देश की दूसरी रियासतों की रियाया से बहुत बदतर थी। बाकी मुल्क में हो रही तब्दीलियों और नये खयालात से बे-बहरा हमारे दूरदराज़ इलाकों में बसने वाले लोग जहाँ की सड़कें और संचार के दूसरे साधन थे ही नहीं, यह भी नहीं जानते थे कि उनकी हालत वास्तव में क्या है? छोटी-छोटी रियासतों के हुक्मरानों के पास न तो इतने साधन थे कि इलाकों का विकास किया जाए और न ही उनका ध्यान कभी इस तरफ जाता था। कहीं-कहीं कोई राजा इक्का-दुक्का प्रगतिशील कदम उठाता था। कई रियासतों के हुक्मरान तो यह भी नहीं चाहते थे कि उनकी रियाया को कुछ शिक्षा की सुविधा प्राप्त हो। सिरमौर या कुछ रियासतों के अलावा सब ज़मीन राजाओं की हुआ करती थी। इस विशेषाधिकार के कारण बेहतरीन ज़मीन राजा के पास होती थी! उसके बाद उसके परिवार के लोग और रिश्तेदार आते थे और आम लोगों के पास या तो ज़मीन होती ही नहीं थी या फिर बंजर पहाड़ियाँ ही हुआ करती थीं।

अपनी रियासतों को बाहर के भ्रष्ट प्रभाव से दूर रखने के लिए कई रियासतों को बाहर के लोगों के लिए बंद कर दिया गया था। सड़कों वगैरह के अभाव के कारण सिर्फ कुछ दिलेर किस्म के लोग ही मुश्किल से पैदल चलकर वहाँ पहुँच सकते थे। कुदरती और इन्सान की बनाई बंदिशों की वजह से बाकी भारत से कटे हुए पहाड़ी लोग मध्यकालीन जीवन व्यतीत कर रहे थे। इन हालात के पेशेनज़र कोई हैरानी की बात नहीं कि भारत की आज़ादी के संघर्ष की गूँज यहाँ कोई ज़्यादा सुनाई नहीं दी। इसमें शक नहीं कि लोगों की नाराज़गी और मुखालिफत के इक्के-दुक्के मुज़ाहिरे यहाँ-तहाँ कुछ रियासतों में हुए, लेकिन इनको बेरहमी से दबा दिया गया। रियासतों के बाहर तालीम हासिल करने वाले या तालीम प्राप्त किए हुए नौजवान दिल में घुटन महसूस करते हुए भी बहुत हालातों में मजबूर होकर रह जाते थे। जिन्होंने जरा भी सर उठाने की कोशिश की उनको कुचल दिया गया। रियासतबदर कर दिया गया।

मुल्क की आज़ादी से कुछ साल पहले अखिल भारतीय स्टेट्स प्युपिल्स कॉन्फरेन्स का एक सम्मेलन लुधियाना में हुआ, जिससे पहाड़ी रियासतों के लोगों को एक नई प्रेरणा मिली और 1939 के करीब मुख़्तलिफ रियासतों के राजनीतिक और सामाजिक कार्यकर्ताओं की गतिविधियों में तालमेल करने के लिए शिमला हिल स्टेट्स हिमालया रियासती प्रजामण्डल की स्थापना कर दी गई। पहाड़ी रियासतों के राजनीतिक कार्यकर्ता दमन के डर से या तो रियासतों के बाहर रह कर काम करते थे या वे भूमिगत रहते थे। जुलाई 15, 1939 में धामी

रियासत के प्रजामण्डल ने एक प्रस्ताव पास करके राजा को कहा कि बेगार खत्म की जाए और संवैधानिक सरकार कायम की जाए। अगले दिन प्रजामण्डल का एक प्रतिनिधि मण्डल राजा से मुलाकात करना चाहता था। धामी के सैकड़ों लोग इस प्रतिनिधि मण्डल के साथ चल दिए। राजा ने प्रतिनिधि मण्डल के नेताओं को गिरफ्तार कर लिया। इस पर हुजूम में गम और गुस्से की लहर दौड़ गई। राजा ने खतरा महसूस करते हुए गोली चलाने का हुक्म दे दिया, जिससे दो आदमी मारे गए और कई ज़ख्मी हो गए। यह शायद पहाड़ी रियासतों में आम लोगों की पहली संयुक्त बगावत थी।

इसके बाद छाटे-मोटे विद्रोह और भी कुछ जगह पर हुए, जिनमें से सिरमौर में हुआ पझौता विद्रोह काबिलेज़िक्र है। राजा ने दूसरी आलमी जंग में अंग्रेज़ी सरकार की मदद करने के लिए 1942 में लोगों को फौज में भर्ती करने और साथ में चन्दा जमा करने की मुहिम ज़ोर से शुरू की। जब इस सिलसिले में जब्र की इन्तहा हो गई तो 'पझौता' के लोगों ने एक किसान सभा बनाई और राजा से दर्खास्त की कि वह खुद इन पर ढाये गये अहलकारों के ज़ुल्म की कहानियाँ सुनें जब उनकी सुनवाई न हुई तो एक आज़ाद सरकार बना ली और यह नारा दिया कि 'भाई दूना पाई'। इस बगावत को बहुत बुरी तरह से कुचल दिया गया। इलाके में मकानों को बारूद से उड़ा दिया गया और कई कार्यकर्ताओं की जायदादें जब्त कर ली गईं।

एक तरफ ऐसी इक्का-दुक्का बगावतें और दूसरी तरफ हिमालयन हिल स्टेट्स के प्रादेशिक परिषद की बढ़ती हुई सरगर्मियों से पहाड़ी रियासतों के विलय करने का आन्दोलन तेज हो गया। मैं उन दिनों रियासतों की विलय कमेटी का सदस्य था, जो कि ऑल इंडिया स्टेट्स प्युपिल्स कॉन्फरेंस ने बनाई थी। मुल्क में आज़ादी मिलने से जहाँ पहले और बाद में राजाओं ने विलय का आन्दोलन बढ़ते देखकर यह फैसला किया कि हिमालय की रियासतों में भी सौराष्ट्र की तरह रियासतों की एक यूनियन बनाई जाए। इस सिलसिले में सोलन में 23 जनवरी, 1948 को एक कॉन्फरेंस बुलाने का फैसला किया। इस कॉन्फरेंस से लोगों में जो गलतफहमी फैल सकती थी, हम उससे खबरदार थे। हम जानते थे कि सदियों से राजाओं की हुकूमत के सताए हुए लोग फिर किसी दूसरी शक्ल में उनके चंगुल में फंसना नहीं चाहते थे। कुछ लोगों ने यह प्रस्ताव भी फेंका था कि इन रियासतों को पंजाब में मिला दिया जाए। लेकिन पहाड़ी लोग मैदानी लोगों से घबराते थे, क्योंकि इनका वास्ता उनसे राजाओं के कुछ अफसरान की शक्ल में पड़ चुका था चुनांचे लोगों के जज़्बात को देखते हुए मैंने 25 जनवरी, 1948 को शिमला के गंज मैदान में एक मीटिंग बुलाई, जिसमें साफ तौर पर यह प्रस्ताव पास किया कि व्यक्तिगत रूप से किसी रियासत का वजूद रहना नहीं चाहिए और सबको मिलाकर उनको देश का एक प्रांत बनाया जाए, जिसमें शक्ति लोगों को सौंप दी जाए। दूसरी तरफ सोलन कॉन्फरेंस में 28 जनवरी, 1948 को जैसा कि आशा थी यह प्रस्ताव पास किया गया कि हिमाचल में सौराष्ट्र के तर्ज की हुकूमत बनाई जाए, जिसमें राजप्रमुख वगैरह हों।

इन मुख्तलिफ किस्म के प्रस्तावों से प्रजामण्डल के कार्यकर्ताओं और राजाओं में दरअसल जंग शुरू हुई। जहाँ हुक्मरानों के पिट्ठू अपने षड्यंत्र में मशगूल हो गये, हमने दिल्ली की राह ली, ताकि केन्द्रीय नेताओं से सम्पर्क करके उन्हें सूरतेहाल से आगाह किया जाए।

हमें पूरी तरह पता था कि राजाओं से बातचीत के ज़रिए कोई मसला हल न हो सकेगा, जैसा कि पिछले तजुर्बे ने बताया था। हुक्मरान लोगों के खिलाफ जुल्मों तसद्दुद का

सहारा लेने से बाज़ नहीं आयेंगे।

सरदार वल्लभ भाई पटेल उन दिनों उप-प्रधान मंत्री थे और गृह और राज-मंत्रालय उनके पास थे। सरदार पटेल को यह मालूम था कि जब वह पौ फूटने से पहले अपनी बेटी मुन्नी बेन के साथ सुबह की सैर को निकलते थे तो उनके साथ लोग खुलकर मिल सकते और बातचीत कर सकते थे। मैं सर्दियों की एक ऐसी सुबह को उनसे उनके सैर के वक्त मिला। मैंने अर्ज किया कि सरदार साहब, हमारे हुक्मरान तसद्दुद से बाज़ नहीं आएँगे और हमें भी उनकी हिंसा के जवाब में हथियार इस्तेमाल करने की इजाज़त दी जाए। सरदार ने झट से जवाब दिया, 'तुम्हें किसने रोका है'। मैं देखता ही रह गया और वह आगे चल दिए।

उसी दिन मैं राजमंत्रालय के सेक्रेटरी श्री वी.पी. मेनन से मिला और उनसे सरदार से हुई भेंट के बारे में बतलाया। साथ में मैंने यह दरखास्त की कि हमें देहरादून में, जो कि भारत सरकार का इलाका है हथियार जमा करने की इजाज़त दी जाए और अगर हमारे हथियार पकड़े जायें तो हमारे खिलाफ कोई कार्यवाही न की जाए। श्री मेनन हमारी अजीब-सी दरखास्त पर हैरान रह गये। बोले, अरे भई ऐसा मत करें...हम हिंसा की इजाज़त कैसे दे सकते हैं, हाँ अगर तुम एक हज़ार लोग इकट्ठा करके यह मांग करके दिखा दो कि इन पहाड़ी रियासतों का विलय किया जाये तो बाकी मेरा काम है। मैंने कहा कि हाँ, देखना लोग मारे न जाएँ।

दिल्ली से इस तरह हरी झंडी मिलते ही हमने शिमला का रुख किया। हमने अपना आन्दोलन चलाने के लिए कायम मुकाम सरकार बना दी, जिसके सदर पंडित शिवानंद रमौल थे। हमने एक खुफिया मीटिंग की, जिसमें पं. शिवानंद रमौल, पं. पदमदेव और एल. डी. वर्मा ने भाग लिया। इसमें यह फैसला किया गया कि प्रजामण्डल के तीस-चालीस वर्कर लोरी के नज़दीक फिरन के मुकाम से रियासत सुकेत की करसोग तहसील में दाखिल हों और रियासत के दफ्तरों पर कब्ज़ा कर लें। 18 फरवरी, 1948 को अलस सभा हमारे कार्यकर्ता, जिसमें पं. शिवानंद रमौल, पं. पदमदेव शामिल थे, करसोग तहसील में दाखिल हुए। मुझे यह डियूटी सौंप दी गई थी कि मैं संजौली में बैठकर चोरी से टेलिफोन के ज़रिए हमला के सिलसिले में मिलने वाली खबरों को अखबारों और न्यूज़ एजेंसियों के पास पहुँचाऊँ। हमारे वर्कर असलहा वगैरह से लैस थे। उनके पास इसके अलावा नकली हथगोले वगैरह भी थे। आगे बढ़ते हुए हर पाँचवें मील पर हमारे एक कार्यकर्ता को छोड़ दिया जाता था, ताकि मेरे साथ पूरा सम्पर्क बना रहे। हमारे वर्करों के हौसले बुलन्द थे। और जैसे ही वह आगे बढ़ते गये काफिला बढ़ता गया, मार्च करने वाले सैकड़ों से हज़ारों हो गये और उन्होंने बढ़कर थाना और फिर तहसील पर कब्जा कर लिया। थानेदार और तहसीलदार हिरासत में ले लिये गये। सुन्दरनगर से करसोग तहसील का ताल्लुक बिल्कुल कट गया। राजा को जो संदेश देने वाला आता पकड़ लिया जाता। किसी के बूट में किसी की जेब में राजा का संदेश मिलता। एक तरफ लोग आगे बढ़ रहे थे, दूसरी तरफ अखबारों में बड़ी-बड़ी सुर्खियों से यह खबरें छप रही थीं कि हिमालय हिल रहा है।

राजा को सिर्फ अखबारी खबरों से पता चल रहा था कि उसकी रियासत में हो क्या रहा है। उसने घबराहट में भारत सरकार से शिकायत की कि उसकी रियासत में डाकू घुस आए हैं और उसकी मदद की जाए। भारत सरकार का राज मंत्रालय सारे हालात पर नज़र रखे हुए था। उसने राजा को हुक्म दिया कि रियासत का इन्तज़ाम भारत सरकार के सुपुर्द

कर दिया जाए और अनाने हुकूमत हाथ लेने के लिए जालंधर से जनरल श्री नगेश को सुन्दरनगर जाने का हुक्म दिया गया।

सुकेत का हाल देखते हुए दूसरे राजाओं ने जिन्होंने घबराहट में किसी न किसी तरह प्रजातंत्र-प्रणाली लागू करने की कोशिश की थी, घुटने टेक दिये और कुछ ही दिनों में कोई तीस बड़ी से छोटी रियासतों ने विलय के पत्र पर दस्तखत कर दिये। विलय से कुछ अर्सा पहले 15 मार्च, 1948 को सरदार पटेल ने एक तारीखी खत लिखा कि जब यह इलाका इन्तजामिया और साधनों की दृष्टि से काफी विकसित हो जायेगा तो इसका संविधान भारत के दूसरे प्रांतों की तरह होगा।

प्रजामण्डल के कार्यकर्ताओं को इससे बहुत राहत महसूस हुई, क्योंकि इसमें वह जरासीम मौजूद थे, जो कि भविष्य में हिमाचल को मुनासिब शक्ल और दर्जा दिला सकते थे। इस तरह 15 अप्रैल, 1948 को हिमाचल प्रदेश का जन्म तीस रियासतों के विलय के बाद चीफ कमिश्नर के एक प्रांत की शक्ल में हुआ।[1]

1. इन रियासतों का नाम था—चम्बा, मण्डी, सुकेत, बिलासपुर, बुशहर, खनेटी, देलथ, कियोन्थल, कोटी, ठियोग, मधान, घूण्ड, रतेश, बाघल, जुब्बल, रावी, घाड़ी, बघाट, कुमारसैन, भज्जी, मेहलोग, बलसन, धामी, कूथर कुनिहार, मांगल, बेजा, दरकोटी, थरोच, सांगरी, और सिरमौर।

(विधानसभा स्मारिका से साभार)

डॉ. यशवंत सिंह परमार : महान व्यक्तित्व

विशाल हिमाचल की स्थापना और डॉ. यशवंत सिंह परमार

❑ सुदर्शन वशिष्ठ

डॉ. यशवंत सिंह परमार और पुराने हिमाचल की कहानी कड़े संघर्ष और साथ ही उपलब्धियों की कहानी है। ऐसे समय में जब इस पिछड़े हुए भू-भाग का कोई एक नाम नहीं था, यह क्षेत्र ऐसा दुर्गम था जहाँ बिजली की रोशनी नहीं, पीने का पानी नहीं, सड़कें नहीं, आवागमन के साधन नहीं। यह क्षेत्र सामाजिक, आर्थिक और हर तरह से पिछड़ा हुआ था। जब ग्रामीण किसी जीप या बस को देखने के लिए दौड़े-दौड़े आते थे, जब बिजली का बल्ब एक चमत्कार समझा जाता था, ऐसे समय में डॉ. परमार को हिमाचल प्रदेश की बागडोर मिली।

वैसे भी किसी प्रान्त, किसी भी राष्ट्र का पहला अध्यक्ष आने वाले इतिहास में महत्त्वपूर्ण माना जाता है। ऐसे समय में जब हिमाचल की सलेट पूरी तरह खाली थी, उस पर कोई इबारत नहीं लिखी गई थी, पूरे परिदृश्य में एक शून्य व्याप्त था, ऐसे समय में एक राजनेता का प्रवेश और प्रदेश की बागडोर सम्भालना, निश्चित रूप से महत्त्वपूर्ण था। किसी भी क्षेत्र का प्रथम कर्णधार महत्त्वपूर्ण तो होता ही है, उसे इतिहास में लम्बे समय तक याद रखा जाता है। राष्ट्र हो, देश हो, प्रदेश हो, चाहे एक गाँव ही क्यों न हो जो उसे पहली बार कोई दिशा देता है वह सौभाग्यशाली माना जाता है। ऐसे ही सौभाग्यशाली थे डॉ. यशवंत सिंह परमार जिन्हें इस प्रदेश की बागडोर मिली।

डॉ. परमार का विवाह 26 जनवरी, 1924 को चन्द्रावती चौहान से हुआ जिनसे चार पुत्र हुए। सन् 1969 में इनकी मृत्यु हो गई। डॉ. परमार ने दूसरा विवाह सत्यानंद स्टोक्स की पुत्री सत्यावती डांग से किया जो राज्यसभा सदस्य थीं। यह दुर्भाग्य रहा कि हमें उनके समय काम करने का मौका नहीं मिला। सन् 1977 के अंतिम दिनों जब मैं हिमाचल सरकार में सेवारत हुआ, वे अपने पद से त्यागपत्र दे चुके थे।

डॉ. यशवंत सिंह परमार का स्मरण हिमाचल प्रदेश की स्थापना और निर्माण के लिए किया जाता है। इसके साथ कृषि, बागवानी, शिक्षा एवं पहाड़ी संस्कृति के संरक्षक के रूप में भी डॉ. परमार को जाना जाता है। डॉ. परमार का ज़िक्र आते ही एक छोटे से पहाड़ी राज्य का चित्र उभरता है जो एक पिछड़ा हुआ, दूरस्थ और कटा हुआ क्षेत्र था। क्या यह भू-भाग स्वतन्त्र अस्तित्व में आएगा भी या नहीं, यह शंका उस समय में बराबर उठती थी। हिमाचल प्रदेश की अस्मिता और प्रगति की जब बात होती है, डॉ. परमार का नाम अनायास ही स्मरण

हो आता है। वे सन् 1943 से 1946 तक सिरमौर एसोशिएशन के सचिव रहे और 1946-47 में हिमाचल पहाड़ी राज्य परिषद् के अध्यक्ष बने। इन्हीं दिनों प्रजामण्डल आन्दोलन आरम्भ हुए और डॉ. परमार सिरमौर प्रजामण्डल के बाद सुकेत सत्याग्रह में शामिल हुए।

डॉ. परमार का स्वाधीनता संग्राम में सक्रिय योगदान 1947 से दिखलाई पड़ता है। भज्जी के लीलादास वर्मा, बिलासपुर के कांशी राम और कुछ अन्य लोग लाहौर गए और डॉ. परमार को वहाँ से शिमला ले आए। यहाँ आकर पं. पद्मदेव, दुर्गासिंह राठौर आदि के आग्रह पर ये स्वाधीनता संग्राम में कूद पड़े और शिमला में वकालत भी शुरू की। इनके आवास का प्रबन्ध संजौली स्थित 'कृष्ण विला लॉज' में किया गया। स्थायी रूप से यहाँ आ जाने पर वे प्रजामण्डलों के माध्यम से रियासती विद्रोहों में शामिल हुए। इस समय सिरमौर में वैद्य सूरत सिंह, बिलासपुर में कांशीराम और शिमला में पंडित पद्मदेव के साथ परमार एक अग्रणी नेता बने। उस समय एक ऐसे नेता की आवश्कता थी, जो सुशिक्षित और विवेकशील हो।

डॉ. परमार को मार्च, 1947 में शिमला में हुई हिमालयन हिल स्टेट्स रीजनल कौंसिल का प्रधान चुना गया। अब परमार ने नेतृत्व सम्भाला और शीघ्र ही उन्हें बहुत लोगों ने अपना नेता स्वीकार कर लिया। इन्होंने खद्दर पहनना आरम्भ किया और ग्वालियर में होने वाले कांग्रेस अधिवेशन में अन्य नेताओं के साथ भाग लेने चले गए।

जून, 1947 में पंजाब और शिमला का अलग संगठन बनने पर हिमाचल में 'हिमालयन हिल स्टेट्स सब रीजनल कौंसिल' बनी तो डॉ. परमार को प्रधान चुना गया। अब डॉ. परमार इस कौंसिल के क्रियाक्लापों को सफलतापूर्वक चलाते रहे और प्रजामण्डल आन्दोलनों का संचालन शिमला से करते रहे। 31 जुलाई, 1947 को शांगरी में प्रजामण्डल आन्दोलन का एक खुला अधिवेशन हुआ जिसमें 'हिमालयन हिल स्टेट्स सब रीजनल कौंसिल' के प्रधान के नाते डॉ. परमार भी शामिल हुए। इस सम्मेलन में राजा शांगरी ने अपनी राजगद्दी छोड़ दी। इस तरह विभिन्न रियासतों में आन्दोलनों के समय पद्म देव, भागमल सौहटा, सत्यदेव बुशहरी, भास्करानंद, ठाकुर हरिदास, स्वामी पूर्णानंद आदि के साथ डॉ. परमार सक्रिय रहे।

सुकेत रियासत में सत्याग्रहों के कारण डॉ. परमार व उनके साथियों को इस रियासत से निष्कासित कर रखा था। डॉ. परमार ने सुकेत में सत्याग्रह करने के उद्देश्य से 12 फरवरी, 1948 को तत्तापानी की एक सराय में सत्याग्रहियों की एक बैठक बुलाई, जिसमें सुकेत रियासत से आन्दोलनकारियों ने भी भाग लिया। बैठक में सुकेत के राजा लक्ष्मण सेन को नोटिस भेजा गया कि वे रियासत को संघ में विलय करने की घोषणा कर दें, अन्यथा सत्याग्रह किया जाएगा। राजा का कोई उत्तर न आने पर 16 फरवरी को सुकेत सत्याग्रह आरम्भ हो गया। डॉ. परमार ने इसका संचालन किया और अनेकों सत्याग्रहियों के जत्थे तत्तापानी से होते हुए करसोग, पांगणा से सुंदरनगर जा धमके। सत्याग्रहियों ने राजधानी पर कब्ज़ा कर लिया और राजा लक्ष्मणसेन दिल्ली चले गए। केन्द्रीय सरकार की ओर से जालन्धर से चीफ कमिश्नर के पहुँचने पर सुंदरनगर पर अपना अधिकार कर लिया गया।

उधर पंजाब नेता महापंजाब बनाने के हक में थे तो उत्तर प्रदेश के नेता टिहरी गढ़वाल, सिरमौर और शिमला की रियासतों को उत्तर प्रदेश में मिलाना चाहते थे। महाराजा पटियाला के समर्थक नालागढ़, क्योंथल, सिरमौर, चम्बा और शिमला हिल्ज़ को मिलाकर

कोहीस्तान बनाना चाहते थे। इधर पहाड़ी रियासतों के नेता भी अलग-अलग हो गए। एक ओर डॉ. यशवंत सिंह परमार और पं. पद्मदेव थे तो दूसरी ओर सत्यदेव बुशहरी और भागमल सौहटा। परमार, पद्म ने हिमालयन हिल स्टेट्स रीजनल कौंसिल अलग बना ली।'मिनिस्ट्री ऑफ स्टेट्स' के अधिकारियों से पद्म-परमार तथा सौहटा-बुशहरी अलग-अलग मिलते रहे। अंततः 8 मार्च, 1948 को शिमला हिल्ज़ की 27 रियासतों के विलय से 'हिमाचल प्रदेश' बनाने की दिशा में सोचा जाने लगा।

पहली मार्च, 1948 को पटियाला में अखिल भारतीय लोक राज्य परिषद् की कॉन्फ्रेंस हुई जिस में यहाँ से डॉ. परमार तथा दौलतराम सांख्यान गए और सीता रमैया से भेंट की। इसके बाद ये नेता दिल्ली में 'मिनिस्ट्री ऑफ स्टेट्स' के अधिकारियों से भी मिले और अपना पक्ष रखा। इस बीच दो मार्च को 'मिनिस्ट्री ऑफ स्टेट्स' ने दिल्ली में शिमला व पंजाब के शासकों की बैठक बुलाई जिसमें बघाट के राजा दुर्गासिंह ने सोलन में हुई सभा के अनुसार 'हिमाचल प्रदेश' नाम से अलग प्रान्त बनाने और सामूहिक विलय का आग्रह किया। इस तरह 8 मार्च, 1948 को शिमला हिल्ज़ की 27 पहाड़ी रियासतों को मिला कर 'हिमाचल प्रदेश' के गठन की प्रक्रिया आरम्भ हुई।

अतः शिमला हिल्ज़ स्टेट्स की 27 रियासतों मण्डी, चम्बा और सिरमौर यानि कुल तीस रियासतों के विलय से 15 अप्रैल, 1948 को 'चीफ कमिश्नर्ज़ प्रोविंस' के रूप में 'हिमाचल प्रदेश' नाम से गठित इस प्रोविंस का कुल क्षेत्रफल मात्र 27,018 वर्ग किलोमीटर था। आज का शिमला, जो अब प्रदेश की राजधानी है, इसमें शामिल नहीं था। इसमें केवल चार ज़िले या ईकाइयाँ— महासू, चम्बा, मण्डी तथा सिरमौर थीं। राजा बिलासपुर ने विलय पत्र में हस्ताक्षर करने से मना कर दिया, अतः बिलासपुर हिमाचल प्रदेश में नहीं मिला।

पहली मार्च, 1948 को पटियाला में अखिल भारतीय लोक राज्य परिषद् की कॉन्फ्रेंस हुई जिस में यहाँ से डॉ. परमार तथा दौलतराम सांख्यान गए और सीता रमैया से भेंट की। इसके बाद ये नेता दिल्ली में 'मिनिस्ट्री ऑफ स्टेट्स' के अधिकारियों से भी मिले और अपना पक्ष रखा। इस बीच दो मार्च को 'मिनिस्ट्री ऑफ स्टेट्स' ने दिल्ली में शिमला व पंजाब के शासकों की बैठक बुलाई जिसमें बघाट के राजा दुर्गासिंह ने सोलन में हुई सभा के अनुसार 'हिमाचल प्रदेश' नाम से अलग प्रान्त बनाने और सामूहिक विलय का आग्रह किया। इस तरह 8 मार्च, 1948 को शिमला हिल्ज़ की 27 पहाड़ी रियासतों को मिला कर 'हिमाचल प्रदेश' के गठन की प्रक्रिया आरम्भ हुई।

इस बीच 25 अप्रैल, 1948 को कांग्रेस का अधिवेशन मुंबई में हुआ जिसमें प्रजामण्डलों को कांग्रेस में शामिल करने का निर्णय लिया गया। हिमाचल प्रदेश से प्रजामण्डल के प्रतिनिधि के रूप में कांग्रेस कार्यकारी परिषद् के लिए डॉ. यशवन्त सिंह परमार को मनोनीत किया गया। प्रजामण्डलों का कांग्रेस में विलय हुआ और इस कारण हिमालयन हिल स्टेट्स रीजनल कौंसिल को 'हिमाचल प्रदेश कांग्रेस कमेटी' का दर्जा प्राप्त हुआ। यहाँ के सभी प्रजामण्डलियों ने कांग्रेस की सदस्यता के फॉर्म भरे। 6 जून, 1948 को 'हिमाचल प्रदेश कांग्रेस कमेटी' की प्रथम बैठक हुई जिसमें डॉ. परमार को कांग्रेस का प्रधान चुना गया।

इस समय डॉ. परमार कांग्रेस के प्रधान थे अतः वे एक शीर्षस्थ नेता के रूप में उभर कर सामने आए। कांग्रेस द्वारा अब लोकप्रिय सरकार बनाने के लिए संघर्ष किया गया।

केन्द्रीय सरकार द्वारा हिमाचल प्रदेश को 'पार्ट सी' का दर्जा दे कर 'विधान मण्डल' की व्यवस्था की गई जिसके फलस्वरूप सन् 1952 के आम चुनावों के साथ हिमाचल प्रदेश में भी चुनाव हुए। कांग्रेस पार्टी द्वारा चारों लोकसभा सीटों और 36 में से 28 विधानसभा सीटों पर विजय प्राप्त की। एक सीट अनुसूचित जाति तथा शेष आज़ाद उम्मीदवारों ने जीतीं।

24 मार्च, 1952 को डॉ. यशवन्त सिंह परमार प्रथम मुख्यमन्त्री बने और लोकप्रिय सरकार का गठन हुआ। चीफ कमिशनर की जगह मेजर हिम्मत सिंह उप-राज्यपाल बने। इसी वर्ष प्रथम पंचवर्षीय योजना में हिमाचल प्रदेश को शामिल किया गया और 5.27 करोड़ बजट का प्रावधान रखा गया।

12 अक्तूबर को दशहरे के दिन राजा आनंद चंद ने विलय पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये। किन्तु केन्द्र सरकार ने बिलासपुर को केन्द्र शासित प्रदेश बनाकर राजा आनंद चंद को चीफ कमिशनर नियुक्त कर दिया। वास्तव में भाखड़ा डैम का निर्माण कार्य चल रहा था, इस कारण बिलासपुर को हिमाचल प्रदेश में नहीं मिलाया गया। पं. जवाहरलाल नेहरू ने लोकसभा में बिलासपुर के विलय की घोषणा की और अंततः प्रथम जुलाई, 1954 को बिलासपुर पूर्णतया हिमाचल प्रदेश में मिलाया गया।

डॉ. परमार 1952 से 1956 तक मुख्यमंत्री रहे और अपने इस कार्यकाल में उन्होंने विशाल हिमाचल के लिए संघर्ष लगभग 1954 में आरम्भ किया। अभी हिमाचल के अस्तित्व पर खतरा बना हुआ था, क्योंकि 'राज्य पुनर्गठन आयोग' ने हिमाचल को पंजाब में विलय करने की सिफारिश की थी। इस विलय के ख़िलाफ कांग्रेस सहित सभी पार्टियों ने कड़ा विरोध किया। अतः हिमाचल प्रदेश को अलग रखने का निर्णय लिया गया। इस संघर्ष में हिमाचल प्रदेश का 'पार्ट सी' का दर्जा घटा कर 'केन्द्र शासित प्रदेश' बना दिया। विधानसभा भंग कर दी गई। डॉ. परमार ने 31 अक्तूबर, 1956 को त्याग पत्र दे दिया। ये 1957 में लोकसभा के सदस्य भी बने। इसके बाद वे पुनः विधानसभा के सदस्य बने।

प्रथम नवम्बर, 1956 को उप राज्यपाल ने कार्यभार सम्भाल लिया। 15 अगस्त, 1957 को 'टेरिटोरियल कौंसिल' में जनता के प्रतिनिधि लिए गये। यह 'टेरिटोरियल कौंसिल' 1963 तक रही।

पुनः लोकप्रिय सरकार बनाने और विशाल हिमाचल के सपने को साकार करने के लिए 'विशाल हिमाचल समिति' नाम से एक सर्वदलीय समिति गठित की गई जिसमें कांग्रेस के चेयरमेन विद्याधर थे। दिसम्बर, 1959 में डॉ. परमार के नेतृत्व में हिमाचल प्रदेश कांग्रेस कमेटी का शिष्टमण्डल दिल्ली गया।

इन प्रयासों से विशाल हिमाचल तो नहीं बन पाया, किन्तु विधान बनने की आशा बन्ध गई। प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू तथा गृहमंत्री लाल बहादुर शास्त्री के आश्वासन पर 1962 का चुनाव लड़ा गया और कांग्रेस विजयी हुई। एक जुलाई, 1963 को टेरिटोरियल कौंसिल को विधानसभा में बदल दिया गया और डॉ. परमार पुनः मुख्यमंत्री बने।

विशाल हिमाचल का सपना प्रथम नवम्बर, 1966 को पूरा हुआ जब ज़िला कांगड़ा, कुल्लू, ऊना और शिमला, नालागढ़, डलहौजी, बकलोह आदि के पहाड़ी क्षेत्रों को हिमाचल में मिलाया गया।

25 जनवरी, 1971 को पूर्ण राज्यत्व की प्राप्ति प्रदेश के लिए डॉ. परमार का एक

और सपना पूरा हुआ तथा हिमाचल के सफर में एक और मील का पत्थर बना।

24 मार्च, 1952 को गठित मन्त्रीमण्डल में डॉ. परमार मुख्यमन्त्री के साथ दो मन्त्री थे—गौरी प्रसाद, लोक निर्माण मन्त्री और पद्म देव, गृह मन्त्री। जुलाई, 1963 में मुख्यमन्त्री होते हुए इनके साथ दो मन्त्री; करम सिंह (राजस्व मन्त्री) तथा हरि दास (विकास मन्त्री) थे। सन् 1966 में भी यही दो मन्त्री रहे। 22 अप्रैल, 1967 को इनके मन्त्रीमण्डल में लालचंद प्रार्थी (स्वास्थ्य मन्त्री), हरि राम चौधरी (विधि मन्त्री), राम लाल (शिक्षा मन्त्री), सुख राम (वित्त मन्त्री), मेंहगा सिंह, करतार सिंह वजीर, नेक राम नेगी, दौलत राम सांख्यान उप मन्त्री रहे। सन् 1967 में इनके मन्त्रीमण्डल में ग्यारह मन्त्री; 1972 में सात मन्त्री तथा एक चीफ पार्लियामेंट सेक्रेटरी तथा एक पार्लियामेंट सेक्रेटरी थे। 1975 के मन्त्रीमण्डल में छः मन्त्री तथा एक चीफ पार्लियामेंट सेक्रेटरी तथा एक पार्लियामेंट सेक्रेटरी थे।

बागवानी और कृषि डॉ. परमार के प्रिय विषय थे। उन्होंने बागथन स्थित अपने आवास पर फलों का एक बागीचा लगाया हुआ था जिस में प्लम, नाशपाती, अंजीर और जैतून के फल उगाए हुए थे। प्रदेश की भौगोलिक स्थिति को देखते हुए उन्होंने कृषि और विशेषकर बागवानी को बढ़ावा देने का संकल्प लिया। उन्होंने बागवानी के लिए एक संघटित योजना तैयार की, जिसमें फल उत्पादन के साथ उत्पादन को मण्डियों तक पहुँचाने और बिक्री करने का प्रावधान शामिल था। विश्व बैंक के साथ मिलकर ये देश की सम्भवतः पहली योजना थी जिसमें फल उत्पादन से लेकर मार्केटिंग तक का प्रबन्ध शामिल था। उन्होंने कृषि और बागवानी का जो एक सपना देखा वह नवम्बर, 1978 में सरवण कुमार कृषि विश्वविद्यालय पालमपुर तथा दिसम्बर 1984 में डॉ. यशवंत सिंह परमार बागवानी विश्वविद्यालय नौणी, सोलन के रूप में बाद में पूरा हुआ।

डॉ. परमार ने 'हिमालयन वनखेती एवं पर्यावरण संरक्षण समिति' का भी गठन किया था जिसके अध्यक्ष वे स्वयं थे। वे कहा करते थे—"यह अफसोस की बात है कि उन लोगों को भी पेड़ों के महत्त्व और अधिक वृक्षारोपण की ज़रूरत का एहसास नहीं जिनका फर्ज़ ही पेड़ों की हिफाज़त करना है। दुर्भाग्य से खासतौर पर किसानों द्वारा भी इसके गंभीर और दूरगामी परिणामों को पूरी तरह महसूस नहीं किया जा रहा। वनों सम्बन्धी राष्ट्रीय नीति प्रस्ताव के अनुसार राज्यों में मैदानी रकबे का 40 प्रतिशत और पहाड़ी रकबे का 60 प्रतिशत वनों के अधीन रखा जाना ज़रूरी है।"

विकास की सारी योजनाओं के साथ-साथ वे कला-संस्कृति के प्रति भी उतने ही संवेदनशील थे। कला-संस्कृति तथा भाषाओं के उत्थान के लिए उन्होंने अक्तूबर, 1972 में प्रदेश में 'हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी' का एक स्वायत्त संस्था के रूप में गठन विधानसभा में प्रस्ताव पारित करके किया जिसके अध्यक्ष वे स्वयं बने। इतना पहले जबकि देश के कई प्रदेशों में ऐसी संस्थाएँ नहीं बनी थीं, अकादमी का गठन उनकी आधुनिक सूझ-बूझ का परिचय देता है।

सादगी और ईमानदारी के प्रतीक के रूप में डॉ. परमार को याद किया जाता है। उन्होंने अपनी वेशभूषा को नहीं छोड़ा। गाँव-गाँव पैदल घूमकर, ग्रामीणों के बीच रहते हुए उन्होंने असली पहाड़िया होने का सबूत दिया।

डॉ. यशवंत सिंह परमार 8 मार्च, 1952 से 31 अक्तूबर, 1956 तक विधान मण्डल

के मुख्यमन्त्री रहे। इसके बाद प्रथम जुलाई, 1963 से 28 जनवरी, 1977 तक लगातार दो बार मुख्यमन्त्री रहे।

उनका यह दूरदर्शी विचार आज फलीभूत हो रहा है जब हिमाचल सेब राज्य के साथ-साथ सब्ज़ी राज्य भी बन रहा है। यहाँ की सब्ज़ियाँ विदेशों तक जा रही हैं।

वे चतुर राजनीतिज्ञ, कुशल प्रशासक, विधि के ज्ञाता और दूरदर्शी नेता थे जिन्होंने हिमाचल प्रदेश के हित में अनेक कार्य किए। हिमाचल को एक अलग पहचान दिलाना उनका ध्येय रहा। उन की बनाई नीतियाँ बहुत आगे तक चली रहीं। बजट कहाँ दिया जाए, इस बारे उनके विचार स्पष्ट थे—"महज़ आबादी के लिहाज़ से किसी जगह विशेष को रुपया नहीं मिलना चाहिए और न ही तरक्की के काम होने चाहिए। अगर महज़ ऐसा करें तो जितने भी कठिन इलाके हैं, उनमें तो फिर कुछ होने वाला नहीं, क्योंकि आबादी ज़्यादा उन इलाकों में होगी जो तरक्की-याफ्ता इलाके होंगे, आसान इलाके होंगे।"

प्रदेश की भाषाओं, कला व संस्कृति के उत्थान के लिए उन्हीं के निर्देशन में कला-भाषा-संस्कृति अकादमी का गठन विधानसभा में प्रस्ताव पारित करने के उपरान्त अक्तूबर, 1972 को हुआ।

सादगी और ईमानदारी के प्रतीक डॉ. परमार ने विपरीत परिस्थितयों को भांपते हुए 24 जनवरी, 1977 को मुख्यमन्त्री के पद से त्यागपत्र दे दिया और एक साधारण नागरिक की तरह जीवन-यापन करने लगे। चौहत्तर वर्ष की आयु में स्नोडन अस्पताल, शिमला में 2 मई, 1981 को इनका देहावसान हुआ।

['अभिनंदन' कृष्ण निवास, लोअर पंथाघाटी, शिमला-171009]

मो. 94180 85595

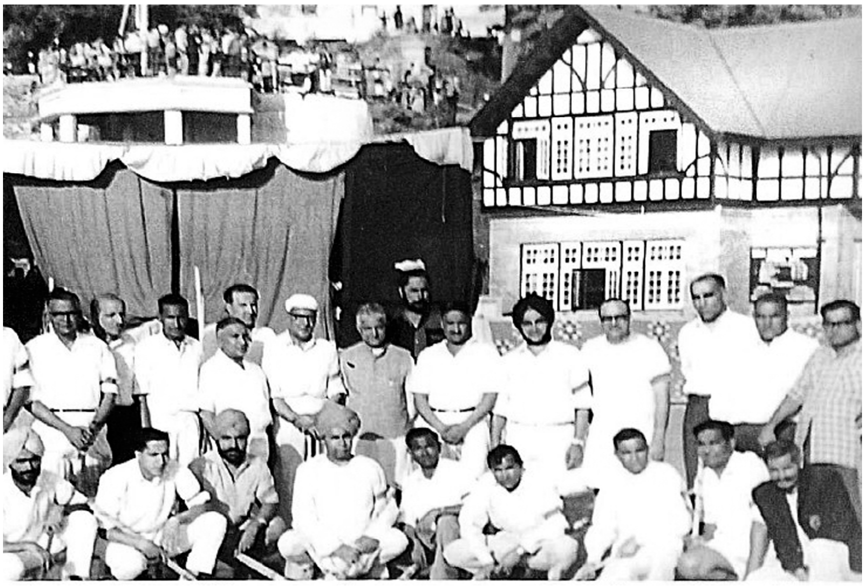

रिज पर आयोजित कार्यक्रम उपरांत सामूहिक चित्र में डॉ. यशवंत सिंह परमार

कर्मयोगी और सच्चे लोकनायक डॉ. परमार

❑ जगदीश शर्मा

कुछ प्रतिभाएँ ऐसी भी होती हैं जिन्हें देश-काल, धर्म, जाति तथा विधाओं और कर्मक्षेत्रों की सीमाओं में बाँध कर नहीं रखा जा सकता, हिमाचल निर्माता डॉ. परमार भी ऐसी ही विभूतियों में से एक थे। भारतीय स्वाधीनता प्राप्ति, राष्ट्र निर्माण और राष्ट्र विकास में परमार साहब का विशेष योगदान रहा है। वह एक जागरूक राजनयिक, कुशल समाजसेवी, योग्य प्रशासक, निष्पक्ष न्यायाधीश, संवेदनशील साहित्यकार, पहाड़ी संस्कृति, लोककला तथा भाषा पारखी और संरक्षक, कुशल बागवान, कृषक तथा सच्चे लोक नायक और विशेषतः पहाड़ी लोगों के मसीहा थे। बहुमुखी प्रतिभा के स्वामी डॉ. परमार तात्कालिक पंजाब हिल स्टेट्स की विभिन्न पहाड़ी रियासतों को एकत्र कर एक स्वतंत्र राजनैतिक इकाई—हिमाचल प्रदेश को अस्तित्व में लाने से लेकर इसे विशाल हिमाचल और पूर्ण राज्य का दर्जा दिलाने तक के सफर के सफल नायक, जन-जन के नेता, पहाड़ी लोगों को उनकी अस्मिता का बोध कराने और भाषा-संस्कृति की पहचान करा कर इसे राष्ट्र के सम्मुख एक सम्मानजनक स्थान दिलाने तथा पहाड़ों की आर्थिक उन्नति और विकास के मसीहा के रूप में सदा याद किये जाते रहेंगे।

4 अगस्त, 1906 को चन्हालग गाँव में जन्में 17 वर्षों से अधिक समय तक प्रदेश के मुख्यमंत्री, 7 वर्षों तक प्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष रहे डॉ. परमार के बारे में यदि एक पंक्ति में कहना हो तो हम कह सकते हैं कि अपने आपको पहाड़िया कहलाने में गौरव अनुभव करने वाले डॉक्टर परमार 'पहाड़' के साथ एकात्म हो गए थे। "दो नाम मिल गूँथ कर / एक हो गए हैं /... अर्थात् वे पर्याय हो गए हैं एक-दूसरे के पहला नाम 'पहाड़' है और दूसरा 'परमार'।"

हिमाचल के विकास की कहानी वास्तव में डॉ. परमार के जीवन की ही कहानी है क्योंकि उनका स्वप्न, कर्म और वचन सब हिमाचल की खुशहाली ही देखना, करना तथा बखानना था। इतिहास में सदा उनके जीवन की कहानी इस प्रदेश के अद्भुत नेतृत्व वाले व्यक्तित्व का सुनहरी उदाहरण रहेगा, जिसका जीवन पहाड़ी लोगों की सेवा के ऊबड़-खाबड़ रास्ते में कभी न थकने वाली कहानी है। पहाड़ की माटी और लोक संस्कृति के पारंपरिक रूप से जुड़े हुए, पहाड़ से अजेय और अदम्य साहस वाले इन्सान के रूप में कर्मयोगी की भांति सिद्धान्तों के प्रति निष्ठावान, अद्भुत त्याग की मूर्ति थे परमार साहब। अपने सार्वजनिक जीवन की शुरुआत सिरमौर के सैशन जज के रूप में की तो सत्य व सिद्धान्तों से समझौता न करते हुए स्वेच्छा से पद से त्याग पत्र दे दिया और फिर पढ़ाई के लिए राजा सिरमौर से लिए उधार के बदले में घर-बार भी बेचना पड़ गया। हिमाचल को पंजाब में मिलाने की शर्त पर महा पंजाब के मुख्यमंत्री के पद का प्रलोभन भी अलग हिमाचल के स्वरूप के लिए ठुकरा

दिया और हिमाचल को पंजाब की कोख से छीन लिया। जब पंडित नेहरू ने उनके विरुद्ध किसी शिकायत के कारण नाराज़गी जताई तो तुरंत कहा यदि आपके विचार से मैं ठीक से काम नहीं कर रहा हूँ या मैंने कहीं कोई गलती की है तो मैं इसी समय अपना इस्तीफा दे देता हूँ। नेहरू जी इनकी सत्यनिष्ठा व कर्त्तव्य भावना को समझते थे, भाँप लिया कि यह किसी की चाल थी, इसीलिए इसके बाद परमार में उनका विश्वास और भी बढ़ गया।

जब हम डॉ. परमार के राजनैतिक और सामाजिक जीवन पर दृष्टिपात करते हैं तो स्वयमेव डॉ. परमार एक ऐसी ऊर्जा के रूप में दिखाई देते हैं जिनके विराट व्यक्तित्व ने एक संस्था का रूप ले लिया था और पूरा हिमाचल इनसे अनुप्राणित होता रहा। सड़क निर्माण को वह अपनी पहली प्राथमिकता मानते थे क्योंकि पहाड़ी प्रदेशों की यह जीवन रेखा होती है। दूसरी प्राथमिकता पनबिजली योजना थी। इसके बाद वानिकी और औद्योगिकी उनकी प्राथमिकता रही। उन्होंने केन्द्र के साथ इस बात को बड़ी शिद्दत के साथ उठाया कि योजना आयोग को पर्वतीय क्षेत्रों के विकास की रूपरेखा की दृष्टि से एक पृथक कक्ष स्थापित होना चाहिए तथा इसके लिए पृथक विभाग का गठन किया जाना चाहिए। उन्होंने तर्क देकर यह सिद्ध किया कि—"गरीबी पहाड़ों की नियति नहीं है, कल यही पहाड़ समृद्धि के परिचायक होंगे, परन्तु इतना अवश्य ध्यान रहे कि यह समृद्धि पर्यावरण को हानि पहुँचाकर नहीं होनी चाहिए।" इसलिए उन्होंने इस बात पर बल दिया कि पहाड़ों की योजनाओं के मानदण्ड मैदानों के आधार पर तय नहीं किए जा सकते। एक सफल कृषक तथा दूरदर्शी आर्थिक नीतिकार के रूप में उन्होंने प्रदेश में फलों की खेती, मिश्रित खेती, त्रिमुखी वन खेती तथा विद्युत परियोजनाओं की ओर लोगों और वैज्ञानिकों का भी ध्यान आकर्षित किया और इसीलिए आज प्रदेश सेब राज्य ही नहीं, अपितु फल राज्य के रूप में आदर्श बन गया है। उस जमाने में जब सांस्कृतिक प्रदूषण और पर्यावरण के खतरे के बारे कोई सोच भी नहीं रहा था उसी समय इसे भाँपते हुए उन्होंने इसका दिशाबोध कराकर खबरदार कर दिया था।

एक बहुत बड़े चिंतक, लेखक और रचनाकार। विद्वानों और रचनाकारों से मिलना उन्हें बहुत अच्छा लगता था। एक बार 15 अगस्त के उपलक्ष्य में कालीबाड़ी में आयोजित एक कवि सम्मेलन में मूसलाधार बारिश में भीगते हुए ठीक समय पर पहुँच गए। बहुत कम लोग आए थे, इस बात का उन्होंने तनिक भी बुरा नहीं मनाया, हंस के अपने भाषण में कहा—'ऐसी बारिश में भी जो कवि और अन्य लोग आए हैं उन्हें वीरचक्र पुरस्कार मिलना चाहिए।' मैं इस घटना का प्रत्यक्ष गवाह हूँ कहने लगे इनकी 'पोलएंड्री इन हिमालयन' को उसी समय एक क्रांतिशील पुस्तक के रूप में आंका जाने लगा था। वह मूलतः एक मानवतावादी राजनेता थे जिनके जीवन पर नैतिक मूल्यों की छाया स्पष्ट दिखाई देती है और जिनका पूरा जीवन राजनैतिक संघर्ष की वीरतापूर्ण गाथा है। आज हिमाचल प्रदेश जो कुछ भी है, वह महान स्वप्नदृष्टा परमार के कारण ही है। यही कारण था कि असंभव प्रतीत होती परिस्थितियों को भी उन्होंने संभव कर दिखाया। उनका मानना था कि यदि इस भू-भाग की अलग पहचान को बनाए रखना है तो यहाँ की संस्कृति को ज़िन्दा रखना है। यहाँ की संस्कृति को ज़िन्दा इकाई का स्वरूप देना आवश्यक होगा, अन्यथा जहाँ एक ओर यहाँ की संस्कृति लुप्त हो जाएगी, वहीं दूसरी ओर यहाँ की गरीबी व अशिक्षित जनता पंजाब के पूँजीपतियों के लिए सस्ते मजदूरों की एक खान बन कर रह जाएगी। पहाड़ों की हरियाली बनी रहे, यहाँ की

संस्कृति, यहाँ के लोकगीत, लोक गाथाएँ व यहाँ के लोग उन्नति के शिखर पर पहुँचे। पं. नेहरू ने विदेशी राजदूतों के एक सम्मेलन में डॉ. परमार का परिचय यूँ कराया था—"इनसे मिलिए ये हैं मेरे पहाड़ी राज्य के मुख्यमंत्री डॉ. परमार"। केन्द्र शासित प्रदेश होने की वजह से हिमाचल की ज़मीन पर बनी विद्युत परियोजनाओं में हिमाचल को कोई हिस्सा नहीं रखा गया, इसका दुःख उन्हें अंत तक रहा।

एकदम सीधा-सादा जीवन जीने वाला एक असाधारण व्यक्तित्व। कांधे पर झोला, हाथ में छड़ी तेज़-तेज़ चलते अकेले कॉफी हाऊस में प्रवेश और मंद-मंद मुस्कान से चारों तरफ नज़र दौड़ाना, सभी लोग उन्हें देख अदब से खड़े होकर टेबल छोड़ देते थे, परन्तु वह सरलता से बोलते—अरे भई! बैठे रहो मैं भी बैठ जाऊँगा कहीं और तुरंत एक टेबल खाली हो जाता। आनन्द से कॉफी की चुस्की लेते और हाथ हिलाते, मुस्कान बिखेरते कॉफी हाऊस से बाहर हो जाते। घर में कुल 500 रुपये की आय से ही घर खर्च चलाने की हिदायत। तंगी पर घर में गुड़ की चाय का प्रयोग। बच्चों को कभी सरकारी गाड़ी नहीं दी और न उनके लिए कोई सिफारिश, न कोई अन्य लाभ पहुँचाने की आदत। कहीं मिलेगी ऐसी मिसाल? परन्तु पहाड़ के विकास और इसके स्वाभिमान की जो अमूल्य विरासत उन्होंने छोड़ी है उसका मूल्य आने वाली पीढ़ियाँ शायद लगा पाएँ।

प्रायः महान व्यक्ति के प्रयासों की स्तुति उन्हें श्रद्धांजलि के रूप में ही की जाती है, परन्तु डॉ. परमार ऐसे सफल युगदृष्टा रहे हैं जिन्होंने अपने प्रयासों को अपने जीवन काल में ही फलीभूत होते देखा है और संतोष अनुभव किया, इतिहास में ऐसे विरल ही उदाहरण मिलते हैं। इसीलिए इस महान कर्मयोगी को अपने जीवन काल में ही न केवल प्रदेशवासियों अपितु देश की प्रख्यात हस्तियों से प्रशस्ति मिलती रही है। वह 17 वर्षों से अधिक समय तक मुख्यमंत्री रहे और ऐसा भी होता है कि जो व्यक्ति राजनीति में बहुत लम्बे समय तक ऐसे शिखर पर रहता है उसकी लोकप्रियता में कमी दिखने लग जाती है, क्योंकि उसे बरकरार रखना मनुष्य के हाथ की बात नहीं रहती। परन्तु डॉ. परमार की प्रशंसा, प्रयत्न और लोकप्रियता उत्तरोत्तर ऊँचाईयों को छूती रही और यशवन्त सिंह का 'यश' 'सिंह' की भान्ति उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया।

वह ऐसा अद्‌भुत करिश्मा कर गए कि उनका नाम देश-काल की सीमाओं से बाहर समाज, राजनीति, प्रशासन, न्याय, कला साहित्य अर्थात सभी क्षेत्रों में शीर्ष पर छा गया और रहेगा। आने वाली पीढ़ियाँ यह कथा बड़े शौक और विस्मय से सुना करेंगी कि ऐसा व्यक्ति भी इस भूमि पर हुआ था जो इतने लोगों के दिल पर राज करते हुए भी साधारण 'पहाड़िये' का जीवन जीता रहा। कोई दम्भ नहीं, दिखावा नहीं, सीधा-सादा, किन्तु धुन का पक्का, संघर्षशील पहाड़ी सपूत, हिमाचल का रक्षक, रचनाकार और शिल्पकार। सभी प्रलोभनों से निर्लिप्त और सिद्धान्तों से समझौता न करते हुए एक कर्मयोगी-सा त्यागी जो पहाड़ी विकास का मसीहा और पहाड़ का गौरव होते हुए 'पहाड़ का ही पर्याय' बन गया। वास्तव में हिमाचल प्रदेश परमार से विहीन कभी नहीं हो सकता, वह यहाँ के कण-कण में व्याप्त हैं। उनकी स्मृति हिमाचल के लोकमन में एक दिग्दर्शक, एक रहनुमा, त्यागी और संघर्षरत कर्मयोगी के रूप में है जो उनके सच्चे लोकनायक थे, क्योंकि हिमाचली और हिमाचल आज जो कुछ भी है उन्हीं के कारण है।

[श्री हरिकुंज, लोअर कैथू, शिमला-171003]

मो. 94181 20490

राजनीति और लोक संस्कृति के पुरोधा : डॉ. परमार

❑ आचार्य ओमप्रकाश 'राही'

डॉ. परमार को बहुत निकट से जानने वाले उनके कार्यकाल में लोक सम्पर्क अधिकारी रहे आचार्य चन्द्रमणि वशिष्ठ 'पहाड़ी मृणाल' अपनी पुस्तक 'हिमाचल निर्माता—राष्ट्र गौरव, डॉ. यशवन्त सिंह परमार' में जो उल्लेख करते हैं, उसे इस पद्य में इस प्रकार कहा जा सकता है—

पर्वतः पर्वतीयः प्रदेशः पूर्णता परमार एव-च।
एते पञ्च पकाराः स्युः नूनं पर्यायवाचिनः ॥

अर्थात् पर्वत (पहाड़) पर्वतीय (पहाड़ी/जन तथा भाषा) प्रदेश (प्रान्त हिमाचल) पूर्णता (समग्रता) तथा परमार ये पाँच प्रकार (प से आरम्भ होने वाले शब्द) पर्यायवाची हो गए हैं। वास्तव में यह कथन कथमपि अनुचित या अतिशयोक्ति पूर्ण नहीं लगता, क्योंकि डॉ. परमार का इन सभी से गहरा सम्बन्ध था।

निःसन्देह बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी डॉ. यशवन्त सिंह परमार के यशस्वी व्यक्तित्व को शब्दों की सीमा में बाँध पाना सरल नहीं, पुनरपि साहित्य साधक, चिन्तक, लेखक इस दिशा में सतत प्रयासरत हैं और न केवल डॉ. हरिराम जस्टा, प्रो. राजेन्द्र अत्रि, चंद्रमणी वशिष्ठ तथा परमार के कुल पुरोहित पंडित हेमचन्द्र शर्मा ने परमार जी के जीवन चरित को लेकर पुस्तकें प्रकाशित की हैं, बल्कि तुलसी रमण द्वारा इस सम्बन्ध में किया गया बृहत् कार्य एवं डॉ. मनोहर लाल आर्य द्वारा विरचित संस्कृत महाकाव्य 'परमार चरितम्' शीघ्र ही पाठकों के समक्ष आने वाला है।

वस्तुतः डॉ. परमार एक कुशल प्रशासक, अनन्य समाजसेवी, पहाड़ी भाषा एवं संस्कृति से स्नेह रखनेवाले साहित्यकार के साथ प्रतिष्ठित राजनेता के रूप में विख्यात थे। पझौता आन्दोलन के नायक एवं तत्कालीन जनप्रिय नेता वैद्य सूरतसिंह, डॉ. परमार की इन विशेषताओं से परिचित थे, अतः उन्होंने स्वतन्त्रता के पश्चात् प्रथम लोकतांत्रिक सरकार बनवाने में—"यह कार्य कुशल प्रशासकीय विचारों के शिक्षित व्यक्ति डॉ. परमार का है, यही प्रदेश का नेतृत्व कर सकते हैं"—यह कहकर डॉ. परमार के प्रति सम्मान प्रकट करते हुए उनसे पच्छाद क्षेत्र से न केवल नामांकन करवाया बल्कि विजयी भी बनवाया।[1]

राजनीतिक प्रतिभा के धनी डॉ. परमार ने तत्पश्चात् पीछे मुड़कर नहीं देखा और हिमाचल के प्रथम मुख्यमंत्री बनकर प्रदेश की इस कदर सेवा करते रहे कि प्रदेश को विशेष पहचान दिलाने में सफल रहे। देश के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू तथा इंदिरा

गांधी इनकी राजनीतिक कुशलता से पूर्णतः प्रभावित थे। 5 जुलाई, 1982 को अपने वक्तव्य में इंदिरा गांधी ने कहा था— Dr. Y.S. Parmer was the maker of modern Himachal. While laying the foundations of it's development he had deep knowledge of and concern for the natural and cultural wealth of the region and the Problems of its conservation.[2]

विधानसभा सदस्य कुंज बिहारीलाल बुटेल के शब्दों में—"जिस प्रकार भारत के इतिहास में महात्मा गांधी और पं. जवाहर लाल नेहरू के नाम अविच्छिन्न रूप से जुड़े हैं, उसी प्रकार हिमाचल प्रदेश के नाम और इतिहास के साथ डॉ. परमार का नाम और काम अविभाज्य रूप से जुड़ा है।"[3]

अपनी इसी राजनीतिक कुशलता तथा परिपक्वता के कारण न केवल देश अपितु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी अपनी पहचान बनाई और प्रदेश विकासार्थ जानकारी प्राप्त करने के लिए अनेक देशों का भ्रमण करते रहे। "उन्होंने इंडो-जर्मन कृषि कार्यक्रम के सम्बन्ध में पश्चिमी जर्मनी जाकर वहाँ के डेलीगेशन का नेतृत्व किया तथा विभिन्न हाइड्रो-जनरेशन योजनाओं का विशेषकर जर्मनी और स्विटजरलैंड में अध्ययन किया। वर्ष 1965 में विचार-विमर्श के लिए उन्हें फिर जर्मनी आमंत्रित किया गया। सन् 1971 में उन्होंने अमेरिका, ब्रिटेन, कनाडा, जापान, इटली, सिंगापुर, मलेशिया, लेबनान और यूनान आदि देशों का दौरा किया।"[4]

डॉ. परमार के राजनीतिक रूप के साथ उनके संस्कृति अनुराग को देखना हो तो पूर्व मुख्यमंत्री वीरभद्र सिंह के इन शब्दों में देखा जा सकता है—"यूँ तो डॉ. परमार को हिमाचल का निर्माता, शिक्षाविद्, संस्कृति-प्रेमी, बागवान, कृषक एवं कुशल प्रशासक के रूप में लोगों का सम्मान हासिल है, परन्तु यहाँ उनका अपनी संस्कृति के प्रति विशेष सम्मान और गौरव अनुभव करने वाले साहित्यकार के रूप में उल्लेख करना उपयुक्त रहेगा।... डॉ. परमार ने संस्कृति के संरक्षण को प्रदेश के विकास का मूल-मंत्र मानकर कार्य किया और अन्त तक इसी नीति पर चलते रहे।"[5]

वस्तुतः डॉ. परसार को अपनी संस्कृति पर पूर्ण गर्व था। वे पहाड़ी भाषा, लोकगीत, लोक गाथाओं, खान-पान, रहन-सहन, बोल-चाल, नाच-गाना तथा सादा व्यवहार से विशेष अनुराग रखते थे। डॉ. परमार लोक संस्कृति, लोक साहित्य तथा लोक भाषा को समाज शास्त्रीय अध्ययन का अभिन्न अंग मानते थे। डॉ. हरिराम जस्टा के उल्लेखानुसार उन्होंने दिसम्बर, 1967 को कोटखाई के क्यारी ग्राम में एक सभा को सम्बोधित करते हुए कहा था—"लोक गीत और लोक गाथाएँ लोगों को अपने वातावरण और सामाजिक परिवर्तन के प्रति उनकी सहज प्रतिक्रिया को अभिव्यक्त करती हैं और इस तरह की प्रतिक्रिया प्रजातांत्रिक अभिव्यक्ति का एकमात्र माध्यम है। अतः यह ज़रूरी है कि उस भाषा का विकास किया जाए जो लोगों की अपनी भाषा है।"[6]

डॉ. परमार के मुख्यमंत्रित्व काल में लोक सम्पर्क अधिकारी चन्द्रमणि वशिष्ठ अपनी पुस्तक में लिखते हैं—"मैं जब लोक सम्पर्क अधिकारी था, हमें उनका आदेश था कि विचार गोष्ठियों तथा सार्वजनिक सभाओं में पहाड़ी में बातचीत तथा भाषण होना चाहिए और कार्यालयों में अधिक से अधिक काम हिन्दी में होना चाहिए।... लोग स्वागत द्वारों पर भी पहाड़ी भाषा में बैनर लगाने लगे थे। निमंत्रण पत्र पहाड़ी में छपने लगे थे। समारोहों के पोस्टर

भी पहाड़ी में छपते थे।"[7]

लोगों में किसी प्रकार की हीन भावना न पनपे इसलिए उन्होंने सर्वप्रथम स्वयं को 'पहाड़ी' कहलाया। वे कहते थे—"लोग हमें 'मुण्डू' कहते हैं, लेकिन हम 'मुण्डू' इस वास्ते हैं क्योंकि ईमानदारी से काम करते हैं, मैं सबसे बड़ा 'मुण्डू' हूँ।"[8] इसके बाद बहुत से लोग अपने नाम के साथ 'पहाड़ी' लिखने लगे। 'मनस्येकं वचस्येकं कर्मन्येकं महात्मनाम्' ध्येय वाक्य के अनुरूप उनकी कथनी-करनी में एकरूपता थी। वे स्वयं भी पहाड़ी भाषा का जमकर प्रयोग करते थे। ग्रामीण दौरे के दौरान एक बार उन्होंने पहाड़ी महिलाओं को अपने पारम्परिक पहरावे से हटकर तत्कालीन फैशन में देखा तो तपाक से बोल पड़े—"ओ ला ध्यायणियो! ई खुले मूरी री सलवारो रो सनून री चुन्टी तो म्हारा पहाड़ी पहनावा नी आयी। म्हारा पहनावा तो ढाठू रो भीड़ी सुथणी ओसो।...एक महिला की ओर इशारा करते हुए बोले—'जे इयों सलवारो दा लात टनकला तो तोल जाईली छिल्ला सी।"[9]

डॉ. परमार के इन शब्दों में उनका पहाड़ी भाषा प्रेम तथा लोक संस्कृति के प्रति अनुराग स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। भाषा एवं संस्कृति और विशेषतः पहाड़ी भाषा को लेकर उनकी सोच क्या थी, उन्हीं के शब्दों में, 'हिमाचल प्रदेश विधानसभा सचिवालय' द्वारा 2019 में प्रकाशित पुस्तक 'हिमाचल प्रदेश विधानसभा में है यशवन्त सिंह परमार के विचार' के 86 से 88 पृष्ठों पर बखूबी देखा व समझा जा सकता है।

वे स्वयं भी सादी पोशाक पहनते थे। लम्बी कमीज़ तथा चूड़ीदार पाजामे के ऊपर जब 'लोइया' पहनते थे तो शान कुछ और ही हो जाती थी। वर्तमान में इस पारंपरिक परिधान में आ रही कुछ शिथिलता को देख चन्द्रमणि वशिष्ठ ने 1988 में फागू (सिरमौर) में हुए एक कवि सम्मेलन में चिंतनीय कल्पना करते हुए कहा था—"यदि डॉ. परमार पुनः यहाँ आ जाएँ तो सबसे पहले यही पूछेंगे—'रे छोटुओ! लोइया किंदा पाया'?"

खान-पान में भी डॉ. परमार लोक पकवानों को ही तरजीह देते थे और ग्रामीण समारोहों में सम्मिलित होकर पंक्ति में बैठकर 'पत्तल' में भोजन ग्रहण करते थे। "डॉ. परमार को असकली, पटाँडे, लुशके, धरोटी आदि पहाड़ी पकवान पसन्द थे। उन्होंने शिमला, दिल्ली और मुम्बई में हिमाचल के स्टालों में इन पकवानों को तैयार करवाकर किसी बड़े समारोह या नुमाइश में सामने रखवाया। देशी और विदेशी पर्यटकों में इन पकवानों की पहचान हुई और वे इनका स्वाद चखने लगे।"[10]

9 से 16 जनवरी, 1977 तक 'पहाड़ी कलाकार संघ' एवं 'हिमाचल कला संस्कृति व भाषा अकादमी' के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित 'लोकनाट्य प्रशिक्षण कार्यशाला' के अवसर पर प्रकाशित स्मारिका 'कला सौरभ' में डॉ. परमार ने अपने शब्दों में संघ के योगदान को इस प्रकार सराहा था—"पहाड़ी कला और संस्कृति की सेवा के लिए जो भी कार्य किया जाए, वह कम है। इस कार्य के लिए लगन और त्याग की बहुत आवश्यकता है। मुझे प्रसन्नता है कि पहाड़ी कलाकार संघ इस क्षेत्र में अपना पूर्ण योगदान दे रहा है।"[11]

वस्तुतः लोकनाट्य और नाटियाँ परस्पर अनुरागात्मक सम्बंध स्थापित करने में सक्षम होते हैं, इस तथ्य को डॉ. परमार ने इसी लोकनाट्य प्रशिक्षण कार्यशाला के उद्घाटन भाषण में इन शब्दों में स्वीकार किया था—"हमारे लोकनाट्यों में जो नाटियाँ (समूह नृत्य) हैं, वे समाज में बराबरी की भावना लाने का सशक्त माध्यम है। नाटियों में छोटे-बड़े सब भाग लेते हैं। उन

से एक अनुरागात्मक सम्बन्ध बनता है, ऊँच-नीच समाप्त होती है।"[12]

राजनीति और लोक संस्कृति के पुरोधा डॉ. यशवन्त सिंह परमार स्वयं एक साहित्यकार भी थे और हिमाचल के शीर्षस्थ साहित्यकार उन्हें क्या समझते थे? कुछ सम्मेलनों व गोष्ठियों आदि से सुनकर कुछ उदाहरण प्रस्तुत कर रहा हूँ। हिमाचल के प्रख्यात साहित्यकार संस्कृत साहित्य शिरोमणि आचार्य केशव शर्मा का अभिमत है—

हिमाचले लोकमुखे यदैव विराजते सुस्मित रश्मिरेखा।
कृतज्ञचित्ताः निजहर्षहेतुं स्मरन्ति लोकाः यशवन्तसिंहम् ॥

हिमाचल के शायर डॉ. शबाब ललित का कथन था—

दर्द पशे मांदगी के मारों का
तू ही था ग़मगुसार तुझको सलाम।
थी तेरी ज़ात पर्वतों के लिए
रहमते कर्दगार तुझको सलाम ॥

संस्कृत, हिन्दी एवं पहाड़ी के कलमकार डॉ. प्रेमलाल गौतम के शब्दों में—

किन्नर-यक्ष-गन्धर्व सभी ने विजय गाथा है जिसकी गाई।
आज हिमाचल निर्माता की याद सभी के उर में छाई ॥
यशस्वियों में यशवन्त थे तुम धीमन्तों में धीमन्त थे तुम।
सरलता की भव्यमूर्ति सिंहों में बलवन्त थे तुम ॥
पुरोधा बनकर राजनीति के हिमाचल की महिमा फैलाई।
आज हिमाचल निर्माता की याद सभी के उर में छाई ॥

सन्दर्भ :

1. स्वतन्त्रता सेनानी वैद्य सूरत सिंह : आचार्य ओम प्रकाश राही, हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी, संस्करण-2004, पृ. 60-65
2. हिमाचल निर्माता—डॉ. यशवन्त सिंह परमार : डॉ. हरिराम जस्टा, हिमाचल कला संस्कृति एवं भाषा अकादमी, संस्करण-2006 पृ. 115
3. वही, पृ. 40
4. वही, पृ. 18-19
5. वही, प्राक्कथन
6. वही, पृ. 51-52
7. हिमाचल निर्माता राष्ट्र गौरव—डॉ. यशवन्त सिंह परमार : आचार्य चन्द्रमणि वशिष्ठ, प्रथम संस्करण-2006, पृ. 49
8. डॉ. यशवन्त सिंह परमार : डॉ. हरिराम जस्टा, पृ.-110
9. हिमाचल निर्माता एवं युगपुरुष—डॉ. वाई.एस. परमार : पं. हेमचन्द शर्मा, अरविन्द गोयल, हिमवन्ती मीडिया, पृ.-35-36
10. डॉ. यशवंत सिंह परमार : चन्द्रमणि वशिष्ठ, पृ. 51
11. स्वतन्त्रता सेनानी वैद्य सूरतसिंह : आचार्य ओमप्रकाश 'राही', पृ. 32
12. वही, पृ. 33

[प्रकाश पुंज, 131, हिमुडा कोलोनी, शुभखेरा, पाँवटा साहिब, ज़िला सिरमौर, हि.प्र.-173025]

मो. 82787 97150

डॉ. यशवंत सिंह परमार होने के मायने

❑ मनजीत शर्मा

डॉ. यशवंत सिंह परमार का हिमाचल की राजनैतिक चेतना में प्रवेश 1946-47 के आस-पास का है, जब वे स्वतन्त्रा संग्राम और प्रजामण्डल की गतिविधियों में हिमाचल के अग्रणी नेता के रूप में उभर कर सामने आए। वर्ष 1948 में उन्होंने हिमाचल को एक अलग प्रांत के रूप में अस्तित्व में लाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

एक कृतज्ञ राष्ट्र समाज या प्रान्त अपने आदि पुरुष को, अपने निर्माता को, उसके विचारों को अपनी स्मृतियों में संजोता है, अपनी जीवन-शैली में उतारता है, उसके आस-पास किंवदंतियाँ, कहावतें गढ़ता है, कहानियाँ बुनता है। हमारे देश में तो मनीषियों और उनके ज्ञान को श्रुति पद्धति में संरक्षित किए जाने की समृद्ध परम्परा रही है। हिमाचल प्रदेश के संदर्भ में डॉ. परमार को ऐसे ही एक कर्म-योगी, एक मनीषी के रूप में याद किया जाता है, जिसने अपना पूरा जीवन पश्चिम हिमालय के इस पहाड़ी भू-भाग के समाज व संस्कृति के आत्मतत्त्व को दृढ़ता प्रदान करने में लगा दिया। हिमाचल के पहाड़, उनका विकास तथा उसकी संस्कृति का संरक्षण परमार साहब के राजनैतिक चिन्तन की धूरी माने जाते हैं। इस पर्वतीय प्रान्त की नींव रखने और उसे अस्तित्व में लाने में डॉ. परमार मुख्य भूमिका में रहे। वर्ष 1948 में अस्तित्व में आने पर हिमाचल ने अपने शैशव काल से डॉ. परमार अंगुली थामे अपनी विकास यात्रा आरम्भ की और आज प्रौढ़ होने तक प्रदेश उनके बनाए हुए विकासोन्मुखी मार्ग पर चल रहा है।

डॉ. परमार का व्यक्तित्व एक न्यायविद्, एक राजनीतिज्ञ, एक समाज शास्त्री, एक प्रशासक के गुणों को लिए हमारे सामने आता है। बौद्धिकता के इन सभी संकायों का प्रयोग उन्होंने एक ऐसा सामाजिक-राजनैतिक दर्शन खड़ा करने में किया, जो पहाड़ी राज्यों के विकास के लिए एक आदर्श मॉडल बना तथा कालान्तर में अन्य हिमालय पर्वतीय क्षेत्रों के स्वतन्त्र राज्य ईकाई बनने का भी आधार बना। परमार साहब मानते थे कि सभी पहाड़ी क्षेत्रों की समस्याएँ एक-सी हैं अतः उनका हल भी एक-सा हो सकता है। एक ठेठ पहाड़ी जीवन-शैली के चलते परमार साहब को पहाड़ी भाषा, पहरावा, खान-पान, लोक गीत एवं लोक नृत्यों से खास लगाव रहा और पहाड़ी होने पर उन्हें गर्व था। वे कहा भी करते कि मैदानी सूबों के लोग हमारे युवाओं को पहाड़िया या मुंडू कह कर सम्बोधित करते हैं, जबकि पहाड़िया होना वास्तव में ईमानदार, मेहनतकश और समर्पित होना है और इस दृष्टि से मैं स्वयं को पहाड़िया कहलाए जाने पर गर्व महसूस करता हूँ।

पहाड़ों को एक विशिष्ट पहचान दिलाने और उसकी अस्मिता को बनाए रखने को

लेकर डॉ. परमार पूर्णरूपेण समर्पित थे, इस सीमा तक कि हिमाचल के स्वतन्त्र अस्तित्व को बनाए रखने के लिए उन्होंने मुख्यमन्त्री की कुर्सी तक छोड़ दी। मैदानी सूबों जैसे पंजाब और उत्तर प्रदेश में उस समय कई ऐसी शक्तियाँ सक्रिय थीं, जो इस पहाड़ी इकाई को अपने कब्ज़े में लेने के लिए घात लगाए बैठी थीं, किन्तु परमार साहब का जज़्बा एक ऐसे पहाड़ी बुज़ुर्ग की तरह था, जो एक बाघ से भिड़ कर भी उसके पंजों से अपने मवेशियों को छुड़ा लाता है। उन्होंने ऐसी सभी शक्तियों का डटकर मुकाबला किया और हिमाचल के अस्तित्व को बचाए रखा। ये शक्तियाँ इस प्रांत के सीमित संसाधनों तथा एक राज्य के रूप में इसकी आर्थिक व्यवहार्यता के न होने का हवाला देकर इसे पंजाब में मिलाने का विमर्श तैयार करती रहती थीं, किन्तु परमार साहब केन्द्रीय नेतृत्व को इस प्रांत की विशिष्ट संस्कृति और जन आकांक्षाओं का हवाला देकर इसे अलग बनाए रखने तथा पूर्ण राज्यत्व देने के लिए मनाने का प्रयास करते रहे और अन्ततः उसमें सफल भी हुए। पहाड़ और पहाड़ी जन-जीवन का संरक्षण और विकास उनके राजनैतिक चिन्तन की धूरी थे।

परमार साहब अपनी वेशभूषा में पहाड़ी पहरावे को पसन्द करते थे। लोइया वे विशेष रूप से पसन्द करते और ओढ़ते भी थे। सर्दियों के मौसम में तो लोइया उनके लिए जैसे अनिवार्य ड्रेस कोड था। लोइया यूँ तो पहाड़ों में बहुत से लोग ओढ़ते हैं, किन्तु परमार साहब जिस सलीके से लोइया ओढ़ते, कैरी (Carry) करते वह उनकी एक विशिष्ट फैशन स्टेटमेंट बन जाता। जो लोग लोइए के बारे में नहीं जानते, उन्हें यूँ समझना होगा कि ऊन से बना पहाड़ी लोगों का ओवर कोट है लोइया। लोइये की विशिष्टता उसका सघन ताना-बाना और उसका वस्त्र के रूप में फैलाव कहा जा सकता है, जो ओढ़ने वाले को सम्पूर्णता से अपने आवरण में ले लेता है। इस पोषाक का ईजाद जिसने भी किया होगा वह अपनी सोच में कहीं न कहीं समावेशी रहा होगा, जिसने सम्पूर्ण देह को एक साथ ढकने का सोचा।

परमार साहब का लोइया पहनना उनकी समावेशी सोच का परिचायक लगता है। एक लोइया उनकी पोषाक थी जो वह ओढ़ते और एक लोइया उन्होंने बुना था अपने विचारों, अपने चिन्तन का जो रेशा दर रेशा उन्होंने बुना इस पहाड़ी प्रदेश के समाज के लिए कुछ इस तरह कि उसके विस्तार से, उसके आवरण से कोई अंग उस समाज का अछूता न रह जाए और यूँ कि हर दुश्वार मौसम या दौर में काम आ सके।

आज हिमाचल को बने 75 वर्ष से अधिक हो गए हैं, लेकिन हिमाचल आज भी परमार साहब के विचारों के उस लोइये को ओढ़ता है और हिमाचल के निर्माता और विचारों के उस लोइये के बुनकर पर गर्व अनुभव करता है तथा उनके प्रति कृतज्ञता करने को सदा आतुर रहता है, परमार को श्रद्धांजलि देता है, विभिन्न संस्थान जो उनकी सोच का हिस्सा हैं उनमें अपने नेता को ढूँढता है उनका नाम परमार के नाम पर रखता है, परमार को कविता में उतारता है, लोक गीतों में गाता है। यद्यपि यह सत्य है कि जो व्यक्ति किसी देश व किसी समाज का निर्माता होता है उसका यह दायित्व भी होता है कि वह उस समाज और उस देश की ऐसी नींव रखे जिस पर एक समृद्ध, सशक्त व चिरस्थाई निर्माण हो सके। प्रत्येक राष्ट्र, प्रत्येक प्रांत यहाँ तक कि प्रत्येक गाँव के प्रथम करणधार अथवा निर्माता को उस समाज, उस प्रांत को एक दिशा देनी होती है और यह दिशा देना उस व्यक्ति की उस समाज के प्रति सोच का अनिवार्य परिणाम है, लेकिन विश्व में कई ऐसी इकाइयों का भी निर्माण हुआ जो बहुत

दूरी तक न चल सकीं तो क्या ये माना जाए की उनके निर्माता क्या सही मायनों में लीडर नहीं थे? क्या दूरदर्शी नहीं थे? ऐसा मानना उचित न होगा, क्योंकि ऐसे हर निर्माता या करणधार में उस समाज या प्रांत के प्रति एक सोच या एक दर्शन तो अनिवार्य रूप से होता ही है। फिर ऐसा क्यों होता है कि कई बार कालान्तर में कोई समाज या देश उस निर्माता की सोच पर, उसकी दूरदर्शिता पर प्रश्न उठाना आरम्भ कर देता है, जबकि दूसरी तरफ एक ऐसा समाज है जो अपने निर्माता को देवता की तरह पूजता है, जैसे हिमाचल परमार को पूजता है तो हर कोई परमार क्यों नहीं हो पाता है?

सम्भवतः इसके मूल में जो बात है वह संवेदनशीलता और भावनात्मक प्रतिबद्धता की है, जो नेता अपने समाज के साथ एक भावनात्मक जुड़ाव रखता है वह उस समाज को लेकर अपने चिन्तन में ईमानदार और संवेदनशील होता है। डॉ. परमार का हिमाचल और हिमाचल वासियों से ऐसा भावनात्मक रिश्ता था जैसे परिवार के किसी मुखिया का उसके परिवार के साथ होता है, जो जीवन पर्यन्त इसी सोच में रहता कि कैसे उसका परिवार सुरक्षित, समर्थ व समृद्ध बने। सोच में यही संवेनशीलता, यही ईमानदारी एक नेता को समाज में वह स्थान दिलाती है, जो हिमाचल में डॉ. परमार का है। संवेदनशीलता, भावनात्मक प्रतिबद्धता और ईमानदारी जैसे इन्हीं तत्त्वों को मूल में रखकर, जब कोई व्यक्ति किसी समाज के प्रति अपना चिन्तन गढ़ता है तो वह अपनी मौलिकता, व्यावहारिकता और प्रयोगधर्मिता में ऐसा श्रेष्ठ चिन्तन होता है जैसा डॉ. परमार का हिमाचल को लेकर रहा जो प्रदेश के सर्वांगीण विकास का आधार बना।

सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास के प्रत्येक पहलू पर डॉ. परमार ने जो विचार दिए वे अपनी मौलिकता और व्यावहारिकता के कारण अन्य राज्यों के लिए भी ग्राह्य बने, चाहे फिर वह भू-व्यवस्था की बात हो, कृषि, बागवानी की बात हो या आधारभूत संरचना के विकास की बात हो। यदि भू-सुधारों की बात करें तो हिमाचल, देश में भू-सुधारों को लेकर कानून बनाने वाले राज्यों में अग्रणी स्थान रखता है। परमार साहब की चिन्ता में मुजारों और किसानों को उनके हक-हकूक दिलाना सर्वोपरि था इसी दृष्टि से उन्होंने प्रदेश में बड़ी जमींदारी उन्मूलन अधिनियम बनाकर लाखों किसानों और मुजारों को ज़मीन पर मालिकाना हक दिलाए। कृषि के संदर्भ में परमार साहब के इस पहाड़ी क्षेत्र को लेकर विचार एक निश्चित परिपाटी से भिन्न थे। वे केवल परम्परागत खाद्यान्नों की खेती करने को ही उचित नहीं समझते थे। उनका कहना था कि चाहे सारी ताकत और सारा रुपया पहाड़ में अनाज पैदा करने में लगा दिया जाए तो भी यहाँ अनाज़ थोड़ा ही पैदा होगा। उनका मानना था कि अनाज की जगह फल और सब्ज़ियाँ उगाई जानी चाहिए। उनकी इसी सोच का परिणाम है कि प्रदेश आज फलों और सब्ज़ियों को उगाने में देश का अग्रणी राज्य है। वह कृषि क्षेत्र में विपणन की समस्या को दूर करने के लिए सहकारिता पर जोर देते थे। वे कहते थे कि छोटे किसान को बचाने के लिए और उसकी उपज के अधिक से अधिक दाम दिलाने के लिए एक ही ढंग है वह है सहकारी संस्थाएँ बनाकर कृषि उत्पादों का विपणन करना। बागवानी के क्षेत्र में सेब के साथ-साथ अन्य स्टोन फ्रूट तथा निम्बू प्रजाति के फलों के उत्पादन पर उन्होंने बल दिया। बागवानी के क्षेत्र में उन्होंने वर्ल्डबैंक का एक प्रोजेक्ट 1975 में स्वीकृत करवाया तथा एच. पी.एम.सी व एच.पी.एग्रोइण्डस्ट्री कार्पोरेशन जैसी संस्थाएँ बनाने वाला हिमाचल पहला राज्य

बना, जिससे फलों का विपणन सरल हुआ तथा बागवानों को उनके उत्पाद के उचित दाम मिलना सम्भव हो सका।

आधारभूत संरचना को लेकर जब किसी ने उनसे पूछा कि उनकी तीन प्राथमिकताएँ क्या होंगी तो उनका उत्तर था सड़क, सड़क और सड़क। वे सड़क को पहाड़ी क्षेत्र की जीवन रेखा मानते थे। उनका मानना था कि बिना सड़क के इस पहाड़ी क्षेत्र के विकास की कल्पना नहीं की जा सकती। हिमाचल के दरियाओं के पानी पर जब उन्होंने अपना हक मांगने की बात की तो उनके विरोधियों ने कहा कि स्टूपिड बात है। 20 फरवरी, 1972 को बजट पर चर्चा के दौरान इस विषय पर डॉ. परमार ने कहा कि मुझे बिगेटिड हिमाचली कहते हैं। मैं चाहे बिगेटिड हिमाचली हूँ पर हिमाचल की खिदमत करता रहूँगा और अगर जान भी देनी पड़े तो हिमाचल प्रदेश के हकूक को रखने के लिए जान भी दे दूँगा। उन्होंने कहा कि हम हिमाचल के पानी में हिस्सा लेने की बात कर रहे हैं और एक जगह नहीं, दो जगह नहीं, बीसियों जगह करेंगे और जब तक नहीं मिलेगा लड़ते रहेंगे। वह मुझे स्टूपिड कहें तो कहते रहें, मैं कहता हूँ कि पानी में हिमाचल का हिस्सा हमारा हक है और मैं इसको बराबर महसूस करता हूँ और अगर यह बिगेटिडनेस् है तो बिलाशुब्ह मैं बिगेटिड हूँ।

विद्युत उत्पादन के क्षेत्र में और उसके डिस्ट्रीब्यूशन में जो अवधारणा आज देखने को मिलती है उसकी कल्पना परमार साहब ने बहुत पहले की थी। उनका मानना था कि कई राज्यों का एक जोन बना कर एक ग्रीड में बिजली भेजी जाए। वे कहते थे कि हमें मालूम होना चाहिए की जो बिजली हर सैकिण्ड में तैयार होती है वह इस्तेमाल हर सैकिण्ड में न हो तो खत्म हो जाती है। अगर बिजली के मामले में कई राज्य एक-दूसरे से जुड़े होंगे तो वह बेची जा सकती है। विकास के जितने भी आयाम हो सकते हैं डॉ. परमार ने उन सबको अपने विचारों की मौलिकता से प्रदेश के संदर्भ में देखा और उनका क्रियान्वयन एक कर्मयोगी की तरह किया। वे राजनीतिक क्रिया-कलापों में व्यस्त रहते हुए भी जीवन में भरपूर रस लेते थे। उन्हें जब भी समय मिलता वे मेलों, उत्सवों में शामिल होते लोगों के साथ नाटियाँ डालते, पहाड़ी पकवानों का आनन्द उठाते, साहित्यकारों से मिलते, साहित्य पढ़ते और साहित्य गढ़ते भी। शिमला में जब कभी आराम के लिए समय मिलता तो पास के नालदेहरा में जाकर अपने दोस्तों तथा स्थानीय युवाओं के साथ गोल्फ खेलते। नालदेहरा उन्हें बहुत पसन्द था। नालदेहरा के रहने वाले वानिकी विश्वविद्यालय से सेवानिवृत्त प्रो. डॉ. के. डी. वर्मा बताते हैं कि स्थानीय युवाओं के साथ गोल्फ खेलना और नालदेहरा में विश्राम करना उन्हें बहुत पसन्द था बाद में जब गोल्फकोर्स के नज़दीक टूरिज़्म के रेस्टोरेंट में फोन लग गया तो अधिकारी उन्हें कामकाज के सिलसिले में फोन किया करते थे। वे हंसकर कहते अरे भाई ये फोन लगने से बड़ी समस्या हो गई है। कुफरी और नारकण्डा में स्कीइंग करना भी उन्हें बहुत भाता था। वास्तव में नालदेहरा में गोल्फ, कुफरी और नारकण्डा में स्कीइंग जैसे खेलों को आरम्भ करने का श्रेय डॉ. परमार को ही जाता है। ऐसी बहुमुखी प्रतिभा वाली शख्सियत को दाग-दहेलवी का एक शे'र बखूबी परिभाषित करता है।

भरे हैं तूझमें वो लोखों हुनर ऐ मज़मा-ए-खूबी
मूलाकाती तेरा गोया भरी महफिल से मिलता है।

[संयुक्त निदेशक, भाषा एवं संस्कृति विभाग]

संस्मरण

प्रदेश के विकास का जुनून

❑ आर. आर. वर्मा

[श्री रति राम वर्मा पूर्व पुलिस महानिदेशक एवं अध्यक्ष लोकसेवा आयोग, हिमाचल प्रदेश से डॉ. पंकज ललित की बातचीत पर आधारित]

जब मैं पहली बार उनसे मिला, तब मैं दिल्ली में चांदनी चौक में ए.एस.पी. (कोतवाली) के रूप में कार्यरत था। यह सुबह लगभग 10:30 बजे की बात होगी। लाहौरी गेट पुलिस स्टेशन के क्षेत्र में होटल में एक सिक्ख व्यक्ति का शव मिला। पुलिस को सूचित किया गया। आवश्यक था कि कोई राजपत्रित अधिकारी मौके का निरीक्षण करे। अतः मैं मौके पर गया। व्यक्ति की जेबों की तलाशी पर पाया गया कि उसकी जेब में लगभग तीस-पैंतीस हज़ार रुपये थे। मैंने एस. एच.ओ. को एक रिकवरी मैमो बनाने का निर्देश दिया। शव को पोस्टमॉर्टम के लिए भेजने का भी निर्देश दिया। जब मैं वहाँ से लौट रहा था, कोतवाली पुलिस स्टेशन व लाहौरीगेट पुलिस स्टेशन के बीच मुझे डॉ. परमार व सत्यावती डांग (जो बाद में सत्यावती परमार हो गईं) सामने से आते मिले। सत्यावती डांग मुझे जानती थीं। मैं डॉ. परमार को जानता था, पर वे मुझे नहीं जानते थे। सत्यावती डांग ने मुझसे पूछा, 'रति राम तुम यहाँ कहाँ' मैंने उन्हें बताया कि मैं यहाँ पर नियुक्त हूँ। आगे निकलते हुए डॉ. परमार ने मेरे बारे में पूछा होगा तथा श्रीमती डांग के बताने पर उन्होंने मुझे बुलाया व मुड़ते हुए मुझसे पूछा कि यहाँ कहाँ पोस्टेड हो, सुबह-सुबह यहाँ कहाँ आए हो? मेरे नाम रति राम से भी वह समझ गए कि यह कोई गाँव का लड़का है। मैंने केस की जानकारी उन्हें दी और बताया कि रिकवरी मैमो बनाया है। उन्होंने कहा 'वैरी गुड'। क्या पूरी लिस्ट बनायी? मैंने कहा, 'जी'। उन्होंने कहा 'बहुत बढ़िया'।

'यह 1963-64 की बात रही होगी। मैं 1961 में भारतीय पुलिस सेवा में आया। उस समय दिल्ली व हिमाचल एक ज्वाईंट कैडर था। कुछ समय बाद मेरी पदोन्नति हो गई। मैंने हिमाचल प्रदेश का विकल्प दिया। मैं वापिस आने पर डॉ. परमार से मिला। उस समय के आई.जी., शिमला में किसी और को नियुक्त करना चाहते थे। अतः मुझे एस.पी. किन्नौर के रूप में नियुक्ति दी गई। कुछ समय बाद डॉ. परमार बतौर मुख्यमंत्री किन्नौर प्रवास पर आए, अतः मैं उनका स्वागत करने किन्नौर के शिमला से लगते बॉर्डर पर पहुँचा। वह मुझे देखकर खुश हुए। किन्नौर में एन.डी. दयाल ज़िलाधीश होते थे। वह बड़े घमण्डी व aristocrat किस्म के व्यक्ति थे। पूर्व सैन्य अधिकारी थे। उनके इस प्रकार के व्यक्तित्व के कारण मैं उन्हें ठीक से सलाम भी नहीं करता था। आज मैं सोचता हूँ कि मेरे द्वारा उनके प्रति यह व्यवहार सही नहीं था। ज़िलाधीश ने डॉ. परमार के सम्मान में रात्रिभोज का आयोजन किया। जिला स्तर के पाँच-सात अफसरों को बुलाया गया। मुझे नहीं बुलाया गया। अगले दिन सुबह डॉ. परमार ने आगे प्रवास पर जाना था। जब मैं उनसे मिला तो उन्होंने पूछा कि तुम शाम को पार्टी में नहीं आए। मैंने कहा मुझे बुलाया नहीं गया था। वे हैरान हुए। उन्होंने

इस बात को नोटिस किया कि ज़िलाधीश द्वारा ज़िले के पुलिस प्रमुख को नहीं बुलाया गया। वे प्रशासन की निट्टी-ग्रिट्टी से भली-भान्ति परिचित थे। उन्होंने मुझसे कहा कि मैं अपने आप को पूरे इलाके से अच्छे से एक्वैन्ट करवा लूँ। मैंने उन्हें बताया कि मैं तिब्बत की सीमा तक जा आया हूँ तथा अन्य दुर्गम इलाकों में भी हो आया हूँ। उन्होंने कहा, 'आप इन सभी जगहों पर जा आए हैं' वे हैरान हुए। ज़िलाधीश दयाल भी कहने लगे कि यह बहुत पैदल चलते हैं। मैंने उन्हें यह भी बताया कि मैं पूह से कल्पा पैदल पहुँचा हूँ। उस समय यह भी नियम था कि पैदल टूर करने पर हर किलोमीटर के लिए एक रुपया यात्रा भत्ता मिलता था। मैंने पूह से कल्पा लगभग 50 मील का पैदल सफर एक दिन में ही कर लिया। हालाँकि यह यात्रा भत्ता पाने की इच्छा से नहीं किया गया। हुआ यूँ कि पूह में एक क्लब था जिसके ब्रिगेडियर व अन्य अधिकारी सदस्य थे। मेरे पूह प्रवास पर बातचीत में उन्होंने मुझे बताया कि उनके कुछ अधिकारी सुबह शिमला के लिए निकलेंगे। मैंने उन्हें बताया कि मुझे भी सुबह कल्पा वापिस लौटना है अतः बेहतर होगा साथ ही निकला जाए। वे लोग तो लगभग 30 मील चलने पर थक गए व वहीं रुक गए पर मैं पैदल चलता गया व शाम को कल्पा पहुँच गया।

कुछ समय बाद डॉ. परमार ने मेरा स्थानान्तरण एस.पी. शिमला के रूप में कर दिया। दयाल को सैक्रेटरी टू गर्वनर लगा दिया गया। पुलिस अधीक्षक के रूप में मैंने कुछ जानकारियाँ उन्हें दीं जो उन्हें महत्त्वपूर्ण व अच्छी लगीं। सारे ज़िला स्तर के अधिकारियों की एक बैठक में उन्होंने खुले रूप से मेरी प्रशंसा की, क्योंकि मैं दफ्तर भी 10 बजे पहुँचता था। रात को पैट्रोलिंग भी करता था। डॉ. परमार को इसकी जानकारी मिलती रहती थी। वे मेरे काम से बहुत खुश थे। बाद में मुझे पता चला कि उन्होंने मेरी वार्षिक गोपनीय रिर्पोटों में ऐसी टिप्पणियाँ दीं, जो सामान्यतः बहुत कम मिलती हैं। तत्कालीन मुख्य सचिव भी मेरी बड़ी तारीफ करते थे। मुझमें इससे कुछ घमण्ड आ गया। डॉ. परमार को सम्भवतः इसकी जानकारी मिली तो उन्होंने मुझे कहा भी कि सब अफसरों से मिलजुल कर रहना चाहिए। मैं डॉ. परमार के 'ब्लू आईड ब्वाय' के रूप में जाना जाने लगा। डॉ. परमार ने मुझे बाद में सी. आई.डी. में स्थानांतरित किया। मैं लगभग 14 साल तक सी.आई.डी. में विभिन्न पदों पर रहा।

मैंने पाया कि डॉ. परमार से वरिष्ठ अधिकारी जैसे मुख्य सचिव आदि भी डरते थे, क्योंकि वे बड़े थौरो थे। प्रशासन के सारे पहलुओं को जानते थे। ज़मीन से जुड़े रहते थे।

मैं जब एस. पी. कांगड़ा था तो वे मुझसे कई प्रकार की जानकारियाँ लेते थे। पंजाब व अन्य प्रदेशों से किस प्रकार के लोग प्रदेश में आते हैं, उनके बारे में पूछते थे। किसी भी व्यक्ति से मिलते ही वह पाँच मिनट में उसको भांप जाते थे। चाहे वह नेता हो या अधिकारी। उनका प्रदेश के डैवेलपमैन्ट के प्रति एक जुनून था। बागवानी, विशेषकर सेब उत्पादन में उनको विशेष रुचि थी। सड़कों के विस्तार तथा प्रदेश के सारे क्षेत्रों को बिजली से जोड़ना उनकी सर्वोच्च प्राथमिकताओं में था। आपातकाल के दौरान भी वह लोगों को हिरासत में लेने के पक्षधर नहीं थे। उन्होंने ज़िलाधीशों को आदेश दिए थे कि वे किसी को भी हिरासत में लेने से पहले सी.आई.डी. की रिपोर्ट लें।

उनको हिमाचल की कला-संस्कृति में भी विशेष रुचि थी व उसके संरक्षण का विशेष ध्यान रखते थे। लोक नृत्यों में स्वयं भी नाचते थे। लोक गीत सुनने का भी उन्हें बड़ा शौक था। उन्होंने अपने लिए एक छोटे साइज का लोइया बनवाया था जिसे वे अक्सर पहने रखते थे।

कृषि महाविद्यालय पालमपुर में डॉ. परमार

❑ डॉ. सुशील कुमार फुल्ल

महान विभूतियाँ समय की शिला पर अपने पद-चिह्न छोड़ जाती हैं, जिन्हें परवर्ती पीढ़ियाँ आदर्श स्वरूप स्वीकार करती हुईं विकास के लम्बे डग भरने का प्रयास करती हैं। भारत-पाक विभाजन होने पर भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू बने और उन्होंने स्वतंत्र भारत को नई दिशा और दशा दी और आज जो हम भारत का भव्य स्वरूप देखते हैं, उसके निर्माण में नेहरू की सजग परिकल्पना निश्चित रूप से झलकती है। किसी कार्य को शून्य से प्रारम्भ कर उसे शिखरों तक ले जाना किसी को भी गौरवान्वित करता है। इसी प्रकार हिमाचल के प्रथम मुख्यमंत्री डॉ. यशवन्त सिंह परमार ने पहाड़ी प्रदेश की भौगोलिक एवं प्राकृतिक स्थितियों-परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए परियोजनाओं की परिकल्पना की और अपनी दूरदर्शिता से उन परियोजनाओं को वास्तविकता में परिणत किया। इसीलिए उन्हें हिमाचल निर्माता कहा जाता है। धरती से जुड़ा हुआ तथा ग्रामीण परिवेश में पला-बढ़ा औसत कद का आदमी अपनी उपलब्धियों के कारण विराट व्यक्तित्व धारण कर लेता है, यह डॉ. परमार ने कर दिखाया।

उन दिनों कृषि महाविद्यालय, पालमपुर चर्चा में था और सोलन में राजकीय कृषि महाविद्यालय एवं अनुसंधान केन्द्र पहले से स्थित था। सीधे-सादे दिखाई देने वाले और बहुत कम लाव-लश्कर के साथ चलने वाले मुख्यमंत्री डॉ. परमार किसी कार्यक्रम में कृषि महाविद्यालय में पहुँचे, तो डॉ. हेतराम कालिया, अधिष्ठाता तथा संकाय सदस्यों ने उनका भव्य स्वागत किया। डॉ. कालिया उन्हें महाविद्यालय की महत्त्वपूर्ण योजनाओं के बारे में बताने लगे। डॉ. परमार ने कहा—'इन योजनाओं के विषय में बाद में समझता हूँ, पहले मैं खेत-खलिहान और प्रयोगशालाएँ देखना चाहता हूँ।'

'जी, चलिए मैं आपको ले चलता हूँ।' डॉ. कालिया ने उत्साहपूर्वक कहा।

'आप अपना काम निपटाइए। मैं खुद देखना चाहता हूँ। हाँ, आप कैम्पस से परिचित अपने किसी एक कर्मचारी को मेरे साथ भेज दें।' मुख्यमंत्री ने सहज भाव से कहा।

कालिया साहिब समझ गए कि वह अपने ढंग से देखना चाहते हैं। उन्होंने एक स्टाफ मेम्बर को उनके साथ भेज दिया। तब कॉलेज एक ही था और इसके भवन का उद्घाटन भारत के तत्कालीन उप-प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई ने सन् 1969 में किया था। गैस प्लांट के साथ ही कैमिस्ट्री-बायोकैमिस्ट्री प्रयोगशाला थी। ठाकुर ईश्वरदास ने उन्हें गैस प्लांट की ओर आते हुए देखकर कहा—'यह टोपी वाला पहाड़िया कहाँ से आ गया।' वह धूप में खड़े होकर सिगरेट पी रहे थे। उन्होंने सिगरेट बुझा दी और सतर्क होकर खड़े हो गए।

साथ आए स्टाफ मेम्बर डॉ. नरेश महाजन ने कहा—'ईश्वरदास, मुख्यमंत्री साहिब को गैस प्लांट और प्रयोगशाला दिखानी है।' अभिवादन हुआ और वे अन्दर चले गए। गैस प्लांट पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना ने बनवाया था, जब पालमपुर में सन् 1966 में कृषि महाविद्यालय प्रारम्भ किया गया था। वास्तव में लुधियाना कृषि विश्वविद्यालय ने हिसार एवं पालमपुर में दो अन्य परिसर बनाने की योजना की थी। पंजाब के पुनर्गठन के बाद कांगड़ा का विलय हिमाचल में हो गया और सन् 1970 में हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला बनने पर पालमपुर और सोलन के कृषि महाविद्यालय, हिमाचल यूनिवर्सिटी से सम्बद्ध हो गए। फिर सन् 1978 में पालमपुर मुख्यालय के साथ हिमाचल प्रदेश कृषि विश्वविद्यालय की स्थापना हो गई, जिसका उद्घाटन राष्ट्रपति संजीव रेड्डी ने किया।

गैस प्लांट देखने के बाद डॉ. परमार ने कहा—'इसमें एग्रीकल्चर का तो कुछ है नहीं।'

प्रत्युत्पन्नमति डॉ. महाजन ने कहा—'सर, यह एग्रीकल्चर के लिए ही आधार बन रहा है। प्रथम दो वर्ष में आधारभूत विज्ञान एवं भाषा के कोर्स होते हैं, फिर तृतीय वर्ष से विशुद्ध कृषि का पाठ्यक्रम शुरू हो जाता है। शुरू में तो हम आई.वी.आर.आई. पालमपुर की प्रयोगशाला में अपने छात्रों को ले जाते थे।'

'अच्छा। नई संस्थाओं को विकसित होने में समय तो लगता ही है, परन्तु भविष्य की संभावनाओं को ध्यान में रखते हुए निर्णय लेने चाहिए।' डॉ. परमार कुछ सोचते हुए बोले।

'जी, सर।'

परिसर में भ्रमण के बाद उन्होंने बैठते ही कालिया साहिब से प्रश्न किया—कृषि महाविद्यालय के लिए पालमपुर का ही चयन क्यों हुआ?

'विश्वविद्यालय ने तीन सदस्यों की एक कमेटी बनाई थी, जिन्होंने अनुकूल जगह का चयन करना था। ये तीन सदस्य थे—डॉ. आर.एस. कंवर, डॉ. देवराज भुंबला तथा मैं। हमने पूरा सर्वेक्षण किया और निष्कर्ष यह निकला कि पालमपुर के इर्द-गिर्द के 15 किलोमीटर के क्षेत्रफल में हर प्रकार का मौसम मिल जाता है। अतः अनुसन्धान के लिए यह जगह बिल्कुल उपयुक्त है। डॉ. हेतराम कालिया ने स्पष्ट शब्दों में कहा। वह वर्षों तक पंजाब सरकार के कृषि विभाग में पालमपुर में एग्रीकल्चर इन्स्पेक्टर रहे थे, अतः ऋतु चक्र से भली-भान्ति परिचित थे।

'हिमाचल की प्राथमिकता तो कृषि के साथ-साथ बागवानी और वानिकी होनी चाहिए। वानिकी हिमाचल को अकूत सम्पदा की गारंटी है। इसी से हिमाचल आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो सकता है।' डॉ. यशवंत सिंह परमार ने कहा।

'सर, आप बिलकुल ठीक कहते हैं, परन्तु यह निर्णय तो आप ही ले सकते हैं। मैं भी मानता हूँ कि धीर-धीरे और संस्थाएँ, अनुसंधान केन्द्र भी खुलने चाहिए।' अधिष्ठाता डॉ. कालिया ने मुख्यमंत्री की नब्ज़ को पहचानते हुए कहा।

'प्रयत्न तो रहेगा। देखो क्या संभव हो पाता है।' डॉ. परमार ने दार्शनिक अन्दाज़ में कहा। वह संभाषण में बेहद शालीन व्यक्ति थे...जो कभी किसी पर चिल्लाते नहीं थे।

बहुत समय तक चर्चा होती रही कि कृषि विश्वविद्यालय पालमपुर बने या सोलन में। प्रदेश तो एक ही था। इस रस्साकशी में यूनिवर्सिटी पालमपुर में बनी, क्योंकि अब मुख्यमंत्री शांता कुमार पालमपुर से ही थे। सोलन में प्रतिकुलपति की नियुक्ति लेकिन कुछ वर्षों तक पालमपुर में कुलपति एकमात्र अथॉरिटी था। फिर धीरे-धीरे औद्यानिकी एवं वानिकी

विश्वविद्यालय की स्थापना नौणी (सोलन) में हो गयी और मज़ेदार बात यह है कि पालमपुर कृषि विश्वविद्यालय और सोलन के वानिकी और औद्यानिकी विश्वविद्यालयों के रिसर्च स्टेशन, कृषि विज्ञान केन्द्र पूरे हिमाचल में हैं और हिमाचल को उन्नति के शिखरों पर पहुँचाने में प्रयत्नशील हैं। केन्द्रों, उपकेन्द्रों के विस्तार एवं स्थापना में जहाँ विभिन्न मुख्यमंत्रियों का तो योगदान रहा ही, वहीं वर्षों तक पशुपालन विभाग में निदेशक रहे डॉ. गोपी चन्द नेगी का कुलपति के रूप में योगदान महत्त्वपूर्ण रहा। पशु चिकित्सा एवं पशु पालन महाविद्यालय की स्थापना उन्हीं के प्रयत्नों से हुई।

यह सब तभी संभव हो सका, जब हिमाचल के प्रथम मुख्यमंत्री, युग पुरुष, योगी, दूरद्रष्टा डॉ. परमार ने सशक्त आधार तैयार कर दिया था। चन्हालग (सिरमौर) में 4 अगस्त, 1906 को जन्मे डॉ. परमार पठन-पाठन में मेधावी छात्र थे। एल.एल.बी, पी-एच.डी. डिग्रियों से सुसज्जित परमार ने कुछ वर्ष तक जूडिशियल सर्विस की और जब सामाजिक भावना और स्वतन्त्रता की अलख जगी, तो सब कुछ छोड़-छाड़ कर राजनीति में आ गए। मक्की की रोटी के शौकीन डॉ. परमार सामाजिक विज्ञान एवं नृ-शास्त्र के भी विज्ञाता थे।

पर्यावरण की जिस चिंता में आज पूरा विश्व डूबा हुआ है, उसकी आहट डॉ. परमार ने वर्षों पहले सुन ली थी। उन्हीं के शब्दों में—'वन हमारी बहुत बड़ी सम्पदा हैं। इनकी हिफाज़त हर हिमाचली को हर हाल में करनी है। नंगे पहाड़ों को हमें हरियाली की चादर ओढ़ाने का संकल्प लेना होगा। प्रत्येक व्यक्ति को एक पौधा लगाना होगा और पौधे ऐसे हों जो पशुओं को चारा दें, उन से बालन मिले और बड़े होकर इमारती लकड़ी के साथ आमदनी भी दें। एक मंत्र और सुन लें केवल पौधा लगाने से कुछ नहीं होगा। उसे पालना और सम्भालना होगा। वनों के त्रिस्तरीय उपयोग को लेकर परमार का कहना था कि कतारों में लगाए इमारती लकड़ी के जंगल प्रदेश के फिक्स डिपॉज़िट होंगे। बाग-बगीचे लगाकर हम तो सम्पन्न हो सकते हैं, लेकिन वानिकी से पूरे प्रदेश में सम्पन्नता आएगी।'

कृषि महाविद्यालय, पालमपुर और बाद में कृषि विश्वविद्यालय में राष्ट्र के अनेक राजनेता समय-समय पर आए और उन्होंने अपने-अपने सुझाव भी दिए। डॉ. यशवन्त सिंह परमार ने यह आशंका भी जताई थी कि खेती को पूरी तरह से यांत्रिक बना देंगे तो लाभ तो होगा, लेकिन बैलों का क्या होगा? और आज हम देख ही रहे हैं कि सड़कों पर बच्छड़े ही बच्छड़े या बैल घूम रहे हैं। आवारा पशु स्वयं तो परेशान हैं ही, परंतु कृषक समाज भी फसलों के नष्ट होने से बहुत परेशान हैं। प्रेमचन्द की कहानी 'पूस की रात' का दृश्य पुनः ताज़ा हो जाता है। डॉ. परमार दूरदर्शी थे। उन्हीं के प्रयत्नों से हिमाचल बना, तभी तो हिमाचल निर्माता कहलाए, केवल आकार-प्रकार के कारण नहीं, अपितु विकास की विभिन्न परियोजनाओं को सफलतापूर्वक लागू करने के कारण। सादगी की प्रतिमूर्ति डॉ. परमार प्रदेश को आदर्श बनाने के लिए निरन्तर प्रयत्न करते रहे। मैं सन् 1966 से 2001 तक कृषि विश्वविद्यालय में भाषा विभाग में अध्ययन एवं अध्यापनरत रहा और मेरा यह सौभाग्य रहा कि मैंने डॉ. यशवन्त सिंह परमार तथा समय-समय पर आने वाले अन्य नेताओं को बहुत निकट से देखा, लेकिन वर्षों बाद भी डॉ. परमार की छवि की झलक मेरे मन-मस्तिष्क में है, वह एक महान विभूति की है। शत-शत नमन।

[पुष्पांजलि, राजपुर (पालमपुर), ज़िला कांगड़ा, हि.प्र.-176067]
मो. 94180 80088

डॉ. परमार : कुछ संस्मरण

❑ के. आर. भारती

जब से हमने थोड़ा होश संभाला, डॉ. यशवंत सिंह परमार यानि वाई.एस. परमार हिमाचल प्रदेश के मुख्यमंत्री थे। जिस समय हमने स्कूल में प्रवेश लिया था तब हमारा गवर्नमेंट हायर सैकंडरी स्कूल, गलोड़ पंजाब प्रांत के कांगड़ा ज़िला में था। कांगड़ा को तब पंजाब का पिछड़ा हुआ क्षेत्र माना जाता था। मुझे याद है कि जब हम छठी कक्षा में थे तो पंजाब के मुख्यमंत्री संत दरबारा सिंह हमारे स्कूल आए थे और पचास हज़ार रुपए की ग्रांट की घोषणा कर गए थे जिससे बच्चों के बैठने के लिए डेस्क खरीदे गए थे। अचानक उसी वर्ष के नवंबर की प्रथम तारीख को स्कूल में एक अजीब-सा वातावरण देखने को मिला। सब फुसफुसा रहे थे कि हम हिमाचल प्रदेश में मिल गए हैं। हमें इतना समझ नहीं आया था कि रातों-रात कैसे हम पंजाब से हिमाचल में आ गए! कोई प्रसन्न था तो कोई उदास। पंजाब को देश के सबसे खुशहाल राज्यों में एक माना जाता था, जब कि हिमाचल अभी राजनैतिक क्षितिज पर उभर ही रहा था। हमारे बहुत से अध्यापक जो पंजाब क्षेत्र से थे अपने आपको बाहरी-सा महसूस करने लगे थे। हमें डर था कि वे यहाँ से ट्रांसफर न हो जाएँ! लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ और हमारी कक्षाएँ यथावत चलती रहीं।

हम पंजाब शिक्षा बोर्ड से हिमाचल शिक्षा बोर्ड में आ गए। किताबों में पंजाब की जगह हिमाचल प्रदेश के बारे पढ़ाया जाने लगा। तब पता चला था कि हिमाचल को बनाने और पंजाब के पहाड़ी इलाकों को हिमाचल में मिलाने में डॉ. वाई.एस. परमार का कितना बड़ा योगदान था! जिस भू-भाग को अब हम हिमाचल प्रदेश कहते हैं उसमें देश के अन्य भागों की तरह राजे-रजवाड़ों का राज था। देश में अंग्रेज़ों का शासन था। लोग न अंग्रेज़ी शासन से खुश थे, न ही राजशाही से। उन्होंने अपने को संगठित कर प्रजामंडल बनाए जो राजाओं और अंग्रेज़ हुक्मरानों के विरुद्ध आवाज़ उठाने लगे। डॉ. परमार, जो उस समय सिरमौर रियासत के सेशन जज थे ने भी अपने इस उच्च पद को ठुकरा कर प्रजामंडल की राह अपनाई।

देश में 1885 में ए.ओ. ह्यूम ने भारतीयों को अपने अधिकारों की पैरवी करने के लिए कांग्रेस की स्थापना की थी। महात्मा गांधी के नेतृत्व में देश में स्वतंत्रता का संग्राम छिड़ा जिसमें कई नेताओं और लोगों के संघर्ष और बलिदान के कारण भारत, अंग्रेज़ों की गुलामी की ज़ंजीरें तोड़कर 15 अगस्त, 1947 को आज़ाद हो गया। आज़ाद होते ही देश के गृह मंत्री लौह पुरुष सरदार पटेल ने रियासतों को भारतीय संघ में विलय करने का देशव्यापी अभियान छेड़ा। फलस्वरूप एक के बाद एक रियासत भारतीय संघ में शामिल होने लगी। जिस किसी

ने कोई आनाकानी की, उसे मिलने को मजबूर किया गया।

इस हिमालयन भू-भाग की भी तीस छोटी-बड़ी रियासतें, जो भारत संघ में विलय हुईं, उन्हें मिलाकर 15 अप्रैल, 1948 को हिमाचल प्रदेश का गठन किया गया। नए प्रांत के नामकरण में नेताओं में मतभेद थे। डॉ. परमार इस प्रांत को हिमालयन प्रांत नाम दिए जाने के पक्षधर थे, लेकिन बघाट के राजा दुर्गा चंद व मंडी के राजा जोगिंदर सेन ने 28 जनवरी, 1948 को सोलन में आयोजित एक बैठक में इसका नाम हिमाचल प्रदेश सुझाया जिस पर अंततः केंद्रीय सरकार ने मोहर लगा दी।

हिमाचल को पहले चीफ कमिश्नर प्रांत बनाया गया। लेकिन लोग कमिश्नरी राज से प्रसन्न नहीं थे। वे यहाँ जनतांत्रिक सरकार चाहते थे जिसके लिए डॉ. परमार की अध्यक्षता में जद्दोजहद आरम्भ हुई। इसके फलस्वरूप वर्ष 1951 में केंद्र को हिमाचल में लोकतांत्रिक सरकार बहाल करने के लिए हाँ करनी पड़ी। लेकिन राज्य को पूर्ण राज्य न बनाते हुए लेफ्टिनेंट गवर्नर के अधीनस्थ क्लास सी राज्य बनाया गया। विधान सभा चुनाव 1951-52 में, कांग्रेस को जीत प्राप्त हुई और 24 मार्च, 1952 को डॉ. यशवंत सिंह परमार ने पहली बार प्रदेश के मुख्यमंत्री की कमान संभाली। अब प्रदेश में पूर्ण राज्य के दर्जे के लिए और पंजाब के पहाड़ी इलाकों को हिमाचल में मिलाने के लिए मांग ज़ोर पकड़ने लगी। लेकिन लोगों की इच्छा के विपरीत जस्टिस फ़ज़ल अली की अध्यक्षता में बने राज्य पुनर्गठन आयोग ने हिमाचल को ईस्ट पंजाब में विलय कर देने की अनुशंसा कर दी, जिससे प्रदेश के लोगों व नेताओं में रोष पैदा हो गया, जो शीघ्र ही आक्रोश में बदल गया। 1 नवंबर, 1956 को केंद्र सरकार, हिमाचल को अलग इकाई के रूप में रखने के लिए मान तो गई, परंतु एक केंद्रीय शासित राज्य के रूप में, विधानसभा के स्थान पर टैरीटोरियल कौंसिल का गठन कर दिया गया। लगातार संघर्ष के बाद जुलाई, 1963 में विधानसभा को बहाल किया गया, लेकिन हिमाचल रहा केंद्रीय शासित राज्य ही। डॉ. परमार की रहनुमाई में एक लम्बी लड़ाई लड़ी गई जिसके परिणामस्वरूप 1 नवंबर, 1966 को शिमला, कांगड़ा, कुल्लू, लाहौल स्पीति, डलहौजी, ऊना इत्यादि पहाड़ी क्षेत्र हिमाचल में मिला दिए गए। लघु हिमाचल, विशाल हिमाचल बन गया।

वर्ष 1967 में देश के साथ-साथ जब हिमाचल में भी सामान्य चुनाव की घोषणा हुई तो प्रदेश के पूर्ण राज्य के दर्जे के लिए पूरे जोशो-खरोश से अभियान छिड़ गया। अब पंजाब से हिमाचल में आए विधायक व सांसद भी इस अभियान में पूरा साथ निभा रहे थे। 1967 के चुनाव में कांग्रेस बहुमत से जीत गई और 14 मार्च, 1967 को पुनः डॉ. परमार ने ही राज्य के मुख्यमंत्री की कमान संभाली। प्रदेश नेतृत्व के निरंतर संघर्ष के कारण और परमार साहब के केंद्र सरकार के साथ रसूख के चलते, हिमाचल प्रदेश 25 जनवरी, 1971 को पूर्ण राज्य बन गया। देश की तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने स्वयं शिमला रिज से हिमाचल को भारतीय संघ के अठारहवें राज्य के रूप में घोषित किया।

वर्ष 1972 में प्रदेश में फिर चुनाव आया। तब हम ग्यारहवीं कक्षा में हो गए थे। राजनीति की बातें अब हमें कुछ-कुछ समझ आने लगी थीं। तब हिमाचल प्रदेश में कांगड़ा-पालमपुर से सम्बंध रखने वाले शांता कुमार विरोधी दल के नेता के रूप में उभर रहे थे। प्रो. प्रेम कुमार धूमल अभी दोआबा कॉलेज में अध्यापन कर रहे थे। बाबू राम मंडयाल नादौनता विधान सभा क्षेत्र से वर्ष 1967 में आज़ाद उम्मीदवार के रूप में जीते थे, लेकिन

बाद में कांग्रेस में चले गए थे। वर्ष 1972 में वे दोबारा नादौनता क्षेत्र से ही चुनाव लड़ रहे थे—कांग्रेस उम्मीदवार के रूप में।

फरवरी के अंत या मार्च के आरंभ में पता चला कि हिमाचल के मुख्यमंत्री डॉ. वाई. एस. परमार एक चुनावी सभा को गलोड़ स्कूल के नज़दीक, गाँव लहड़ा में सम्बोधित करने वाले हैं। पता नहीं हमें स्कूल का कोई सम्माननीय अध्यापक वहाँ ले गया था या खुद ही अपना बस्ता उठाए हम वहाँ पहुँच गए थे! तब चुनाव आचार संहिता इतनी सख्ती से लागू नहीं होती थी और स्कूल के अध्यापक अमूमन बड़े नेताओं के भाषण सुनने बच्चों को ले जाते थे।

जब हम चुनावी सभा में पहुँचे तो नादौन के प्रत्याशी बाबू राम मंडयाल अपना भाषण दे रहे थे। उनके बाद जब डॉ. परमार भाषण देने उठे तो सभा तालियों से गूँज उठी। गोरे रंग और अधपके बाल वाले परमार साहब अपनी सादी वेशभूषा यानि कुर्ता, चूड़ीदार पाजामा व सदरी में थे। बड़े ही सरल शब्दों में उन्होंने हिमाचल प्रदेश की भूमिका बांधी। फिर देश की आज़ादी में कांग्रेस के महत्त्वपूर्ण योगदान का बखान कर कांग्रेस को जिताने की अपील की। कांग्रेस के प्रति इलाके में अब कुछ विरोधी स्वर उठने लगे थे, जिनका आभास परमार साहब को हुआ। मौके की नज़ाकत को समझते हुए उन्होंने वहाँ एकत्रित लोगों से प्रश्न किया कि तुम्हारी पुरानी खाटों में जब खटमल (मंगन) पैदा हो जाते हैं तो आप क्या खाट जला देते हो? बीच से आवाज़ें आईं—'नहीं, नहीं'। तो फिर क्या करते हैं? थोड़ा रुकने के बाद वे खुद ही उत्तर देने लगे—'खाटों को ठपनी (थापी) से झाड़ते हैं और धूप में सुखा कर उन्हें दोबारा प्रयोग में ले आते हैं न हम! ऐसे ही पुरानी पार्टी को खत्म नहीं करना है। इसे झाड़-फूँक कर दोबारा जिताना है।' भई क्या बात कही, परमार साहब ने, भीड़ बोल उठी थी। एक छोटे से दृष्टांत ने चुनाव की तासीर ही बदल दी थी। चुनाव में कांग्रेस को जीत मिली। नादौन से बाबू राम मंडियाल पुनः चुन लिए गए। प्रदेश में कांग्रेस सरकार बनी तो परमार साहब को चौथी बार प्रदेश का मुख्यमंत्री बनाया गया।

स्कूल, कॉलेज की पढ़ाई करने के पश्चात, 1976 में मैंने हिमाचल विश्वविद्यालय में एम.एस.सी. कैमिस्ट्री में प्रवेश लिया। यह यूनिवर्सिटी भी तो उनकी ही देन थी। जब कभी वे यूनिवर्सिटी आते तो उनके सदविचार सुनने का मौका मिल जाता। वे हिमाचल प्रदेश में पहाड़ी भाषा व संस्कृति के संरक्षण, शिक्षा अर्जन, सड़क निर्माण, पशुपालन व बागवानी के विकास पर अत्यधिक बल देते हुए नज़र आते थे। उनका कहना था शिक्षा हमारे जीविका के साधन के साथ-साथ हमारे स्वाभिमान को जगाती है।

परमार साहब का मानना था की सड़कें किसी भी प्रदेश के भाग्य की रेखाएँ होती हैं। सड़कों के विना विकास की कल्पना भी नहीं की जा सकती। वे यह भी कहते हुए सुने जा सकते थे कि हिमाचल जैसे पहाड़ी राज्य में जहाँ कृषि के विकास की संभावनाएँ कम हैं, बागवानी ही प्रदेश की आर्थिकी मज़बूत कर सकती है। हिमाचल में बेशक सत्यानंद स्टोक्स अमेरिका से सेब लाए, लेकिन सेब को राज्य की इकौनमी बनाने में डॉ. परमार का महत्त्वपूर्ण योगदान था।

मई, 1977 में यूनिवर्सिटी में ही अचानक पता चला कि डॉ. वाई.एस. परमार ने मुख्यमंत्री के पद से त्यागपत्र दे दिया है। सुनने में आया कि इंदिरा गांधी के छोटे सुपुत्र संजय गांधी जब शिमला आए थे तो उनकी अगुवाई के लिए डॉ. परमार हैलीपैड पर नहीं गए थे जिससे वे उनसे नाराज़ हो गए थे। कुछ दिनों बाद ही उन्हें त्यागपत्र देने को कहा गया जो

उन्होंने सहर्ष दे दिया। वे स्वयं को इंदिरा गांधी के समकक्ष नेता मानते थे। संजय गाधी जी की अगुवाई करना शायद प्रोटोकोल के अनुरूप सही नहीं बैठता था। ऐसा भी सुनने में आया कि इंदिरा जी, परमार साहब को अपना त्यागपत्र वापिस लेने को कहती रहीं, परंतु उनका स्वाभिमान बीच में आ गया था। शायद उन्हें इस तरह मुख्यमंत्री से निकाले जाने के अपमान का नतीजा था या कुदरत का ही कहर था कि वे अब बीमार रहने लगे थे और आखिर 2 मई, 1981 को उन्होंने अपनी देह त्याग दी। पूरा प्रदेश शोक में डूब गया था।

वर्ष 1985 में मैं हिमाचल प्रदेश प्रशासनिक सेवाओं में चयनित हुआ। पांगी, डलहौजी, चम्बा में नौ वर्ष प्रशासनिक सेवाएँ देने के उपरांत मेरी नियुक्ति बतौर ए.डी.एम. परमार साहब के गृह ज़िला सिरमौर में हुई। उस समय उनके सुपुत्र कुश परमार नाहन से एम.एल.ए. थे। कभी व्यक्तिगत तो कभी सरकारी समारोहों में उनसे मुलाकातें होती रहीं। कुश परमार तब हाउसिंग बोर्ड के किसी किराए के मकान में रह रहे थे। मुझे बताया गया कि परमार साहब द्वारा बागथन में बनाए गए साझे मकान के अतिरिक्त उनका कोई शिमला या नाहन में मकान नहीं है। उनके भाई लव परमार हॉर्टिकलचर विभाग नाहन में सब इंस्पेक्टर थे। सबसे बड़े दो भाई प्राईवेट फर्मों में काम करते थे। परमार साहब ने अपने बेटों के लिए अपने सरकारी कार्यालय का कोई अनुचित लाभ नहीं उठाया था। उस समय ही मुझे पता चला कि परमार साहब का पुश्तैनी मकान बागथन में नहीं चन्हालग में है। एक बार हमने बागथन और चन्हालग जाने का कार्यक्रम बनाया। हम बागथन पहुँच भी गए। परमार साहब का निजी मकान और उसके साथ उनका बगीचा भी देखा। चन्हालग को जाने के लिए कोई सड़क नहीं थी। वहाँ पहुँचने के लिए पैदल लम्बी चढ़ाई चढ़ना ज़रूरी था। काम की व्यस्तता से चन्हालग जाना संभव नहीं हो पाया। मुझे ताज्जुब हुआ कि परमार साहब अपने पुश्तैनी घर चन्हालग तक सड़क बनाना क्यों भूल गए या चूक गए। शायद वह पूरे हिमाचल के सम विकास की चिंता से इतने घिरे थे कि अपने घर की चिंता भूल गए थे।

[गाँव सरावग, नज़दीक केलटी, वाया ए.जी. डाकघर, शिमला, हि.प्र.-171003]

मो. 98166 72455

सचिवालय के 'समिट हॉल' में शिमला समझौते के अवसर पर उपस्थित डेलीगेशन के साथ डॉ. यशवंत सिंह परमार।

विराट व्यक्तित्व के धनी : डॉ. परमार

❑ राजेंद्र राजन

वे दिसम्बर 1977 के शुरुआती दिन थे। ललित चंदेल जिनके छोटा शिमला के घर में मैं रहता था, जनूनी-सा राजनेता था। उसे एक रोज़ धुन सवार हुई कि परमार जी से मिला जाए और सामाजिक कुरीतियाँ यानी दहेज़ प्रथा, बाल विवाह, अस्पृश्यता आदि के विरुद्ध अभियान शुरू किया जाए। मुख्यमंत्री से तुरन्त भेंट का वक्त मुकर्रर हो गया। पहली ही भेंट में डॉ. परमार के विराट व विलक्षण व्यक्तित्व ने मुझे मोह-सा लिया था। सचिवालय यानी एलर्ज़ली में वे एक छोटे से कमरे में बैठे हुए थे। मेज़ के साथ केवल दो कुर्सियाँ सजी थीं। हमने जब अपनी मन्शा ज़ाहिर की तो वे मुस्करा कर बोले, "ललित सच पूछो तो हिमाचल सदियों से जिन कुरीतियों में जकड़ा हुआ है उनसे मुक्त कराने का दायित्व आप जैसे युवा व कर्मठ कार्यकर्ता ही निभा सकते हैं। लेकिन यह काम बेहद कठिन है। एक संगठन तैयार करो जो जनमानस को जागरूक कर सके। मगर मुझे डर है कि आप लोगों का उत्साह, ऊर्जा महज़ प्रचार तक ही सीमित होकर न रह जाए।"

डॉ. परमार की अंतिम पंक्ति आज भी मेरे मानस पटल पर हू-ब-हू अंकित है। हमने विश्वविद्यालय के अनेक छात्रों से संपर्क साधा। लेकिन चन्द रोज़ बाद ही हमारा जुनून हवा-हवाई हो गया। डॉ. परमार से भेंट के बाद हम पुनः यूनिवर्सिटी गए। मैं पॉलिटिकल साईंस में एम.ए. का छात्र था तो ललित विश्वविद्यालय से पास आऊट। चौड़ा मैदान के पास हम शाम को आकाशवाणी शिमला से 'प्रादेशिक समाचार' सुनने के लिये रुके तो मुख्यमंत्री से हमारी भेंट और मन्शा का समाचार प्रसारित हुआ। हम आत्मविभोर हो उठे। दूसरे रोज़ 'द ट्रिब्यून' में एक कॉलम की खबर भी परमार जी के साथ हमारी भेंट को लेकर छपी थी।

डॉ. यशवन्त सिंह परमार के बारे में ज़्यादा से ज़्यादा जानने और उनके व्यक्तित्व व हिमाचल के प्रति उनके बहुमूल्य योगदान के बारे जानने के मौके 1985 के बाद मिलते रहे, जब नाहन में मेरी तैनाती बतौर डी.पी.आर.ओ. हुई। उनके बेटे कुश परमार विधायक से तो आए रोज़ मिलना होता ही रहता था। लेकिन मैंने उन्हें कम-सुखन यानी कम बात करने वाला व्यक्ति पाया। वे मुझे अन्तर्मुखी प्रतीत हुए थे। लेकिन दो-तीन दफा मुझे उनके गाँव चन्हालग जाने का अवसर मिला तो उनके एक अन्य सुपुत्र जुग्गी परमार से मिलने का मौका मिला। उनका असल नाम जयपाल सिंह परमार था। वे बेहद खुश मिज़ाज, मिलनसार और पहली ही मुलाकात में अजनबी को भी अपना बना लेने में माहिर थे। मुझे याद है एक दफा उनके बार-बार आग्रह के बाद मैं एक रात उनके घर रुका था। मैंने उन्हें कुरेदा तो उन्होंने

अपने मन की किताब को आहिस्ता-आहिस्ता खोला, डी.पी.आर.ओ. साहब क्या बताऊँ। मेरे पिता जी के बारे में तो कई किताबें लिखी जा सकती हैं। वे अगर बतौर मुख्यमंत्री हिमाचल की कमान न संभालते तो न मालूम हमें स्टेटहुड मिल पाती या नहीं। उन्हें विदा हुए चार साल बीत चुके हैं। 2 मई, 1981 को उनका निधन हुआ था लेकिन मुझे लगता है जैसे वो अभी इस मकान के कमरे से निकलकर बैठक में आ जाएँगे और पूछेंगे, "जुग्गी। तू क्या कर रहा है, खेतों में जा। फसल देख। जंगली जानवरों ने उत्पात मचा रखा है..." खैर जुग्गी परमार मेरी ज़िन्दगी में वो पहले शख्स थे जिनके दिल की किताब जब खुली तो डॉ. परमार के जीवन की बेशुमार परतें भी खुलती चली गयीं।

हालाँकि डॉ. परमार को इस दुनिया से विदा हुए कुछ साल बीत चुके थे, लेकिन उस दौर के सिरमौर ज़िला के मन्त्री गंगू राम मुसाफिर के साथ मैंने जितने भी दौरे किए, उनकी हर जनसभा में डॉ. परमार का ज़िक्र ज़रूर होता। मुझे ऐसा लगता था मानो सिरमौर के हर गाँव, हर कस्बे या शहर से डॉ. परमार की कोई-न-कोई स्मृति अवश्य जुड़ी हुई है। दिवंगत होने के बाद भी अगर डॉ. परमार से जुड़े किस्से और कहानियाँ सिरमौर के हर शख्स की ज़ुबान पर थे तो आप समझ सकते हैं कि उनकी लोकप्रियता बरकरार थी। उनके प्रति बेइंतहा दीवानगी और जुनून के दरम्यान उनके आलोचक भी कम नहीं मिले। दबी ज़ुबान में अक्सर मैं लोगों को कहते सुनता, सिरमौर हिमाचल का सबसे पिछड़ा ज़िला रहा है। मगर मुख्यमंत्री का घर सिरमौर में होते हुए भी उन्होंने यहाँ की तरक्की के लिये कुछ खास नहीं किया। जब तक डॉ. परमार मुख्यमंत्री रहे, हिमाचल वित्तीय संसाधनों की तंगी से जूझता रहा। दूसरे, केन्द्र में खासकर इंदिरा गांधी से अपने अच्छे रिश्तों के कारण वे सीमित संसाधनों व अनेक विपरीत परिस्थितियों के बावजूद हिमाचल को जिस बुलन्दी पर ले जा पाये वह स्वयं में अद्‌भुत और बेमिसाल है।

नेहरू की ही तरह डॉ. परमार एक सच्चे स्टेट्समैन थे, जो स्वयं को समस्त हिमाचल का सिरमौर मानते थे। अपने ज़िला यानी सिरमौर के लिये उन्होंने कभी भी 'ईमोशनल कार्ड' नहीं खेला। उल्टे समूचे प्रदेश में सड़कों, स्कूलों, स्वास्थ्य सुविधाओं का एक ऐसा विशाल नेटवर्क स्थापित किया जिसके बल पर इस पहाड़ी प्रान्त के लिये विकास के पैरामीटर तय हुए। वे संकीर्ण, क्षेत्रीय व स्वयं के घर को ही देखने जैसी मानिसकता से सर्वथा मुक्त थे। अगर ऐसा न होता तो अपने व्यक्तित्व में जो ऊँचाई डॉ. परमार ने हासिल की, उसे वे कभी भी हासिल नहीं कर सकते थे। 15 सितम्बर, 1980 को आकाशवाणी शिमला से प्रसारित अपनी एक रेडियोवार्ता में डॉ. परमार कहते हैं, "हिमाचल के गठन से पहले सब ज़मीन राजाओं की हुआ करती थी। विशेषाधिकार के कारण बेहतरीन ज़मीन राजा के पास होती थी। उसके बाद उसके परिवार के लोग और रिश्तेदार आते थे। आम लोगों के पास या तो ज़मीन होती ही नहीं थी या फिर बंजर पहाड़ियाँ ही हुआ करती थीं।" आज़ादी से पहले ऐसे शोषक राजाओं के विरुद्ध जनता के असन्तोष की यह भी एक प्रमुख वजह रही।

जनवरी, 1948 में प्रजामण्डल के आंदोलनकारियों और राजा सुकेत के मध्य जंग शुरू हो गयी। डॉ. परमार अपने साथियों के साथ दिल्ली गए। सरदार पटेल उन दिनों उप-प्रधानमन्त्री व गृह मन्त्री थे। पौ फूटने से पहले जब पटेल अपनी बेटी मुन्नी बेन के साथ सुबह की सैर को निकलते थे तो लोग उनके साथ खुलकर मिल सकते और बातचीत कर

सकते थे। डॉ. परमार उक्त रेडियो वार्ता में बताते हैं, "मैं सर्दियों की एक ऐसी सुबह पटेल को उनकी सैर के वक्त मिला। मैंने अर्ज़ किया, सरदार साहब हमारे हुक्मरान तसद्दुद से बाज़ नहीं आयेंगे और हमें भी उनकी हिंसा के जबाव में हथियार इस्तेमाल करने की इजाज़त दी जाए।" सरदार ने जबाव दिया, "तुम्हें किसने रोका है।" मैं देखता ही रह गया और वे आगे चल दिये।

उसके बाद क्या हुआ, सब इतिहास है।

डॉ. परमार जब शिक्षा के क्षेत्र में पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त कर चुके तो उन्होंने सिरमौर आकर ही जनता की सेवा का मार्ग चुना और सिरमौर रियासत के सत्र न्यायाधीश के तौर पर काम शुरू किया। डॉ. देवेन्द्र सिंह तथा हरिचन्द्र के विरुद्ध इण्डियन पीनल कोड की धाराओं के अन्तर्गत महाराजा सिरमौर को जान से मार देने के षड्यंत्र का आरोप लगा था। मुकद्दमें में अपना ऐतिहासिक निर्णय देते हुए डॉ. परमार ने इन दोनों को बरी कर अपनी चारित्रिक दृढ़ता तथा राजतंत्र विरोधी निश्चय का प्रमाण दिया। इस ऐतिहासिक निर्णय में डॉ. परमार ने लिखा था, "अभियुक्तों ने दोषारोपण में कहा है कि पुलिस ने बदले की भावना से तथा प्रजामण्डल आंदोलन को दबाने की नीयत से केवल एक व्यक्ति रामकृष्ण के कहने पर अभियुक्तों पर जुल्म ढाये। यदि अभियुक्तों को शारीरिक यातनाएँ देने की कहानी सत्य है तो इस पर गहराई से ध्यान देना चाहिए...। मैं इस बात से सहमत हूँ कि अभियुक्तों के विरुद्ध महाराजा के खिलाफ युद्ध छेड़ने अथवा युद्ध की तैयारियाँ करने का कोई मामला साबित नहीं होता अतः उन्हें इण्डियन पीनल कोड की धारा 121-121 ए तथा 120-बी के अन्तर्गत लगाये गए अभियोगों से मुक्त किया जाता है।"

राजा के अधीन कार्यरत एक न्यायिक अधिकारी राजा के कत्ल की साजिश के आरोप में प्रस्तुत किए गए अभियुक्तों को इतनी निर्भयता से आरोप मुक्त कर सकता है, ऐसा आम आदमी के लिए कल्पना से बाहर की बात थी। सिरमौर दरबार ने डॉ. वाई.एस. परमार सैशन जज के इस फैसले के विरुद्ध हाई कोर्ट में अपील दायर की, जिससे स्पष्ट झलकता है कि डॉ. परमार ने यह फैसला सिरमौर के तत्कालीन शासनतंत्र की इच्छाओं के विपरीत दिया था। इस निर्णय की देश-भर में चर्चा हुई। प्रेमचन्द की कहानी 'पंचपरमेश्वर' के अलगू और जुम्मन की तरह। इसलिये चूँकि वे एक न्यायाधीश के पद पर विराजमान थे। बाकि सिरमौर के महाराजा के चाटुकार। सिरमौर के महाराजा के कतई गुलाम नहीं थे। दूसरे, उस वक्त देश-भर में आज़ादी की लहर चल रही थी। वे प्रगतिशील विचारधारा को बढ़ाने के लिए वचनबद्ध थे। उनके सरोकार समाज के प्रति थे। वे आम आदमी के दुःख-तकलीफ के हिमायती थे।

डॉ. परमार अपनी पुस्तक 'पोलीएण्डरी इन द हिमालयाज़' में बात का उल्लेख करते हुए कहते हैं, "अब संघर्ष एकाकी स्तर पर नहीं रह गया था। यह सब का संघर्ष बन चुका था। पहाड़ी क्षेत्रों में आज़ादी का बिगुल बज चुका था।" 26 जनवरी, 1948 को डॉ. परमार ने शिमला में एक सार्वजनिक सभा में एक प्रस्ताव पारित कर राष्ट्रीय नेतृत्व से अनुरोध किया कि शिमला की पहाड़ियों को इकट्ठा कर पहाड़ी क्षेत्रों के एक राज्य का निर्माण किया जाए। यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास कर दिया गया। उसी दिन हिमालय प्रान्त की प्रान्तीय सरकार का भी गठन कर दिया गया। इस प्रकार पहाड़ी राज्यों के विलय के लिए संघर्ष अंतिम चरणों

में जा पहुँचा। फलस्वरूप 15 अप्रैल, 1948 को हिमाचल नाम से एक छोटा-सा राज्य भारत के मानचित्र पर उभरा।

डॉ. परमार ने ऐसे वक्त में हिमाचल की बागडोर संभाली थी, जब यह पहाड़ी प्रान्त सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक रूप से पिछड़ा हुआ था। हिमाचल को कुशल प्रशासक, देशभक्त और योग्यता सम्पन्न नेता की आवश्यकता थी। आज़ादी से पहले हिमाचल में प्रजामण्डल आंदोलन की दशा व दिशा तय करने का दायित्व डॉ. परमार ने बखूबी निभाया था। इसी कारण उन्हें हिमाचल की बागडोर सौंपी गयी थी। 1 नवम्बर, 1956 से जुलाई, 1963 तक हिमाचल केन्द्र प्रशासित प्रदेश रहा। डॉ. परमार ने हिमाचल में प्रजातन्त्री व्यवस्था की जड़ों को पुख्ता करने का प्रयास किया था। नेहरू के समक्ष अपनी मांग पेश की। तर्क दिया, जनाब अमरीका में तो 1879 में छोटे-छोटे केन्द्र प्रशासित इलाकों को दो सदनों वाला प्रजातन्त्रीय ढांचा दे दिया गया था। क्या आप जैसा लोकतन्त्र प्रेमी हिमाचल को विधानसभा नहीं दे सकता? नेहरू ने कहा, "क्या आप मेरे गृह मन्त्री गोविन्द वल्लभ पन्त को हिला सकेंगे। यानी पन्त को नेहरू के लिये भी मनाना मुश्किल-सा काम था। लेकिन डॉ. परमार ने पन्त को मनाने के प्रयास भी जारी रखे। एक दफा नेहरू शिमला में मशोबरा के पास रिट्रीट में रुके हुए थे। नेहरू ने परमार से कहा, 'मैंने एक बड़े राज्य के मुख्यमन्त्री को कुर्सी छोड़ने के लिये कहा है, क्योंकि वे सन्तोषजनक तरीके से काम नहीं कर रहे थे। परमार बोले, "अगर आपको मुझ से कोई शिकायत हो तो मैं इसी वक्त त्याग पत्र दे रहा हूँ।" नेहरू बोले, "तुम बुज़दिल हो परमार। अपने फर्ज़ से भागना चाहते हो।" परमार ने जवाब दिया, "फर्ज़ से कतई नहीं भाग रहा। अगर आप मुझे इस ओहदे के काबिल नहीं समझते तो किसी और को मुख्यमंत्री नामज़द कर दीजिए। ऐसा लगता था इस्तीफे मानों डॉ. परमार की जेब में रहते हों। जब-जब उनके स्वाभिमान को ठेस पहुँचाने का प्रयास किया जाता वे अपने मान-सम्मान की रक्षा के लिये हर कुर्बानी देने को तैयार रहते।

गुलाम भारत में पैदा होकर भी वे गुलामी की मानसिकता की ज़ंजीरों को तोड़ने में अग्रणी रहे। भले ही इसकी कीमत उन्हें सिरमौर रियासत से निष्कासन के रूप में तथा सैशन जज के पद से हाथ धोकर चुकानी पड़ी। वैद्य सूरत सिंह कहते थे कि सिरमौर रियासत के संघर्ष में डॉ. परमार की युक्तियाँ सदैव अचूक होती थीं और उनकी जोड़-तोड़ की क्षमता सिरमौर प्रशासन को हतप्रभ कर देती थी। उनकी यही क्षमता स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उनके विरोधियों से लोहा लेने में उनकी शक्ति बनी। इसी आंतरिक शक्ति के बलबूते पर उन्होंने हिमाचल प्रदेश को 1975 के बाद की आपात स्थिति की विभिषिका से उबारा।

डॉ. परमार भली-भांति समझते थे कि जब पहाड़ में रहने वाले लोगों की नियति का निर्णय दिल्ली के वातानुकूलित कमरों में बैठे ब्यूरोक्रेट कर रहे हों तो असंख्य स्थानीय कठिनाइयों का कैसे समाधान किया जा सकता था। जब पंजाब ने 1967 में हिमाचल को गेहूँ भेजने पर रोक लगा दी थी और डॉ. परमार ने खाद्य मंत्रियों की बैठक में वस्तुस्थिति से तत्कालीन कृषि मंत्री जगजीवन राम को अवगत कराने का प्रयास किया तो जगजीवन राम ने कहा था कि हिमाचल तो केन्द्र सरकार की ज़िम्मेदारी है।

एक बार किसी सम्मेलन में उनसे पूछा गया कि हिमाचल के विकास के लिए उनकी प्राथमिकता क्या है। उन्होंने कहा, 'सड़क'। दूसरी वरीयता क्या है तो उन्होंने कहा, 'सड़क'

और जब तीसरी वरीयता के बारे में उनसे पूछा गया तो भी उनका स्वाभाविक उत्तर था—'सड़क'। सन् 1948 में केवल 288 कि.मी. लम्बी सड़कें थीं तो 1971 में ये 13,000 के आसपास पहुँच गयीं। डॉ. परमार हिमाचल और हिमालय में सड़कों का जाल बिछा हुआ देखना चाहते थे ताकि यहाँ की नकदी फसलें कम समय तथा कम खर्च में देश की बड़ी मंडियों तक पहुँच सकें और देश के अन्य क्षेत्रों के उत्पाद यहाँ के लोगों को सस्ते मूल्य में गाँव के हॉट में ही उपलब्ध हो सकें। यहाँ की अर्थव्यवस्था को जहाँ एक और यह दोहरा फायदा दे सकती थी वहाँ दूसरी ओर यहाँ के लोगों को देश की मुख्यधारा में शामिल होने के अवसर भी प्रदान कर सकती थी। अज्ञान का अंधकार प्रकाश पुंज से ही भगाया जा सकता है और आपसी आदान-प्रदान अनजाने में ही ज्ञान के नये आयाम खोल देता है।

एक वक्त ऐसा भी आया जब केन्द्र सरकार और पंजाब के मुख्यमंत्री प्रताप सिंह कैरों हिमाचल को पंजाब में विलय पर गंभीरतापूर्वक विचार कर रहे थे। लेकिन इसका डॉ. परमार व उनके सहयोगियों ने कड़ा विरोध किया। पता चला कि मीटिंग में पंजाब के मुख्यमन्त्री प्रताप सिंह कैरों ने कह दिया था कि यह हिमाचल कोई राज्य तो है नहीं, अपितु पंजाब से लगता छोटा-सा एक पहाड़ी क्षेत्र है। इसे पंजाब के साथ मिला देना चाहिए ताकि सीमा पर एक सशक्त प्रदेश बन जाए। डॉ. परमार यह सहन नहीं कर सके और गृहमंत्री के सामने ही दोनों मुख्यमंत्रियों में काफी मैं-मैं, तू-तू हुई थी। डॉ. परमार वहाँ उपस्थित हिमाचल से आए व्यक्तियों तथा ललित सेन से कहने लगे, "देखते हैं कि हिमाचल को ये लोग पंजाब में मिलाते हैं या जो पहाड़ी इलाके पंजाब में रह गए हैं वे हिमाचल में मिलते हैं"। उन्होंने आगे कहा कि हिमाचल की बदौलत ही पंजाब मालामाल बना और आज हिमाचल को उसके बदले यह इनाम दिया जा रहा है कि उसका अस्तित्व ही समाप्त कर दिया जाए। एहसान फरामोशी की इससे बड़ी मिसाल क्या कहीं मिल सकती है।

डॉ. परमार ने संकल्प दोहराया था, "पंजाब को बिजली हम देते हैं, पानी हम देते हैं, उपजाऊ मृदा यानी मिट्टी हम देते हैं, जिससे पंजाब में हरित और श्वेत क्रान्ति आई। उद्योगों की दिशा में पंजाब दूसरा मान-चेस्टर बन गया। हिमाचल को इसका क्या डिवीडेन्ट मिला है? उल्टा पंजाबी हमें घटिया पहाड़ी समझते हैं। पंजाब के लोग अब इस बात को समझ लें कि अब हम इसका हिस्सा लेकर रहेंगे।"

यह घटना 1956 की है जब राज्य पुनर्गठन आयोग रिपोर्ट में बहुमत से हिमाचल से पंजाब में मिलाने की सिफारिश की गई तो डॉ. परमार के नेतृत्व में प्रदेश के लोग और मंत्रीमण्डल में उनके प्रतिनिधि अपनी विधानसभा को त्यागने के लिए तैयार हो गए। डॉ. परमार ने पुनर्गठन आयोग के तीनों सदस्यों से अपनी अनथक कोशिशों से ऐसी रिपोर्ट तैयार न करने का अनुरोध ही नहीं किया, अपितु प्रदेशवासियों की भावनाओं से अवगत भी कराया। डॉ. हृदय नाथ कुंजरू, जो आयोग के सदस्य थे, से डॉ. परमार की झड़प भी हुई। यह रिपोर्ट सर्वसम्मति से नहीं, अपितु बहुमत से पारित हुई थी और आयोग के अध्यक्ष फ़ज़ल अली, डॉ. परमार की दलीलों से प्रभावित हुए। उन्होंने आयोग की रिपोर्ट पर हिमाचल को पंजाब में मिलाए जाने पर अपनी कड़ी असहमति व्यक्ति की। यह डॉ. परमार के कुशल नेतृत्व का ही कमाल था जिसकी हिमाचल वासियों ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की। केन्द्र शासित प्रदेश को विधानसभा नहीं मिल सकती थी। यदि उसने ऐसा चाहा हो तो उसे एक राज्य के साथ विलीन

होना पड़ता। फलस्वरूप जब कोई अन्य विकल्प न रहा तो डॉ. परमार ने हिमाचल को पंजाब का एक हिस्सा बनवाने की बजाय उप-राज्यपाल नामक प्रशासक के अधीन केन्द्र प्रशासित क्षेत्र बनवा दिया। ताकि भविष्य में पूर्णराज्य का दर्जा प्राप्त करने का रास्ता खुला रखा जा सके।

डॉ. परमार, नेहरू और लाल बहादुर शास्त्री से बराबर मिलते रहे। उन्हें हिमाचल की मुश्किलातों से अवगत कराते रहे और अन्त में सफल भी हुए। 29 मार्च, 1961 को शास्त्री जी ने गृहमन्त्री के रूप में संसद में वक्तव्य दिया, "मैं समझता हूँ यह बेहतर होगा कि आधे मन से कोई कदम न उठाया जाए। बेहतर यह होगा कि हम जो कुछ भी अधिकार हिमाचल वासियों को देना चाहते हैं वे एक साथ ही सौंप दिए जाएँ और जनता के प्रतिनिधियों को सरकार चलाने का अधिकार दे दिया जाए।" शास्त्री जी के इस वक्तव्य में हिमाचल के प्रति परिपक्वता झलकती थी, क्योंकि वे इस प्रान्त की पीड़ा को बखूबी समझते थे।

डॉ. परमार जब भी प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी से मिलते थे तो संजय गांधी से नहीं मिलते थे। व्यर्थ में किसी से मिलना वे पसन्द नहीं करते थे। संजय गांधी यह सहन नहीं कर सकते थे। उन्होंने डॉ. परमार को मुख्यमन्त्री के पद से हटाने का मन बना लिया। संजय गांधी ने ठाकुर राम लाल को मुख्यमंत्री पद पर आसीन करने का मन बनाया। डॉक्टर साहिब नाहन से दिल्ली आए तो कुछ परेशान थे कि न मालूम क्या बात है। जब उन्हें प्रधानमंत्री के निजी सचिव ने प्रधानमंत्री का फैसला सुनाया तो डॉ. परमार बिल्कुल विचलित नहीं हुए और कहने लगे, "बस इतनी-सी बात थी तो मुझे फोन पर ही बताया होता। प्रधानमंत्री जी को कह दीजिए कि परसों मेरी मण्डी में जनसभा है। परसों ही जनसभा के बाद मेरा त्याग पत्र आ जाएगा।" उन्हें कहा कि आज ठहर जाओ कल प्रधानमंत्री से मिल लेना। उस दिन प्रधानमंत्री वहाँ नहीं थीं। डॉक्टर साहिब ने कहा, "प्रधानमंत्री ने ही मुझे मुख्यमंत्री बनाया है उनका आदेश मेरे लिए अंतिम है।"

डॉ. परमार पहाड़ी भाषा के हिमायती थे। बावजूद इसके कि हिमाचल में कई ज़िलों की स्वतन्त्र व विशिष्ट बोलियाँ या उपभाषाएँ हैं जिन्हें एक ज़िला से दूसरे ज़िला के लोग न तो समझ पाते हैं, न ही लिख पाते हैं। यानी कुल्लुवी, कांगड़ी, किन्नौरी, मण्डयाली, लाहुली, सिरमौरी आदि। लेकिन भाषा के मुद्दे पर डॉ. परमार शायद राजनैतिक स्वर पर अलग विचार रखते थे। उनका मत था, देश में अगर राज्यों का पुनर्गठन हुआ तो वह भाषा के आधार पर होगा। यदि हमारे प्रान्त की अपनी भाषा होगी तो यह प्रदेश स्वतन्त्र रहेगा और कभी भी दूसरे प्रदेशों के साथ नहीं मिलाया जाएगा। इसका अर्थ यह है कि वे दूरद्रष्टा थे और अपने प्रान्त के अस्तित्व व अस्मिता की रक्षा के लिये कटिबद्ध थे। भविष्य के बारे में सोचते थे। इसी बात को लेकर एक और दिलचस्प किस्सा याद आता है। एक दफा शिक्षा विभाग ने उनके समक्ष एक प्रस्ताव रखा जिसके मुताबिक केन्द्र सरकार राज्यों को हर प्रान्त में 'हिन्दी अकादमी' के गठन के लिये एक करोड़ की ग्रान्ट देना चाहती थी। लेकिन उन्होंने इस प्रस्ताव को स्वीकृति प्रदान नहीं की। कारण, वे मानते थे कि हिमाचल पहाड़ी भाषी राज्य है, हिन्दी भाषी नहीं। हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा है। इसलिये हमें हिन्दी भाषी क्षेत्र के लिये ग्रन्थ अकादमी या हिन्दी अकादमी की स्थापना आवश्यक नहीं है। पहाड़ी भाषा भले ही कोई आकार ग्रहण न कर सकी हो, लेकिन कामकाज की भाषा के लिये हिन्दी को ही मान्यता प्राप्त हुई। लेकिन हिन्दी भाषी बनने के कारण हरियाणा भी हिमाचल के अनेक इलाकों पर अपना दावा जताता रहा था।

लेकिन यह भी सच नहीं है कि डॉ. परमार हिन्दी भाषा के विकास के विरुद्ध थे। वे जानते थे कि जब तक पहाड़ी भाषा का कोई स्वतन्त्र स्वरूप उभर कर सामने नहीं आता। प्रशासकीय कामकाज में हिन्दी का ही प्रयोग होगा। पहाड़ी को बढ़ावा देश की पृष्ठभूमि में केवल अपने प्रान्त की सांस्कृतिक पहचान को यथावत बनाए रखना था।

डॉ. परमार के विषय में यह बात खासतौर से गौरतलब है कि मुख्यमंत्री के पद पर सालों-साल आसीन रहने के बाद भी उन्होंने कभी अमीर या सम्पन्न बनने का ख्वाब नहीं देखा। वे तो दीगर राजनेताओं की तरह अपने रसूख के बल पर धन, दौलत, सम्पत्ति इकट्ठा कर सकते थे। इस मायने में उनकी मिसाल लाल बहादुर शास्त्री से दी जाती है। ताउम्र राजनीति व प्रशासन के कामकाज में पारदर्शिता को बनाए रखा। स्वाभिमान की रक्षा के लिये त्याग पत्र देने के लिये हर वक्त तत्पर रहते। स्वतन्त्रता के बाद वे देश के उन दुर्लभ मुख्यमंत्रियों में शामिल थे जिन्होंने अमीरी की बनिस्वत निर्धनता को चुना। उन्होंने अपने पद का कभी भी दुरुपयोग नहीं किया। वे ईमानदारी की बेजोड़ मिसाल थे।

एक बार डॉ. परमार की बड़ी बेटी उर्मिला का स्वास्थ्य गिर रहा था तो अपने किसी करीबी के पूछने पर उसकी माँ चन्द्रावती यानी डॉ. परमार की पत्नी ने कहा था, प्रातः 8 बजे नाश्ता करने के बाद 5 बजे कॉलेज से लौटने के बीच वो कुछ भी नहीं खाती। महज़ 500 रुपये में घर का खर्च कैसे उठा सकती हूँ। डॉ. परमार के बड़े बेटे जीत परमार शिमला स्थित होटल एम्बैसेडर में 100 रुपये महीने की पगार पर रिसेपश्निस्ट थे। एक दिन होटल के मालिक ने उनसे कहा कि वो अपने पिता जी से चिट लायें ताकि उन्हें अच्छा पद दिया जा सके। अतः उन्होंने ऐसा कोई दुःसाहस नहीं किया। छोटे बेटे कुश परमार ने मुझे बताया था, "सभी बच्चों की शादियाँ सादा ढंग से हुईं। पन्द्रह-पन्द्रह आदमियों की बारात गयी। मैंने अपने बचपन में गाड़ी यानी कार खरीदने की ज़िद की थी। पर पिता जी नहीं माने। वे कहते थे, कल गाड़ी नहीं होगी तो, पैदल चलना सीखो।"

डॉ. परमार की पुस्तक (जो उनकी पी-एच.डी. उपाधि का थीसिस थी) 'पालिएंड्री इन हिमालयाज़' खूब विवादों में रही। हिमाचल के जाने-माने विद्वान व चिन्तक डॉ. हरिराम जस्टा ने उनकी पुस्तक पर विश्लेषणात्मक टिप्पणियाँ की हैं जिनमें से एक इस प्रकार है, "यद्यपि उनकी प्रसिद्ध शोध पुस्तक 'हिमाचल में बहुपति प्रथा' 1975 में प्रकाशित हुई, परन्तु उसका आधार और पृष्ठभूमि उन्होंने 1944 में बना दी थी, जब उनका शोध-प्रबन्ध 'हिमाचल में बहुपति प्रथा की सामाजिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि' लखनऊ विश्वविद्यालय में पी-एच.डी. की उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ। लगभग 30 वर्ष बाद, डॉ. साहब ने हिमाचल में बहुपति प्रथा (अंग्रेज़ी) पुस्तक के रूप में शोधकार्य के प्रारूप को सुव्यवस्थित रूप में प्रस्तुत किया। सामाजिक इतिहास के तथ्यमूलक मूल्यांकन और विवेचन के लिए बहुपति प्रथा का अध्ययन अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। ऐसी प्रथाएँ मानव समाज में खून, लिंग और आयु से भी अधिक व्यापक और मौलिक ढंग पर सामाजिक इकाइयों का निर्माण करती हैं। सामाजिक इकाइयाँ विभिन्न समयों में समाज की अनेक मंज़िलों का निर्माण करती रही हैं। डॉ. परमार ने बहुपतित्व पर इसी संदर्भ में विचार प्रस्तुत किया है। उन्होंने सांस्कृतिक, जैविक, प्राकृतिक, आर्थिक, समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण पर प्रचुर प्रकाश डाला है। बहुपति प्रथा का यह विवेचन अभी तक किये गए अन्य विवेचनों से अनेक अर्थों में नया और अनूठा है।

जब पुस्तक का प्रकाशन हुआ तो प्रदेश और बाहर इस पुस्तक में प्रकट किये गए विचारों पर विवाद पैदा हो गया था। कुछ रूढ़िवादी इस अध्ययन को हिमाचल के कुछ खास इलाकों की जीवन-पद्धति पर आक्रमण कहते, तो कुछ राजनीति से प्रेरित लोग नारी जाति का अपमान। इन आलोचकों ने 'बहुपति प्रथा' पर डॉ. परमार की इस पुस्तक का, गंभीरता से एक बार भी अध्ययन करने का कष्ट नहीं किया और न ही वे सामाजिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व की एक ऐतिहासिकता को भली-भांति समझ सके।

इस पुस्तक में डॉ. परमार ने परम्परागत हिन्दू-विवाह प्रथा का ही ज़िक्र किया है। उनके अनुसार हिमाचल के कुछ भागों में पिछड़े हिन्दू वर्तमान मैदानी हिन्दुओं के रीति-रिवाज़ों से कई बातों में भिन्न हैं। इन भूले-बिसरे पहाड़ों में जाति प्रथा मुख्य तौर पर दो रूपों में वर्गीकृत है। ऊँची जातियों के मध्य काफी सामाजिक पारस्परिक क्रिया है। सजातीय विवाह का व्यवधान कम है। उन्होंने उदाहरण देते हुए स्पष्ट भी किया है कि भाटों की स्थिति अन्य ब्राह्मणों के बराबर और कनैतों की राजपूतों के बराबर है। वे परस्पर आज भी विवाह करते हैं। कुछ जनजातीय क्षेत्रों में बहुपति प्रथा का प्रचलन उच्च एवं निम्न दोनों जातियों में अब भी प्रचलित है। जिन समूहों का अध्ययन डॉ. परमार ने प्रस्तुत किया है, उनमें भ्रातृ-बहुपति प्रथा अधिक प्रचलित है। इस रिवाज़ के प्रचलन का अनुमोदन स्थानीय लोग महाभारत में द्रौपदी के विवाह से प्रायः जोड़ते हैं। द्रौपदी पाँच पांडवों की एकमात्र पत्नी थी। फिर भी उसे पुण्य, शुद्धता का साकार प्रतीक समझा जाता है। शैक्षिक-प्रसार, सामाजिक सम्पर्क और परिवर्तन के विस्तार के फलस्वरूप कुछ लोग इस बारे में संकोचशील बन गए हैं। लेकिन आज भी हिमालय के पिछड़े भीतरी भागों में लोग बहुपति प्रथा को घृणा से नहीं, आदर की दृष्टि से देखते हैं। ऐसे क्षेत्रों में डॉ. परमार के अनुसार महिलाओं की अपेक्षा पुरुषों की संख्या उस समय अधिक थी। खेती-बाड़ी के लिए उपजाऊ भूमि का अभाव है। इन्हीं आर्थिक कारणों से बहुपति प्रथा इन क्षेत्रों में अभी तक जारी है।

निश्चित तौर पर डॉ. परमार अपने समय के महान युगद्रष्टा, युगान्तरकारी व प्रगतिशील विचारधारा के विद्वान और कुशल राजनेता थे। हिमाचल के निर्माण और उसे देश-भर में विशिष्ट पहचान दिलाने में डॉ. परमार का योगदान सर्वोपरि रहा है।

[गाँव बल्ह, डाक. मौहीं, तह. व ज़िला हमीरपुर, हि.प्र.]

मो. 82191-58269

जब से हिमाचल है तब से हिमाचली

❑ डॉ. प्रत्यूष गुलेरी

बहुत साल गुज़र गए हैं फिर भी जब हिमाचल निर्माता डॉ. यशवंत सिंह परमार को याद करता हूँ तो एक प्रभावशाली व्यक्तित्व के रूप में प्रकट हो जाते हैं। डॉ. परमार जितने सुंदर-चित्ताकर्षक थे उतने ही मन और कर्म से भी सुंदर थे। देखने में कड़क और व्यवहार में कोमल हृदय थे।

मैं यहाँ अपनी युवावस्था के कुछ संस्मरण रख रहा हूँ, जिनसे उनके हिमाचली होने और हिमाचली संस्कृति, हिमाचली पहाड़ी भाषा के संवाहक होने का परिचय मिलता है। हिमाचली पहरावा उनका पसंदीदा था। सिरमौरी लोइया अक्सर पहनते। उन दिनों हिमाचल भाषा-कला-संस्कृति अकादमी और भाषा विभाग अस्तित्व में आए थे। हिमाचल की राजधानी शिमला में कवि सम्मेलनों और मुशायरों की भरमार रहती थी। लाल चंद प्रार्थी तब भाषा-संस्कृति मंत्री थे। मंत्री विधायक ही नहीं, डॉ. परमार खुद भी हाज़िर रहते।

एक रोचक प्रसंग तब का यहाँ रख रहा हूँ, जब पंजाब का पहाड़ी, हिमाचली भाषा क्षेत्र हिमाचल में नया-नया मिला था। डॉ. परमार और प्रार्थी ने मिलकर हिमाचली पहाड़ी भाषा का सपना देखा और उसे मूर्त रूप दे रहे थे। हिमाचली कवियों और लेखकों में भी भारी उत्साह था। उन्हीं दिनों (सन् तारीख पूरी याद नहीं) लगभग 1968-69 की बात होगी। मोरारजी देसाई उप प्रधानमंत्री थे। पौंग बांध विस्थापितों को सम्बोधित करने मंगवाल में हैलीकॉप्टर से आने वाले थे। हिमाचल के मुख्यमंत्री डॉ. परमार अपने अधिकतर मंत्रियों के साथ उस समय के गुलेर विधानसभा क्षेत्र के विधायक डॉ. चूड़ामणि के घर मंगवाल में बैठे थे। मैं डॉ. चूड़ामणि जी को जानता था और प्रार्थी जी से भी मिल चुका था। इसलिए उनसे मिलने का साहस कर लिया। मैं डॉ. चूड़ामणि के घर हिम्मत करके दुछत्ती पर चढ़कर बैठक में पहुँच गया, जहाँ मंत्रियों के साथ डॉ. परमार भी बैठे थे। दुआ-सलाम के बाद यह मुद्दा गर्म था कि सचमुच पहाड़ी भाषा बनेगी। यह प्रश्न अखबारों का उस समय के कांग्रेस अध्यक्ष सत महाजन, भाषा-संस्कृति मंत्री से हल्के-फुल्के अंदाज़ में पूछ बैठे। मैं भौंचक्का प्रार्थी जी की ओर देख रहा था कि क्या जवाब देंगे। प्रार्थी कुछ बोलते उससे पहले डॉ. परमार का चेहरा तमतमा उठा और महाजन जी पर बरस पड़े—"चले जाओ पंजाब अब भी, हम पहाड़ी भाषा बना रहे हैं क्या? क्या कोई टकसाल है जहाँ भाषा गढ़ी जाती है? जब से पहाड़ हैं तब से पहाड़ी है। जब से हिमाचल है तब से हिमाचली।"

महाजन जी एकदम पैंतरा बदल गए। डॉ. साहब मैं तो आज की अखबारों की खबर

बता रहा था। अपनी हिमाचली भाषा और संस्कृति के प्रति उनका प्रेम अक्सर व्यवहार में झलकता भी था। उसी प्रेम का परिचायक है कि उन्होंने विधानसभा से हिमाचली पहाड़ी भाषा को यहाँ की अधिकारिक भाषा घोषित कराकर प्रस्ताव पारित भी करा लिया था।

डॉ. परमार जानते थे किस समय कैसा व्यवहार करना है। कब बोलना है, कब कहाँ शांत रहना है। एक घटना का उल्लेख करना चाहता हूँ। गेयटी थियेटर में पहाड़ी-हिन्दी कवि सम्मेलन चल रहा था। प्रार्थी जी के साथ डॉ. परमार दर्शक दीर्घा में बैठे थे। मंच पर कवि अपनी-अपनी कविता लेकर हाज़िर थे। हिन्दी महाकवि तुलसीदास की जयंती मनाई जा रही थी। कुछ कवि पढ़ गए कुछ पढ़ने को थे। मैं भी मंच पर मौजूद था। इतने में एक वरिष्ठ कवि पहाड़ी में पढ़ता है—'ओ हुलसी दे पुत्र तुलसुआ, तेरा मुँह केंहू नीं झुलसुआ।' दर्शक दीर्घा से आवाज़ गूँजी—बस करो आगे, मैं मंच पर आता हूँ। अगले क्षण भाषा-संस्कृति मंत्री प्रार्थी जी मंच के माईक से बोले—बेहद अफसोसजनक है मुख्यमंत्री डॉ. परमार और हमारी मौजूदगी में इस तरह की अश्लील, घटिया कविता रखने का दुस्साहस किया गया। मैं हिमाचल सरकार की तरफ से श्रोताओं, साहित्यिक प्रेमियों से मुआफी माँगता हूँ। इस कवि को आगे के लिए बुलाया जाना बंद किया जाता है। डॉ. परमार की मुहर लग चुकी थी। वे दर्शक दीर्घा से मौन स्वीकृति दे चुके थे।

सांस्कृतिक कार्यक्रमों में उन्हें हिमाचली नाटी डालना बेहद पसंद था। अपनी हिमाचली सिरमौरी में बोलते-बतियाते भी थे। 1970 में मैंने अपनी हिमाचली पहाड़ी की कविता पुस्तक 'गीतां री सीर' छापी तो उनसे आशीर्वचन मांगा, वह उन्होंने सिरमौरी में लिख कर भेजा। यह अपनी बोली-भाषा के प्रति डॉ. परमार के अतुल प्रेम का परिचायक ही तो है।

[कीर्ति कुसुम, सरस्वती नगर, डाक. दाड़ी, ज़िला कांगड़ा, हि.प्र.-176057]

मो. 94181 21253

कृषि उपकरणों का निरीक्षण करते हुए डॉ. यशवंत सिंह परमार

लोक संस्कृति के संरक्षक यशवन्त सिंह परमार

❑ विद्यानन्द सरैक

रमणीय स्थल चन्हालग का सिरमौर रियासत में अविस्मरणीय स्थान रहा है। इस गाँव की प्रकृति और संस्कृति का संकेत किसी अनाम लोक साहित्यकार ने लोक शैली के माध्यम से इन पंक्तियों में किया है—

चनालगो रे दोधदे माटी
सिरमौरो रे घुमकुए नाटे जीऊ लुभाओ।

अर्थात चन्हालग गाँव की चमत्कारिक माटी और सिरमौर की नाटी मन लुभावन है। यह बात डॉ. परमार के जीवन पर चरितार्थ होती है। यहाँ के सुरम्य परिवेश में जन्में जसमत (यशवंत सिंह) 'होनहार बिरवान के होत चिकने पात' कहावत को चरितार्थ करते हैं।

यशवंत सिंह ने मुश्किल परिस्थितियों से जूझते हुए शिक्षा, साहित्य और न्याय के निगूढ़ ज्ञान से अपना व्यक्तित्व विकसित किया और स्वतंत्रता आंदोलन में जूझने का जज़्बा पाया। फलस्वरूप, एक निष्पक्ष न्यायविद् के रूप में उनकी पहचान बनी और सियासतदानों ने उनकी इस प्रतिभा को पहचानते हुए सिरमौर रियासत का जज बनाया। डॉ. यशवंत सिंह परमार के पिता ने उन्हें उच्च शिक्षा दिलाने तथा उनके बड़े भाई जगमोहन को लंदन से बैरिस्टरी करवाने के लिए जंगल के व्यापारी दघेडुए कम्पनी से आठ हज़ार रुपये कर्ज़ लिया था। रियासत के जज रहते हुए डॉ. परमार के पास जब पिता के खिलाफ यह आठ हज़ार रुपये के कर्ज़ का मुकद्दमा आया, तो उन्होंने बिना राग-द्वेष नाहन स्थित अपने पिता के मकान की डिक्री कर उसके कागज़ात कम्पनी को सौंप दिए। इस निर्णय से आम जन में डॉ. परमार की न्यायप्रियता की खूब सराहना होने लगी, लेकिन उनकी इस निरंतर लोकप्रियता ने तत्कालीन रियासत के मंत्री को असुरक्षा के भाव से भर दिया, इसलिए उनके खिलाफ झूठा मुकदमा बनाकर उन्हें ज़िला वतन कर दिया, जिसके फलस्वरूप डॉ. यशवंत सिंह परमार लाहौर के समीप मियां मीर की छावनी में ठेकेदारी करने लगे। पझौता आदोलनकारियों के खिलाफ रियासत के दमनकारी कानूनों का भंडा फोड़ वे अखबार के माध्यम से करते रहे। यह न्याय के प्रति डॉ. परमार की निष्ठा और समर्पण का प्रमाण था।

सन् 1954 ई. में जब मैं छठी कक्षा में पढ़ता था, हिमाचल दिवस के अवसर पर सिरमौर का सांस्कृतिक दल हिमाचल धाम में आयोजित कार्यक्रम में आया। उस दल का हिस्सा बनकर मुझे हिमाचल प्रदेश के मुख्यमंत्री डॉ. परमार और उनके गृहमंत्री पद्‌म देव के समक्ष नृत्य करने का सौभाग्य मिला। उनके द्वारा की गयी मुक्तकंठ प्रशंसा ने मुझे भाव-विभोर

कर दिया। लोक संस्कृति के प्रति अनन्य लगाव रखने वाला कोई शख्स ही ऐसा कर सकता था। सन् 1957 में आकाशवाणी शिमला से हिमाचली कलाकारों का एक दल टी.एस. ठाकुर और कत्थक नर्तक शिव प्रसाद के नेतृत्व में अखिल भारतीय लोक नृत्य संगीत सम्मेलन में भाग लेने गया। अपने पिता श्री गणेशा राम के साथ मैं भी उस दल में नर्तक के रूप में शामिल हुआ। आकाशवाणी की ओर से यह विशाल कार्यक्रम सप्रु हॉउस में सम्पन्न हुआ। डॉ. परमार बतौर सांसद इस समारोह के विशिष्ट अतिथि थे। कार्यक्रम सम्पन्न होने के बाद जब हमारा दल मंच से उतर कर डॉ. परमार के पास पहुँचा तो उन्होंने मेरा हाथ डॉ. केसकर के हाथ में रखकर कहा कि यह नन्हा बालक विद्यानंद मेरे प्रदेश की संस्कृति की पहचान बनेगा। लोक कलाकारों का ऐसा सम्मान व आदर लोक संस्कृति के प्रति उनका समर्पण और निष्ठा दर्शाता है।

डॉ परमार को राजनीतिक निर्णय लेने तथा विकट परिस्थितियों से पार पाने के लिए लोक संस्कृति एक सकारात्मक ऊर्जा से भरती रही। एक बार कुसुम्पटी तहसील के गाँव डुब्लू में हाई स्कूल के उद्घाटन के लिए वे सिरमौर के शरगाँव होते हुए आए। डॉ. परमार के आशीर्वाद से वैद्य सूरत सिंह ने पहाड़ी कलाकार संघ हाब्बन की स्थापना की थी। डॉ. परमार इस संघ के मुख्य संरक्षक, वैद्य जी संरक्षक, जय प्रकाश चौहान अध्यक्ष तथा मुझे इसका निदेशक बनाया गया। इस संघ में सिरमौर जनपद के नामी कलाकार थे। कुसुम्पटी क्षेत्र के विधायक शौकिया राम के निमन्त्रण पर हम सभी डुब्लू पहुँचे। रात-भर नाटियों का दौर चलता रहा। डॉ. यशवंत सिंह परमार हमारे साथ रात को 3 बजे तक बैठे रहे। वैद्य जी ने इस अवसर पर उनसे कहा—'डॉ. साहब आप थके-मांदे हैं, आराम कीजिए' तो वे तपाक से बोले—'वैद्य जी, आराम तो इन कलाकारों के सामने मिल रहा है। आप मुझे बिस्तर में खटमल और पिस्सुओं का शिकार बनाना चाहते हैं? यहाँ जो सुकून मिल रहा है, वह भविष्य में कठिन परिस्थितियों से जूझने की हिम्मत देगा।' अगली प्रातः डॉ. परमार घोड़े पर बैठकर चायल के रास्ते शिमला पहुँचे। इसी वर्ष 4 अगस्त को पहाड़ी कलाकार संघ डॉ. परमार के जन्मदिन पर कार्यक्रम प्रस्तुति हेतु शिमला पहुँचा। प्रातः ही वैद्य जी के नेतृत्व में मुख्यमंत्री निवास ओक ओवर के सामने ढोल-ढमाके के साथ नाटी लगी। डॉ. परमार का परिवार इस नृत्य में शामिल हुआ। अपने कर्मचारियों को कलाकारों को चाय पिलाने का आदेश देकर वे वैद्य जी का हाथ पकड़कर शयन कक्ष की ओर ले जाने लगे। साथ ही हेत राम पहाड़िया और मुझे भी उनके साथ उनके कक्ष में मिलने का सौभाग्य मिला। चाय की प्याली ज्यों ही आई, डॉ. परमार ने कहा—'वैद्य जी इन कलाकारों के संग-साथ में सुकून तो मिलता ही है, मुश्किलों से लड़ने की ऊर्जा भी प्राप्त होती है। याद है मैंने डुब्लू में रात के 3 बजे आपसे यही बात कही थी। उस नृत्य को देखने के बाद सुबह शिमला सचिवालय पहुँचते ही मैंने सचिव से डॉ. सालिग राम की फाईल मंगवाई। वे मंत्री जी कुछ रुष्ट कांग्रेसियों के लीडर थे। पिछले कुछ समय से निरंतर मेरी नाक में दम किये हुए थे। मैंने मंत्री महोदय को अपने मंत्रिमण्डल से बर्खास्त कर दिया और चैन की साँस ली। इस निर्णय में मैंने न इंदिरा जी को पूछा और न केंद्रीय मंत्री से बात की। ऐसे मामलों से निपटने की ऊर्जा मुझे ये कलाकार ही देते हैं।'

हमारी कला और संस्कृति महान है। यह किसी शासकीय दबाव में नहीं पलती। घटना 9 दिसम्बर, 1976 की है जब भाषा एवं संस्कृति विभाग ने राजगढ़ में 'झाखों अजबा

पवाड़े' के गाथा गीत पर नाटक की सप्ताह-भर चली कार्यशाला का आयोजन किया। इस नाटक का निर्देशन योगेश गंभीर ने किया था जबकि संवाद और संगीत मेरा था। 9 दिसम्बर को डॉ. परमार ने इस कार्यशाला का उद्घाटन किया। इस घटना के पीछे आपातकाल की दहशत भी प्रेरक बनी। सन् 1976 में मैंने शिक्षा विभाग से त्याग पत्र दे दिया था और पहाड़ी कलाकार संघ की गतिविधियों से जुड़ा। पच्छाद विधानसभा के विधायक हमारी गतिविधियों पर कड़ी नज़र रखे हुए थे तथा वैद्य जी सहित पूरा पहाड़ी कलाकार संघ भी इसकी चपेट में था। परिणामस्वरूप 9 दिसम्बर को सरकारी अफसर कोई भी असैम्बली हॉल में नहीं पहुँचे थे। जब मुख्यमंत्री का काफिला राजगढ़ पहुँचा तब सभी अफसर हड़बड़ाहट में आयोजन स्थल में पहुँच गये। वैद्य जी ने अपने स्वागत भाषण में कहा—'डॉ. साहब, हम कलाकार लोक संस्कृति के लिए काम कर रहे हैं, फिर हमें आपातकाल जैसी स्थिति में क्यों घसीटा जा रहा है?' डॉ. परमार ने अपने अध्यक्षीय भाषण में पुरज़ोर शब्दों में कलाकार की अहमियत की बात करते हुए कहा कि चाहे तानाशाही सरकार हो, क्रूर राजतन्त्र हो अथवा किसी प्रकार का आपातकाल, कलाकारों को हक है कि भ्रष्ट राजनीतिज्ञों, कर्मचारियों, व्यापारियों के कारनामों को अपनी कला के फन और व्यंग्य से सामने लाएँ। कला और कलाकार किसी के बंधन में नहीं हो सकते। निर्भीकता के साथ कलाकारों का समर्थन करना उनका सच्चा कलाप्रेमी तो सिद्ध करता ही है, एक स्वच्छ छवि का राजनेता भी साबित करता है।

सन् 1977 में निर्दलीय प्रत्याशी के रूप में मैं पच्छाद निर्वाचन क्षेत्र का विधानसभा चुनाव 500 वोटों से हारा। नौकरी छोड़कर जो कुछ मेरे पास था, वह चुनाव में व्यय हो गया था। बच्चे छोटे थे, कई तरह की राजनीतिक परेशानियाँ थीं। अचानक किसी कार्य से शिमला आना हुआ। सौभाग्यवश डॉ. परमार मॉल रोड पर मिल गए। यह 1978 की बात है, तब वे प्रदेश की सत्ता छोड़ गए थे। मैंने उन्हें नमन किया और पीछे भीड़ में चलता रहा। लिफ्ट के पास पहुँचने पर भीड़ कुछ छंटी तो डॉ. साहब ने मुझे कहा—'क्या काम कर रहे हो।' मैंने रुंधे गले से उत्तर दिया—'डॉ. साहब, नौकरी छोड़ दी, चुनाव हार गया और अब बच्चे पालने मुश्किल हो गए हैं।' वे बुलंद आवाज़ में बोले—'खराब मौसम के कारण फसल नष्ट हो जाए तो किसान अगले वर्ष अपने खेत में फसल नहीं उगाएगा? सोचो और कर्मपथ पर आगे बढ़ो। अरे, तुम तो कलाकार हो! कलाकार निराश नहीं होता, बल्कि उसकी कला तो असहाय का सहारा है, दुर्बल का बल है, निस्तेज की ऊर्जा है। हमने भी ज़िंदगी में कई उतार-चढ़ाव देखे हैं। तुम्हें निराश नहीं होना है, आगे बढ़ो, आशा और विश्वास आपको मंज़िल पर पहुँचाएगा।'

सख्तीए मुखालिफ से न घबरा ऐ उकाब
ये तो चलती है तुझे ऊँचा उठाने के लिए।

उन्होंने मुझसे कहा—'ऊपर चलो, चाय पियो।' मैंने कहा—'मुझे तो आपका आशीर्वाद चाहिए था, सो मिल गया।' अतः मैं एकलव्य की भांति जीवन-भर उनका ऋणी हूँ।

[गाँव व डाक. देवठी मझगाँव, तह. राजगढ़, ज़िला सिरमौर, हि.प्र.-171226]
मो. 98051 21927

साक्षात्कार

पहाड़ी व्यंजन, पहाड़ी भाषा के पक्षधर डॉ. वाई. एस. परमार

❑ कुश परमार से दिलीप वसिष्ठ की बातचीत

आकारसदृशप्रज्ञः प्रज्ञया सदृशागमः।
आगमः सदृशारम्भः आरम्भसदृशोद्धयः ॥ रघुवंशम् 1/15

अर्थात् अपनी आकार के समान बुद्धिवाले, बुद्धि के समान शास्त्र का अभ्यास करने वाले, शास्त्र सिद्धान्त व शास्त्र वचन के अनुरूप कर्म का प्रारम्भ करने वाले और प्रारम्भ किये हुए कर्म के अनुरूप फलसिद्धि प्राप्त करने वाले रघुवंशियों में ऐसे राजा दिलीप हुए हैं। महाकवि कालिदास का यह श्लोक स्वतः बुद्धि में स्फूर्त हो जाता है, जब हम उस स्वनामधन्य महानायक/जननायक के बारे में जानते या सुनते हैं, जिनका नाम है यशवन्त सिंह परमार। माता-पिता जब अपने पुत्र का नामकरण करते हैं तो वे अच्छे से अच्छा नाम चुनते हैं और उस नाम में कोई विशेषण या आभूषण नहीं जोड़ते हैं। परन्तु उस नाम को सार्थक करना और अपने नाम को डॉ., श्री, माननीय, आदरणीय, महानायक, जननायक आदि विशेषणों से सुशोभित करने में सफल होने में उसके परम पुरुषार्थ का ही परिणाम है। परन्तु हिमाचल निर्माता होना सर्जक होने का स्वप्न है, ऋषि होने का संकल्प है और इस संकल्प को वह बाँका छैल पहाड़िया ही निश्चित रूप से जी सकता था। क्योंकि कारक पुरुष इस धराधाम पर सृजन के अग्रदूत बनकर आते हैं। कालिदास के उपरोक्त श्लोक को अगर हिमाचली में अनुवादित करूँ तो इसका भाव सम्पूर्ण रूप से हिमाचल निर्माता डॉ. यशवन्त सिंह परमार के चरित्र को इंगित करता है।

जैशा बाँका छबीला था सी,
तैशी बाँकी बुद्धि, (आकार सदृशप्रज्ञः)
जैशी बाँकी बुद्धि तेसरी, (प्रज्ञया सदृशागमः)
तैशी विचारो री शुद्धि,
जैशी बाँकी पढ़ाई तेसरी, (आगमैः सदृशारम्भ)
तैशी करणी कराई
जैशी करणी करायी तेसरी (आरम्भ सदृशोदयः)
तैशी फल सिद्धि पायी ॥

उपरोक्त भावाभिव्यंजना मात्र चारणता नहीं है, अपितु हिमाचल निर्माता के सुपुत्र भूतपूर्व विधायक व सौम्य साधु प्रवृत्ति के कुश परमार से किए गए साक्षात्कार के अंशों को पढ़कर आप भी इस सत्यता को स्वीकारेंगे। वर्तमान में सूचना प्रौद्योगिकी व सोशल मीडिया के काल में हम सभी जानकारियाँ इन्टरनेट के माध्यम से प्राप्त कर पा रहे हैं। परन्तु उन्हें इंटरनेट तक पहुँचने में भी उनके साक्षात्कार की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। इस साक्षात्कार में उन तथ्यों को खंगालने का प्रयास कर रहा हूँ, जो किसी रिकॉर्ड में नहीं हैं। अतः सभी तिथियों को दरकिनार करता हुआ, अनछुए पक्षों को आपके समक्ष रखने का प्रयास कर रहा हूँ।

दिलीप वसिष्ठ : अपने पिता के रूप में डॉ. वाई.एस. परमार जी के विषय में पहला भाव जो आपके मन में आता है, उसे आप उनके हिमाचल निर्माता के स्वरूप के साथ कैसे देखते हैं?

कुश परमार : बहुत गम्भीर प्रश्न है आपका। पिता के रूप में देखूँ तो उन्होंने सदैव एक आदर्श पिता का किरदार निभाया है। हम सभी भाई-बहनों को उन्होंने समय की दृष्टि से सम्पूर्ण शिक्षा प्रदान करवाई। सभी के सर्वांगीण विकास के लिए उन्होंने वे सभी कर्त्तव्य निभाये, जो एक पिता के रूप में एक पिता को निभाने चाहिए और यही बात अगर हिमाचल के संदर्भ में देखें तो उन्होंने सदैव एक सशक्त, सुशिक्षित और स्वावलम्बी हिमाचल की संकल्पना को जिया था।

दिलीप वसिष्ठ : आपके उत्तर से प्रतिप्रश्न उत्पन्न होता है, क्या डॉ. परमार जी के चरित्र में परिवार के साथ हिमाचल के मुख्यमंत्री का चरित्र घुल-मिल जाता था?

कुश परमार : (थोड़ा मुस्कुरा कर) यही तो एक बात थी जो उन्हें औरों से पृथक् करती थी। जैसे कि वह मंझे हुए कलाकार हों। वे जब भी परिवार के साथ होते थे तो वह अपने मुख्यमंत्री को कार्यालय में ही छोड़कर आते थे। शाम को दो घण्टे परिवार को अवश्य देते थे। सुबह का नाश्ता, रात का खाना परिवार के ही साथ खाते थे। उसके बाद ही सारी फाइलें देखते थे। उन दिनों हम शिमला में ही रहते थे तो जब भी संभव हुआ तो रविवार को हमारे साथ नालदेहरा जाते थे। वहाँ गोल्फ खेलते थे और सर्दियों में शीतकालीन क्रीड़ा में कुफरी में भाग लेते थे। वहाँ हमारे साथ पूरा समय बिताते थे। उनका जीवन बहुत अनुशासनात्मक था, इसी कारण से वह सभी जगह सही सामंजस्य बिठा सकते थे।

दिलीप वसिष्ठ : एक मुख्यमंत्री के रूप में आप उन्हें किस तरह से जानते हैं?

कुश परमार : मुख्यमंत्री के रूप में यदि याद करें तो उस समय में हिमाचल का नया-नया निर्माण हुआ था। तब लोगों की अपेक्षाएँ और समस्याएँ बहुत अधिक थीं। वे जब भी पीड़ितों की समस्याओं को सुनते थे तो यह महसूस करने का प्रयास करते थे कि यदि इस पीड़ित के स्थान पर मैं स्वयं इस अवस्था में होता तो मुझे कितनी पीड़ा होती। इसलिए वे प्रत्येक पीड़ित की पीड़ा का निदान मूलरूप से कर पाते थे। क्योंकि वे मुख्यमंत्री होने से पहले मैजिस्ट्रेट भी थे तो कानूनी तौर पर क्या निर्णय होना चाहिए और साथ में मानवीयता के आधार पर भी कैसे समस्या का निदान किया जाए, इस पर भी बहुत गम्भीरता से निर्णय ले पाते थे। 'सड़कें हमारी भाग्य की रेखायें हैं' यह उनका ही नारा था। क्योंकि तब सभी जगह सड़कें नहीं थी। तो उन दिनों वे अधिकतम यात्रायें पैदल ही करते थे और अपना घोड़ा सीनियर ऑफिसर को दे देते थे। क्योंकि वे पूरे पहाड़ी थे तो अफसरों की अपेक्षा तेज़ चलते थे, उसके बाद शाम को अधिकारियों के ठहरने के स्थान पर जाकर उनका हाल-चाल भी पूछते थे। वे

जब भी क्षेत्रों का प्रवास करते थे तो एक दिन में 30 से 35 किलोमीटर यात्रा करते ही करते थे। मैं स्वयं एक बार उनके साथ स्पीति से किन्नौर में (काजा से सम्दो) तक की यात्रा पर गया था और भी बहुत-सी यात्राएँ मैंने उनके साथ की हैं। आपके इलाके में हरिपुरधार से भलाड-भलौना, सांगना-स्ताण, मण्डवाच, गत्ताधार, नैणीधार, कोटी बोंछ, रोणहाट, लाणी, जासुई, जरवा-जुनैली, किणु-पनौग, डाहर, वयोंग-टटवा से फिर पीछे हरिपुरधार का पूरा चक्कर तीन-चार दिनों की यात्रा पैदल ही की है। (वे सारे नाम एक साँस में बोल गये। श्री रेणुका जी चुनाव क्षेत्र की अन्य यात्राओं के गाँव के नाम भी यूँ ही क्रमबद्ध रूप से गिनाये) वे जब भी लोगों के बीच होते थे तो सामान्य व्यक्ति की तरह ही लोगों के दुख-सुख में भागीदारी करते थे। ये आप जान सकते हैं कि कितनी ही जनश्रुतियाँ अब उनके बारे में लोगों में हैं।

दिलीप वसिष्ठ : लोगों के बीच होते थे तो भोजन की व्यवस्था कैसे होती थी?

कुश परमार : लोगों के घरों में ही भोजन खाते थे, बिल्कुल घर के सदस्य की तरह। ये तो सभी लोग आपको भी बताते होंगे कि वे सिडकू-घी, खीर-पटांडा, धरोटी-भात, बिलोई (कंजण), यहाँ तक की सत्तु भी खूब खाते थे। मतलब यह कि वह लोगों के बीच पहाड़ी भाषा बोलते थे और पहाड़ी व्यंजन खाते थे।

दिलीप वसिष्ठ : आपने कहा कि उनका जीवन बहुत अनुशासित था इसलिए वे अपने हर काम को समयबद्ध और बिना किसी तनाव के पूरा करते थे। निश्चित रूप से एक तरफ नये-नवेले हिमाचल का निर्माण, दूसरी तरफ परिवार और दुर्गम क्षेत्रों का भ्रमण इन सबको वे कैसे सरलता से कर जाते थे?

कुश परमार : वे वास्तव में कर्मयोगी थे। हमेशा श्रीमद्भगवद्गीता का पाठ किया करते थे। जिससे वह बहुत स्थिर रहते थे और निर्णय भी अच्छे से ले पाते थे। वे स्वतन्त्र अध्ययन भी बहुत अधिक किया करते थे और उस अध्ययन के आधार पर हिमाचल निर्माण की दिशा में चिन्तन किया करते थे। वे समय मिलने पर सचिवालय के पुस्तकालय में घण्टों बैठा करते थे।

दिलीप वसिष्ठ : वे किस तरह का अध्ययन किया करते थे, या कहें कि किस विषय की पुस्तकें अधिकतम पढ़ा करते थे?

कुश परमार : वे कृषि विज्ञान, वानिकी और बागवानी से सम्बन्धित पुस्तकें अधिक पढ़ते थे। उनका यह मानना था कि यदि प्रदेश का किसान समृद्ध हुआ तो प्रदेश भी समृद्ध बनेगा। वे वानिकी, कृषि और बागवानी को एक-दूसरे का पूरक मानते थे, जो कि है भी। वह कहते थे कि किसान को बहुआयामी होना चाहिए। इसके लिए उन्होंने बहुत सारी विदेश यात्राएँ भी कीं। जिससे वे प्रदेश के लिए अमेरिका से उन्नत किस्म के आड़ू, आस्ट्रेलिया से भेड़ और गाय, जर्मनी से भी गाय लेकर आये थे। बागवानी के आधुनिक संस्थान, सब्जी उत्पादन आदि क्षेत्रों में लोगों को सदैव प्रेरित करते रहते थे।

दिलीप वसिष्ठ : आप उन्हें एक आदर्श पिता, आदर्श जननायक और आदर्श व्यक्ति (नागरिक) के रूप में कैसे परिभाषित कर सकते हैं?

कुश परमार : (थोड़ा गम्भीरता से सोचते हुए) बस इसी से समझ सकते हैं कि यह सब कुछ करते हुए भी वे निर्लिप्त रहते थे। अपने राजनैतिक (सत्ता) जीवन से बहुत सहजता से त्यागपत्र दे देना, किसी भी प्रकार का वंशवाद या पुत्रमोह न होना, इसका यही सबसे बड़ा उदाहरण है कि उन्होंने अपने जीते जी अपने किसी भी वंशज को राजनीति में नहीं उतारा

और न ही जनता पर इस बात का कोई दबाव रखा। इस प्रवृत्ति से वह एक आदर्श पिता, आदर्श जननायक और आपने जो पूछा आदर्श व्यक्ति के रूप में सफल रहे हैं।

दिलीप वसिष्ठ : परमार जी के हिमाचल के निर्माण और विकास के स्वप्न को आप कितना साकार होते स्वीकार करते हैं?

कुश परमार : सही में देखें तो बहुत हद तक वह स्वप्न साकार हो चुका है। बिजली, पानी, सड़क, शिक्षा और स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत-सी उपलब्धियाँ हमारे पास हैं। यद्यपि समय के साथ ये चुनौतियाँ बढ़ती रहती हैं, फिर भी इस दिशा में ठीक कार्य हो रहे हैं।

दिलीप वसिष्ठ : महानायक का परिनिर्वाण या यूँ कहें कि जन नायक का निवृत्ति की ओर निकलना भी एक दर्शन पीछे छोड़ जाता है। गाँव में एक दृष्टान्त यह दिया जाता है—जैसे कोई कारीगर घर की छत बनाकर निरपेक्ष भाव से उस पर से उतरकर उसे घर बनवाने वाले को सौंपकर चला जाता है। उसी प्रकार से क्या परमार जी ने भी हिमाचल का निर्माण करवाकर निरपेक्षभाव से नियमित राजनीति से संन्यास ले लिया था?

कुश परमार : वह एक कर्मयोगी थे। उन्होंने जो प्रयास किए थे, संभवतः वे उससे सन्तुष्ट थे। उन्होंने प्रत्यक्ष राजनीति से दूरी बना ली थी। परन्तु अपनी पार्टी के लिए वे कार्य कर रहे थे। मुख्यमंत्री पद से त्यागपत्र के बाद वे चुनाव प्रचार हेतु उत्तर प्रदेश, वर्तमान में उत्तराखण्ड के क्षेत्रों में घूम रहे थे। वहाँ उनकी गाड़ी दुर्घटनाग्रस्त हो गयी थी। उस दुर्घटना के बाद वे ज़्यादा संभल न सके। उसके बाद बहुत लम्बे समय तक अस्वस्थ भी रहे। अंततः 2 मई, 1981 को वे अपने सपने का हिमाचल हमें देकर इस संसार से विदा हो गए।

[ग्राम घाटों, डाक. बड़ग, तह. संगड़ाह, ज़िला सिरमौर, हि.प्र.-173023]

मो. 98057 41711

जनजातीय महिलाओं के साथ डॉ. यशवंत सिंह परमार एवं भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी पारम्परिक वेश-भूषा में

उनका ऊँचा व्यक्तित्व था

❑ **कंवर अजय बहादुर सिंह से अनन्त आलोक की बातचीत**

अनन्त आलोक : कंवर साहब, डॉ. परमार के व्यक्तित्व को लेकर आपका क्या कहना है?

कंवर अजय बहादुर : जी देखिये, मैं सबसे पहले तो ये कहना चाहूँगा कि ऐसा व्यक्तित्व जैसा डॉ. वाई.एस. परमार का था, खासकर के पोलिटीशियंस की बात करूँगा ऐसा व्यक्तित्व मैंने नहीं देखा और मेरे लिए बड़े फख़्र की बात है कि मुझे उनके साथ काम करने का मौका मिला, बेशक मैं यूथ कांग्रेस का मेम्बर था डिस्ट्रिक्ट सिरमौर का और इलेक्टेड मेम्बर था। डॉ. साहब उस वक्त मुख्यमंत्री थे।

अनंत आलोक : सुना है कि डॉ. परमार और राजपरिवार के सम्बन्ध बहुत अच्छे नहीं थे! चूँकि आप भी राजपरिवार से आते हैं, आपके अनुभव कैसे रहे हैं उनके साथ?

कंवर अजय बहादुर : मैं आपको ये बताना चाहता हूँ कि राजनीतिक तौर से राजपरिवार और उनका मदभेद था, उनका यानी डॉ. यशवंत सिंह परिवार का। सिरमौर का राजपरिवार था वह, जिस घराने में मैंने जन्म लिया विचारधाराएँ अलग थीं, हम रजवाड़ाशाही में आते थे और वह प्रजामंडल में सक्रिय थे। मेरे जो नानके थे वह तो अंग्रेज़ों के खिलाफ थे, लेकिन यहाँ जो मेरे पितृपक्ष के लोग थे वे अंग्रेज़ों के साथ थे, जैसे अन्य राजा भी थे। ऐसा होते हुए भी उन्होंने मेरा विरोध नहीं किया, नहीं तो कर सकते थे वह कि कोई और बने मेरे स्थान पर। लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया, बल्कि कोआपरेट किया।

अनन्त आलोक : आपने बताया कि आपको उनके साथ काम करने का मौका मिला, कैसा अनुभव रहा आपका?

कंवर अजय बहादुर : मुझे उनके साथ काम करने का मौका मिला, जब भी फंक्शन हुए। एक बार मैंने उनसे बात की कि हम यहाँ ज़िला कांग्रेस की मीटिंग रखना चाहते हैं आपके साथ, तो उन्होंने कहा बिलकुल आप रखिये मीटिंग। मैंने सोचा कि काफी लोग इकट्ठे हो जाएँगे, क्योंकि मैं भी यहाँ काफी समय से रहता था, मीटिंग हुई और जब डॉ. साहब पहुँचे तो यहाँ कुल मिलाकर दस-पंद्रह लोग पहुँचे। ज़्यादा लोग नहीं पहुँचे, क्योंकि कई जो दूसरे विरोधी लोग थे, होते ही हैं विरोध के भी लोग। वे शायद नहीं चाहते थे और सारे नॉमिनेटेड थे उनके कहे अनुसार। लोकल लीडर्स के कहने के अनुसार हमने सभी को बुलाया था। शिलाई, रेणुका, पच्छाद सब जगह से। ऐसे में यदि डॉ. परमार चाहते तो मुझे निकलवा सकते थे। वह कह सकते थे कि इसकी कोई पैठ नहीं है, कोई पहुँच नहीं है तो इसके स्थान पर दूसरा कोई प्रेसिडेंट बनाया जाए, वैसा नहीं हुआ। उन्होंने कहा कोई बात नहीं, बारिश होने

के कारण या फिर कोई अन्य वजह होगी, आप मेहनत करते रहिये।

उसके बाद लता ठाकुर हिमाचल यूथ कांग्रेस की प्रेसिडेंट बनीं। उन्होंने नाहन का दौरा किया और वह अच्छा रहा तो मुझे हिमाचल यूथ कांग्रेस का वायस प्रेसिडेंट बना दिया गया। फिर एक एक्सिडेंट में उनकी डेथ हो गई। उसके बाद कुछ लोग चाहते थे कि मैं स्टेट प्रेसिडेंट बनूँ, लेकिन कुछ लोग नहीं चाहते थे। संजय गांधी चाहते थे कि मैं बनूँ, अम्बिका सोनी जी भी चाहती थीं। फिर यह बात डॉ. परमार के पास गई और उन्होंने कहा कि अजय बहादुर को कंटिन्यू कीजिये। यहाँ पर डॉ. परमार चाहते तो कह सकते थे कि नहीं ये तो राजपरिवार से है, लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया, जबकि लोग ये बात अभी तक फैलाते हैं कि उनके राजपरिवार के साथ अच्छे सम्बन्ध नहीं थे। जो पहले बुज़ुर्गों के बीच हुआ उसकी बात मैं नहीं कह रहा, लेकिन मेरे साथ कभी भी उन्होंने ये नहीं किया कि मुझे कहीं भी पीछे किया जाए।

अनंत आलोक : क्या डॉ. परमार ईमानदार थे?

कंवर अजय बहादुर : मुझे उनके साथ काम करने का मौका मिला और मैंने देखा कि वह किसी के खुशामदी नहीं थे और ऐसा ओनेस्ट व्यक्ति! वेरी ओनेस्ट मेन। एक खास बात थी उनकी कि सोफिस्टिकेटेड भी थे और गाँव के लोगों के साथ भी मिल जाते थे।

वे क्योंकि सेशन जज थे यहाँ राजदरबार में और उनके भाई महाराजा के ए.डी.सी. थे राजदरबार में। उन्होंने राजदरबार की जो अच्छी बातें थीं, राजघराने की जो अच्छी बातें थीं, अपने आप ग्रहण कीं और जो कोमनर्स की बातें थीं उनको मिश्रित करके एक ऐसा व्यक्तित्व निकला जो कि उभरा हुआ था और बड़ा ऊँचा व्यक्तित्व था उनका।

एक समय आया जब संजय गांधी से उनकी नाराज़गी हो गई। ये तय हो गया कि उनको पद से हटा दिया जाए। कुछ समय बाद ये हुआ भी, उनसे इस्तीफा ले लिया गया।

अनंत आलोक : क्या उस समय इस्तीफा लिया गया, जब वह मुख्यमंत्री थे?

कंवर अजय बहादुर : जब मुख्यमंत्री थे, उनसे इस्तीफा लिया गया और राम लाल जी को मुख्यमंत्री बनाया गया। उन्होंने इस्तीफा दे दिया। तब वह चाहते तो उस समय जो पार्टियाँ थीं जनसंघ या और कोई अन्य पार्टी उनमें जा सकते थे, लेकिन वह नहीं गए। उस समय उनसे मेरी और नज़दीकियाँ हो गईं। उसके बाद जब टिहरी गढ़वाल के इलेक्शन हुए तो वे वहाँ प्रचार करने के लिए गए। क्योंकि पहाड़ी इलाकों में उनकी बहुत अच्छी पैठ थी। उसी दौरान उनका एक्सीडेंट भी हुआ और उनको चोट भी आई।

मुझे अच्छी तरह याद है तब मैं युवा था और मैं अपने फ्रंट गेट पर बैठा हुआ था। आपने देखा होगा जो मेहराब होते हैं वहाँ बैठा हुआ था मैं। मैंने देखा डॉ. परमार आ रहे हैं। वह नए बाज़ार की तरफ से आ रहे थे, और उनके हाथ में थैला था। वह ठाकुर जय सिंह के यहाँ ठहरे हुए थे।

अनंत आलोक : अकेले आ रहे थे?

कंवर अजय बहादुर : अकेले! ये सही बात है कि चढ़ते सूरज को सब सलाम करते हैं। वहाँ से वह आ रहे थे और उनके हाथ में थैला था। लोग विश करते थे, लेकिन कोई भी आदमी ऐसा नहीं था कि उनसे कहे कि इसे मुझे पकड़ाओ आप। और जब वे जाते थे कहीं तो बस में जाते थे। कोई गाड़ी नहीं प्रयोग करते थे और कभी उन्होंने रिग्रेट नहीं किया।

उसके बाद उनकी हालत ज़्यादा खराब हो गई तो वह शिमला में रहने लगे। वहाँ रूट्स में सत्यावती डांग के साथ। वहाँ मैं उनसे अक्सर मिलता था जाकर। तब वे बोल नहीं सकते थे, लिखते थे, कभी-कभी बोल कर बताते थे। मैं कहता था कि डॉ. साहब आपने बड़ी कृपा की तो कहते थे कि—तुम्हारे बारे में बोलते थे, लोग भड़काते थे पर मुझे पता था!

डॉ परमार की जो पहली पत्नी थीं, कुश परमार की माता जी, वह मेरी मदर की कज़िन थी। यूपी से हैं मेरी माँ भी। ये किसी को नहीं पता है और डॉ. परमार की जब शादी हुई तो जो डोला था, वह मेरे पिता जी का डोला इस्तेमाल किया गया था।

अनंत आलोक : यानी पालकी?

कंवर अजय बहादुर : हाँ, जो पालकी पहले इस्तेमाल करते थे। दुल्हन डोली में आती थी और दूल्हा पालकी में जाता था। तो बेशक मतभेद थे, लेकिन लगाव भी था। खासकर माँ की वजह से। मेरी माँ कुश परमार जी के लिए स्वेटर अपने हाथ से बनाती थीं। शायद ही कोई ऐसा फंक्शन होता हो, जब डॉ. परमार और उनका परिवार हमारे यहाँ न आए हों।

डॉ. साहब का मैंने ये भी देखा जो शायद बहुत कम लोगों को पता हो, वालरूम डांसिंग उनको आती थी, अंग्रेज़ी डांस। अपनी पहाड़ी नाटी उनको आती थी। इंग्लिश डांस वो इतना अच्छा करते थे, वोल्टस बगैरह मैंने खुद देखा है और सूट पहनते थे। एक लाउंज सूट होता था पहले। वो पहन करके आते थे पार्टी में। जब लोइया पहन के नाटी लगानी होती थी तो वह भी करते थे। एक तरफ जहाँ अंग्रेज़ी खाना खाते थे, कांटे और नाइफ के साथ, वहीं ज़मीन पर बैठकर बड़े शौक से पटांडे, असकली और सिडकू भी खाते थे। मैं आपको ये भी बता दूँ कि ये बातें हमारे राजदरबार में भी ऐसी ही थीं और ये सब यहाँ इकट्ठे रहे। ही वाज़ अ कॉम्बिनेशन ऑफ रॉयल्टी एंड कॉमन पीपल।

अनंत आलोक : ये कहा जाता है कि उन्होंने विकास नहीं किया!

कंवर अजय बहादुर : उस वक्त पैसा ही कहाँ आता था। आई एम् नॉट एग्री! ही वाज़ अ फादर फिगर, वह पूरे हिमाचल को अपना मानते थे और उन्होंने जो भी किया, हिमाचल के लिए किया। ये मेरे कुछ बेहतरीन अनुभव रहे हैं उनके साथ।

[साहित्यलोक बायरी, डाक. व तह. ददाहू, ज़िला सिरमौर, हि.प्र.-173022]

मो. 94186 33772

आत्मनिर्भर हिमाचल था डॉ. परमार का सपना

❑ आनंद परमार से राजन पुंडीर की बातचीत

हिमाचल निर्माता एवं प्रदेश के पहले मुख्यमंत्री डॉ. वाई.एस. परमार प्रदेश में जितना आधुनिकता लाने के पक्ष में थे, उतने ही वह पहाड़ी भाषा एवं संस्कृति को जीवित रखने के लिए कृत संकल्प थे। यही कारण था कि डॉ. वाई.एस. परमार अपने कार्यकाल के दौरान ग्रामीण क्षेत्रों का दौरा अधिक से अधिक किया करते थे। डॉ. परमार को पहाड़ी संस्कृति तथा पहाड़ी खान-पान से इतना प्यार था कि उन्होंने प्रदेश में पहाड़ी संस्कृति को बचाने के लिए भाषा एवं संस्कृति विभाग बनाया। इसी विभाग के प्रयासों का फल है कि हिमाचल प्रदेश में आज लोक कथाओं, प्राचीन नाटियों को तलाशने, लिखने तथा उनके रिकॉर्ड को पुस्तक के रूप में संजोकर रखने जैसे कई सराहनीय कार्य हो रहे हैं। प्रदेश की लोक संस्कृति को बचाने के लिए रेडियो स्टेशन स्थापित करना तथा प्रदेश की हर भाषा में कार्यक्रम आरंभ करवाना डॉ. परमार की सोच थी। यह कहना है डॉ. परमार के पौत्र आनंद परमार का। सिरमौर ज़िला के नारग वार्ड से जिला परिषद सदस्य एवं कांग्रेस जिला अध्यक्ष आनंद परमार के साथ बातचीत कुछ यों हुई—

राजन पुंडीर : प्रदेश को विकसित करने के लिए डॉ. परमार का क्या नज़रिया था?

आनंद परमार : डॉ. परमार हिमाचल को आत्मनिर्भर बनाने के प्रयास करते रहे। उनकी सोच थी कि हिमाचल का प्रत्येक आदमी प्रदेश में ही सम्पन्न बने। प्रदेश के पानी का सही प्रयोग हो, इसके लिए बांध तथा बिजली परियोजनाएँ बनाने के प्रयास केंद्र सरकार के साथ किए। उन्होंने कई बार विधानसभा में भी यह विचार प्रकट किया कि भले ही केंद्र सरकार उदारता से सहयोग कर रही है, किंतु प्रदेश को अपने पैरों पर खड़े होना चाहिए।

राजन पुंडीर : हिमाचल पहाड़ी प्रदेश है, सड़कों के प्रति डॉ. परमार का विशेष आग्रह था, आप क्या कहते हैं?

आनंद परमार : डॉ. परमार का सपना प्रत्येक गाँव को सड़क सुविधा से जोड़ना था। इसलिए उन्होंने सड़कों को पहाड़ी प्रदेश हिमाचल की भाग्य रेखाएँ कहा था। उन्होंने कहा था कि जब तक सड़कों का निर्माण नहीं होगा, हमारे गाँव विकसित नहीं हो सकते। यूँ भी आप देखें, यहाँ जल परिवहन नहीं था, वायु परिवहन भी नहीं था, रेल परिवहन सीमित था। तो स्वाभाविक रूप से उनका आग्रह सड़कों के लिए था। उनकी दृष्टि में सड़कें केवल आवागमन के लिए ही नहीं, अपितु कृषि, बागवानी और पर्यटन के लिए भी अनिवार्य थीं।

राजन पुंडीर : डॉ वाई.एस. परमार को किस प्रकार का भोजन पसंद था?

आनंद परमार : डॉ. परमार हमेशा ही पहाड़ी व्यंजनों को पसंद किया करते थे। इनमें असकली, पटांडे, लुश्के और धरोटी उनके सबसे पसंदीदा पहाड़ी व्यंजन थे। इसके अतिरिक्त वह सत्तू खाने के शौकीन थे। जिस भी गाँव में जाते, वहाँ पर ग्रामीणों से सत्तू ज़रूर माँग लेते थे। जब भी समय मिलता तो सत्तू खा लिया करते थे।

राजन पुंडीर : डॉ. परमार का किसानों और बागवानों के प्रति क्या नज़रिया था?

आनंद परमार : डॉ. परमार ग्रामीण परिवेश से निकले थे। वह प्रदेश के किसानों तथा बागवानों की ज़रूरत को अच्छी तरह से समझते थे। जिसके लिए उन्होंने हिमाचल में क्षेत्रीय कृषि अनुसंधान केंद्र बनाए। उसके बाद प्रदेश में कृषि, बागवानी एवं उद्यान विश्वविद्यालय स्थापित करने के लिए प्रयास किया। प्रदेश के प्रत्येक ज़िले में किसानों से उनकी गाय और भैंस का दूध खरीदने के लिए दूध अभिशीतन केंद्र बनवाए।

राजन पुंडीर : डॉ. परमार के समय के हिमाचल प्रदेश और अब के राज्य में क्या अंतर आया है?

आनंद परमार : जब हिमाचल प्रदेश बना था तो प्रदेश के पास सीमित साधन थे। बजट का भी अभाव होता था। फिर भी डॉ. परमार ने सीमित साधनों से प्रदेश को आत्मनिर्भर बनाने के लिए प्रयास किया। उनका एक ही उद्देश्य था कि प्रदेश का प्रत्येक व्यक्ति अपने दम पर आत्मनिर्भर बनकर प्रदेश का नाम राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय पटल पर रोशन करे। इसके लिए डॉ. वाई.एस. परमार हिमाचल आने वाले खास अतिथियों को लोइया और डांगरा भेंट किया करते थे। अब की सरकारें भी अपना पूरा ज़ोर लगा रही हैं। हिमाचल रूपी जिस पौधे को रोप, उसे पल्लवित-पुष्पित और फलित होने का स्वप्न देखकर डॉ. परमार ने हिमाचल के विकास के जो प्रयास किए, वह अब प्रदेश के पर्यटन, शिक्षा, स्वास्थ्य, सड़क, परिवहन, विद्युत उत्पादन और औद्योगिक विस्तार के रूप में दिख रहे हैं।

[गाँव टिक्कर, डाक. सराहां, तह. पच्छाद, ज़िला सिरमौर, हि.प्र.-173024]

मो. 98162 08607

जनजातीय क्षेत्र में जनता की समस्याओं का निदान करते हुए डॉ. यशवंत सिंह परमार

विकास के लिए सड़क : डॉ. परमार

❑ **मामराज शर्मा की देवेन्द्र सिंह शास्त्री,** पूर्व ज़िला परिषद सदस्य से बातचीत

मामराज शर्मा : शास्त्री जी, आप सर्वप्रथम परमार जी के संपर्क में कैसे आए एवं उनसे कैसे प्रभावित हुए?

देवेन्द्र सिंह : बचपन में अपने घर में परमार साहब के बारे में काफी सुनता रहा। मेरे पिता जी श्री फुला सिंह सैणधार क्षेत्र के जेलदार थे। जिनके परमार साहब से बहुत घनिष्ठ सम्बंध थे। पिता जी बताया करते थे कि जब सिरमौर रियासत में राजा का शासन था और केन्द्र में अंग्रेज़ों की हुकूमत थी तो उस समय तक डॉ. परमार सेशन जज बन चुके थे। उस समय अंग्रेज़ों के इशारे पर देशभक्तों पर झूठे मुकदमे दर्ज़ किये जाते थे जिन्हें अकसर परमार साहब खारिज कर देते थे और अंग्रेज़ों के हमदर्द शासक वर्ग उनसे इस वजह से चिढ़ा हुआ था। इसी सिरमौर रियासत के रेवेन्यु मिनिस्टर राम गोपाल अब्बी, परमार के खिलाफ राजा के कान भरते थे और एक षड्यन्त्र के तहत उन्हें ज़िला-वतन करवा दिया। इस दौरान परमार साहब भेष बदल कर अपने शुभचिन्तकों के सहयोग से छिप कर रहते थे। इस कालखण्ड में मेरे पिता जी और स्वतन्त्रता प्रेमी अक्सर उनकी मदद करते थे। इसके बाद जब 1947 में आज़ादी मिली और केन्द्र में अन्तरिम सरकार बनी तो परमार साहब और नेहरू जी के बीच घनिष्ठता बढ़ती गई। उस समय केन्द्र से जैलदारों और स्वतंत्रता सेनानियों को पत्र के माध्यम से पूछा गया कि हिमाचल की बागडोर किसे सौंपी जाए। हिमाचल का प्रमुख प्रतिनिधि कौन होना चाहिए तो मेरे पिता जी ने डॉ. परमार का नाम सुझाया था, इस बात को उन्होंने हमेशा याद रखा।

मैंने व्यक्तिगत रूप से उन्हें तब देखा था, जब परमार साहब नारग के समीप शाड़िया स्कूल में आए थे और मैं लाइन तोड़कर उन्हें नमस्ते करने गया था तब उन्होंने मेरे सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया था।

मामराज शर्मा : हिमाचल प्रदेश को अस्तित्व में लाने में परमार जी की भूमिका को आप कैसे आंकते हैं?

देवेन्द्र सिंह शास्त्री : वास्तव में हिमाचल प्रदेश को अस्तित्व में लाने का श्रेय परमार साहब को ही जाता है, इसीलिए उन्हें हिमाचल निर्माता कहा जाता है। 31 रियासतों के पुनर्गठन

से हिमाचल बना। इसमें जहाँ मुख्य भूमिका नेहरू जी और सरदार पटेल जी की थी, वहीं परमार साहब का भी इसमें अतिशय योगदान था। उस समय पंजाब के तत्कालीन मुख्यमंत्री सरदार कैरों सिंह हिमाचल को पंजाब में विलय करने के पक्ष में थे, मगर परमार साहब के प्रयासों के कारण वे इसमें सफल नहीं हुए और अंततः डॉ. परमार हिमाचल प्रदेश को एक अलग राज्य बनाने में सफल रहे।

मामराज शर्मा : परमार साहब के राजनैतिक संघर्ष एवं उनके सार्वजनिक जीवन से जुड़ा कोई संस्मरण जो आप साझा करना चाहते हों?

देवेन्द्र सिंह शास्त्रीः एक बार अपने मुख्यमन्त्री कार्यकाल में वे नारग आए तो उन्हें लेने ज़िला के आला अधिकारी भी आए। उस समय इस क्षेत्र में सड़कें नहीं थीं। कुछ प्रबुद्ध लोगों ने उनके दौरे के लिए घोड़े की व्यवस्था की। मगर परमार जी ने घोड़े पर दौरा करने से मना कर दिया और अफसरों के साथ समूचे क्षेत्र का पैदल ही दौरा किया।

जिस कालखण्ड में वे सत्ता से बाहर थे तब भी उन्होंने राजनैतिक शुचिता को बनाये रखा। उन्होंने कभी भी विपक्ष के लिए अनुचित शब्दावली का प्रयोग नहीं किया। वे सबको साथ लेकर चलने में विश्वास करते थे।

मामराज शर्मा : हिमाचल आज जहाँ खड़ा है उसके उत्कर्ष में आप परमार साहब की भूमिका को कैसे देखते हैं?

देवेन्द्र सिंह शास्त्री : जब हिमाचल अस्तित्व में आया तो लोगों की आर्थिकी बहुत कमजोर थी। सड़कों का सर्वथा अभाव था। तत्कालीन केन्द्र सरकार ने जब परमार जी से उनकी पहली प्राथमिकता पूछी तो उनका जवाब था—सड़क । जब दूसरी प्राथमिकता पूछी तब भी वही जवाब था—सड़क। तीसरी प्राथमिकता पूछे जाने पर भी उनका एक ही जवाब था—सड़क। डॉ. परमार जानते थे कि अगर हिमाचल जैसे पिछड़े और दुर्गम राज्य का विकास करना है तो उसका पर्याय सड़कें ही हो सकती हैं। सब लोग इस बात से भली-भांति परिचित हैं कि परमार साहब ने उस दौर में हिमाचल में सड़कों का जाल बिछाने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी। वे सड़कों को विकास की जीवन रेखाएँ मानते थे। इसके अलावा उन्होंने लोगों की आर्थिक स्थिति को ऊपर उठाने के लिए बागवानी, सेब उगाने और पशुपालन पर बल दिया एवं इस सम्बंध में अनेक प्रकार की योजनाएँ चलाईं।

मामराज शर्मा : हिमाचल प्रदेश की सांस्कृतिक और सामाजिक विरासत को संवारने और संजोने में परमार साहब का क्या योगदान रहा?

देवेन्द्र सिंह शास्त्री : परमार साहब को हिमाचल की लोक संस्कृति, रीति-रिवाज़ों और खान-पान तथा पहनावे से बड़ा लगाव था। जब वे लोगों के बीच जाते तो लोइया और लोक जीवन की पोशाक पहनते थे। पहाड़ी व्यंजनों के वे बहुत शौकीन थे। पहाड़ी लोक गायन एवं लोक नृत्यों की वे कद्र करते थे। वे अक्सर हिमाचल प्रदेश के प्रसिद्ध लोक गीत—'लागा ढोलो दा ढमाका-रे, म्हारा हिमाचलो बड़ा बाँका' को गुनगुनाया करते थे।

मामराज शर्मा : आज के परिप्रेक्ष्य में डॉ. वाई.एस. परमार हिमाचली संदर्भों में कितने प्रासंगिक हैं?

देवेन्द्र सिंह शास्त्री : डॉ. परमार तब भी प्रासंगिक थे और आज भी प्रासंगिक हैं। डॉ. परमार के दृष्टिकोण को पूर्ववर्ती सरकारों ने भी अमल में लाया, चाहे हिमाचल में किसी भी दल की

सरकार उनके बाद रही हो। हिमाचल प्रदेश के सभी प्रमुख राजनेता चाहे शांता कुमार जी हों, चाहे वीरभद्र सिंह जी, चाहे रामलाल ठाकुर, चाहे जयराम ठाकुर, चाहे सुखविन्दर सिंह सुक्खू हों सभी ने भरपूर आदर एवं सम्मान दिया है, जिसके वे सच्चे अर्थों में हकदार हैं। उन्होंने अपने लिए धन-सम्पत्ति का संग्रह नहीं किया। मकान के नाम पर बागथन में उनका एक छोटा-सा घर था। जीवन के आखिरी मौके पर वे आर्थिक रूप से भी पर्याप्त सक्षम नहीं थे।

परमार साहब ने अपना पूरा जीवन हिमाचल प्रदेश की सेवा में अर्पित कर दिया। हर हिमाचल-वासी उनके त्याग और कर्त्तव्य निष्ठा तथा हिमाचल के लिए उनके अतुलनीय योगदान के लिए हमेशा ऋणी रहेगा।

मामराज शर्मा : शास्त्री जी, आपने इतने विस्तार से परमार साहब के बारे में तथा उनके जीवन से जुड़ी बहुत-सी अनुपम यादों को साझा किया, इसके चलते लोग परमार साहब के जीवन के कुछ अनछुए पहलुओं को जान पाएँगे।

[गाँव बागा, डाक. मेंहन्दोबाग, तह. पच्छाद, ज़िला सिरमौर, हि.प्र.-173024]

मो. 82191 51837

शपथ ग्रहण करते हुए डॉ. यशवंत सिंह परमार

पारदर्शिता भरा जीवन

❑ तुलसी राम चौहान से अनिल हारटा की बातचीत

अनिल हारटा : आपको डॉ. परमार बहुत स्नेह देते थे यहाँ तक कि लोग आपको परमार साहब का दत्तक पुत्र भी बुलाया करते थे?

तुलसी राम चौहान : यह तो उनकी महानता थी कि वह मुझे बेटे की तरह मानते थे, दरअसल परमार साहब के साथ जो भी जुड़ता था वह उन्हीं का हो कर रह जाता था यह उनके व्यक्तित्व का आकर्षण था। उस समय हिमाचल बन रहा था और उसके बनने की प्रक्रिया के केन्द्र में परमार साहब थे। हमें एक अच्छे नेता की ज़रूरत थी जो परमार साहब के रूप में प्रदेश को मिला। मैं तो उस समय 15-16 वर्ष का था उनसे मिलकर ऐसा प्रभावित हुआ कि फिर तो उम्र-भर उन्हीं के साथ रहा और उन्होंने भी मुझे एक पिता की तरह ही स्नेह दिया। मैं भी उनको बाबा जी कह कर बुलाता था।

अनिल हारटा : परमार साहब से आप पहली बार कब मिले?

तुलसी राम चौहान : 1947-48 की बात है परमार साहब प्रजामंडल की गतिविधियों/ राजनैतिक कार्य से नौहराधार आए थे। सभी उनसे मिलने गए, मैं भी उन मिलने वालों की भीड़ में शामिल था। उनके व्यक्तित्व का मुझ पर गहरा प्रभाव पड़ा। फिर तो परमार साहब सिरमौर या सोलन में कहीं भी आते मैं वहाँ पहुँच जाया करता था।

अनिल हारटा : परमार साहब का चिंतन बहुत उच्च श्रेणी का था और वे बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्ति थे। उनके व्यक्तित्व की बातें जो आपको ज़्यादा प्रभावित करती हैं?

तुलसी राम चौहान : उनकी ईमानदार सोच, सादगी और पहाड़ों के प्रति उनके प्रेम से बड़ी मिसाल और क्या होगी कि एक प्रदेश का मुखिया जब मुख्यमंत्री की कुर्सी छोड़कर घर आता है तो उनके बैंक खाते में केवल पाँच सौ रुपये थे। उन्होंने राजनैतिक और अपने निजी जीवन में सदा पारदर्शिता बनाये रखी। यहाँ तक कि जब उन्होंने दूसरी शादी सत्यावती डांग से करने की सोची तो यह बात उन्होंने अपने पार्टी कार्यकताओं को पत्र लिखकर उनसे सांझा की। (डॉ. यशवत सिंह परमार का तुलसी राम को लिखा गया अंग्रेज़ी में पत्र दिखाते हैं)। उनको यह चिंता रहती थी कि कहीं हमारा हिमाचल पंजाब वाले न मिला लें अपने साथ।

अनिल हारटा : परमार साहब के जीवन के अंतिम वर्षों को आप कैसे याद करते हैं?

तुलसी राम चौहान : जब उन्होंने मुख्यमंत्री का पद त्याग दिया तब भी वह कांग्रेस पार्टी के लिये काम करते रहते थे। एक बार शायद 1977 के लोक सभा चुनाव में उनकी ड्यूटी उत्तर प्रदेश में लगी थी। वो बताते थे कि मुझे उत्तर प्रदेश का काफी कठिन क्षेत्र मिला, जहाँ सड़कें भी नहीं थीं या जो थीं वो खराब हालत में थीं। मुझे गाड़ी और ड्राईवर दिया गया। गाड़ी का एक्सीडेंट हो गया और मेरे सिर पर गंभीर चोट आई। परमार साहब के सिर पर वो चोट ऐसी लगी कि फिर वो स्वस्थ नहीं हो पाए।

वक्तव्य

डॉ. परमार : पहाड़ी राज्य का नेतृत्व

हिमाचल प्रदेश विधानसभा प्रथम जुलाई, 1963 को गठित हुई थी। डॉ. वाई.एस. परमार सदन में अपनी विशिष्ट शैली के लिए जाने जाते थे जिसमें बहुधा उर्दू व फारसी के शब्दों का प्रयोग एक पहाड़ी पुट के साथ रहता था। परमार साहब मर्यादित भाषा का प्रयोग सदन में स्वयं भी करते थे और सभी से ऐसी आशा रखते थे। सदन में शोरगुल व चीखने-चिल्लाने वाली भाषा को वह कतई स्वीकार नहीं करते थे, बल्कि इसका विरोध करते थे। 16 मार्च, 1964 को सदन में दिये गए वक्तव्य का अंश–

अध्यक्ष महोदय, मैं इस माननीय सदन के सदस्यों का धन्यवाद करता हूँ जिस तरह उन्होंने सरकार की नीति का समर्थन किया और जो कुछ कदम इस थोड़े से अरसे में हासिल किये हैं उसकी कद्र की। इस बात को मैं भूल जाना चाहता हूँ कि मेरे फाज़िल दोस्त जो उस तरफ बैठे हैं जहाँ एक तरफ उन से पहले मुनासिब कद्र मिली है सरकार को और सब को, अबकी बार उनकी नज़र महज़ उन त्रुटियों की तरफ हो गई है जिनकी तरफ उनका ध्यान जाता रहता है और जो बुनियादी बातें हैं और बड़े मसले हैं और जिनको हौसले और दिलेरी के साथ, विचार के साथ सरकार ने अपने हाथ में लिया है उनको वह न महज़ नज़रअन्दाज़ कर गये बल्कि उन के बारे में ऐसे विचार रखे जिनकी में उन से उम्मीद नहीं करता हूँ। बहरहाल मुमकिन है कि वह शायद उन की अहमियत को नहीं समझ सके हों या सोचने की तकलीफ न की हो। उन कामों का इस प्रदेश के भविष्य के लिए और इस प्रदेश के तबके के लिए बहुत महत्त्व है, हम सब लोगों को उसकी चिन्ता है।

मेरे नज़दीक अध्यक्ष महोदय, जो संशोधन मेरे फाज़िल दोस्त ने रखे हैं वह मैं समझता हूँ महज़ सरकार का ध्यान दिलाने की नीयत से किये हैं और न तो उनकी नीयत है इस माननीय सदन से कि वह ठीक तरह से उन पर जोर दें क्योंकि मेरे फाज़िल दोस्त ने अध्यक्ष महोदय, आप से पूछा था कि क्या इस पर वोट होगी। वह इसे ज़रूरी समझते थे कि सरकार का ध्यान दिलाना था और दिला भी दिया और मैं तो यह सोचता हूँ कि हमारे दोस्त इधर हों या उस तरफ, उनका यह बुनियादी हक है और हक ही नहीं यह तो गणतंत्र का तकाज़ा है कि जो सुझाव सरकार की बेहतरी के लिए मुनासिब समझें हमारे काबिल दोस्त वे उन्हें माननीय सदन के द्वारा सरकार के विचार के लिए ज़रूर लावें। हालाँकि उसकी सीधी ज़िम्मेदारी उस पार्टी पर होती है जो हकूमत को सम्भालती है। हकूमत की सारी ज़िम्मेदारी इस माननीय सदन पर है और उसमें हरेक मैम्बर की राय उसके चलाने में काबिलेतारीफ है, सोचने वाली है, सोचने के काबिल है और उसके मुताबिक अपनी नीति को सरकार के चलाने में सरकार की इज्ज़त ही बढ़ती है और जो बड़ा मकसद है हम सब के सामने उसकी सफलता

होती है। मेरे फाज़िल दोस्त, बड़े तजुर्बेकार हैं, राजनीति में भी और शासन में भी, उन्होंने कुछ ऐसी बात कही जिससे कि मैं नहीं समझता कि उनका किस बात की तरफ इशारा है क्या इशारा है? मुझको अफसोस है जहाँ उन्होंने फरमाया कि मुख्यमंत्री जी ने कहा है कि मैम्बर लोग यहाँ हाऊस में चिल्लाते हैं और उन्हें नहीं चिल्लाना चाहिए और चिल्लाना छोड़ दें।

मेरे दिल में माननीय सदस्यों की इस सदन में इतनी इज्ज़त है कि इस तरह की बात कोई नहीं हो सकती। मैं फाज़िल दोस्त से कहूँ कि मेरे दिल में इस तरह की कोई भावना नहीं है। अगर सरकार की नीति की तरफ ध्यान दिलाया जाता है वह ठीक नहीं चलती है तो यह एतराज़ करना है, चिल्लाना नहीं यह बात मेरे दिमाग में साफ है। मैं सब मेम्बरों का हक समझता हूँ कि वह सुझाव यहाँ पर दें। मेरे नज़दीक कभी यह विचार नहीं है किसी तरफ से भी चाहे वह इधर का बैठने वाला हो या उधर का बैठने वाला हो—दोनों पक्षों की ओर से एक ही नीयत रहती है और वह इस प्रदेश की तरक्की कैसे हो। माननीय सदस्य यहाँ पर नहीं हैं जिन्होंने यह बात कही थी। मैं वैसे यह बात यहाँ पर कहना नहीं चाहता था। मैं उनको बता देना चाहता था कि उनका यह ख्याल गलत है। न तो मैं कुछ कहता हूँ, मैम्बर साहबान से कि कोई सटीक टिप्पणी न करें, एतराज न करें और न ही मैं कहता हूँ कि मत चिल्लाओ। मुझे अफसोस हुआ यह सुनकर कि इस तरह की बात हो सकती है। यह माननीय सदन इसलिए है—जनता ने आप लोगों को इसलिए यहाँ भेजा है कि जो कुछ खराबियाँ नज़र आयें, जो सुझाव आप समझें, इस हकूमत को चलाने के लिए ज़रूरी हैं, बड़े हौसले के साथ बगैर किसी झिझक के इस माननीय सदन में रखें। कोई मुकाबला नहीं होना चाहिए।

पार्टी के लिहाज़ से बातचीत नहीं होनी चाहिए। वह तो बाहर की बात है। मुझे अफसोस है कि ऐसी बात आई परन्तु इसके साथ-साथ यह भी कहा गया कि अभी मन्त्रीमण्डल नया-नया है और सहनशीलता से काम लिया गया है, बहुत अच्छी बात है, सहनशीलता होनी चाहिए और खासतौर से विचारों की सहनशीलता होनी चाहिए बगैर हिंसा के। मेरे नज़दीक अहिंसा न सिर्फ माँस नहीं खाने से, अंडा न खाने से, जीव को न मारने से है बल्कि मैं तो समझता हूँ कि जो शब्द कहे जायें और जिनसे किसी के मन को ठेस लगे, दुख पहुँचे वह भी हिंसा है। मेरे नज़दीक वह बहुत बड़ी हिंसा है। इसलिए मुझे अफसोस है कि अहिंसा की बात करते हैं और हिंसा करते हैं। हम जितना कुछ मुमकिन हो सके, जो मौका इस माननीय सदन के ज़रिये से अपने प्रदेश और समाज सेवा करने का हम सब लोगों को मिला है उसको हम ठीक तरह से इस्तेमाल करके इस प्रदेश को आगे पहुँचा सकें और दूसरे राज्यों के मुकाबले में खड़ा कर सकें जिसके लिए मेरे फाज़िल दोस्त ने बड़े जज़्बात के साथ बात कही और उस में हम सब शामिल हैं, कोई इंकार नहीं कर सकता है उससे।

केन्द्र द्वारा हुकम सिंह संसदीय समिति की सिफारिशें जिससे भाषायी आधार पर विशाल हिमाचल बनने का रास्ता साफ हुआ पर विधानसभा में परमार का महत्त्वपूर्ण वक्तव्य :

माननीय अध्यक्ष, आपकी इजाज़त प्रस्ताव को इस सदन में पेश करता हूँ। पहले में हिन्दी में रख लेता हूँ क्योंकि कुछ माननीय सदस्यों को आपत्ति रहती है, फिर अंग्रेज़ी में रखूँगा।

"यह सदन, हुकम सिंह संसदीय समिति के प्रतिवेदन की सराहना करता है जिस में की गई सिफारिश को भारत सरकार ने औचित्य रूप में, साहसिक तथा सामयिक निर्णय लिया है। इस निर्णय द्वारा जिस में लोगों की भावनाओं को ध्यान में रखते हुए धर्म निरपेक्षता से भाषाई आधार पर पंजाबी सूबा बना कर आज की सब से जटिल समस्या हल की है। यह एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक निर्णय है क्योंकि इस के द्वारा हमारे पहाड़ी क्षेत्र जहाँ पंजाबी नहीं बोली जाती, इन को एक सूत्र में विशाल हिमाचल प्रदेश के रूप में मिला कर एकत्रित हुए हैं। हम, प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी के नेतृत्व में भारत सरकार के आभारी हैं। इस विषय में यह प्रशंसनीय है कि पंजाब में स्थिति सामान्य हो गई है। जबकि हमारी प्रधानमंत्री एक उल्लेखनीय कार्य सम्पन्न करके अमेरिका के दौरे पर जा रही हैं, हमें विश्वास है कि वे अपने कार्य में सफलता प्राप्त करेंगी।"

"This House places on record its sense of high appreciation and gratitude for the bold and timely decision taken by the Union Government, by accepting in principle the Report of the Hukam Singh Parliamentary Committee, that bids fair to go down as a historic land mark in the history of this country by resolving a most vexed question of the formation of the Punjabi Suba on a purely secular and linguistic basis and thereby meeting the aspirations of the largest number of people residing in this area. As our hill people will thus be able to form an integrated Himachal Pradesh with the inclusion of the Districts of Kangra, Kulu, Lahuhal, Spiti and Simla and other non-Punjabi speaking hilly areas, we cannot be but grateful to the Central Government led by our esteemed Prime Minister, Shrimati Indira Gandhi, for fulfilling our long cherished aspirations. To our great relief and satisfaction a saner sense has prevailed in Punjab and the situation is being restored to normalcy. On the eve of our Prime Minsiter's visit to the United States and other countries with this feather of achievement in her cap, we hope and trust, that she will be heartened to strive and will succeed in her goodwill mission abroad."

अध्यक्ष महोदय, कल भी इस माननीय सदन में ज़िक्र हुआ था हुक्म सिंह कमेटी की रिपोर्ट का और जो इसके तास्सरात हैं और जो चीज़ें हैं, जो मामले महत्त्वपूर्ण हैं उस रिपोर्ट के अन्दर हैं और जिन पर उन्होंने अपना निर्णय दिया है। शमाली हिन्दुस्तान में एक अर्सा से परेशानी रही है तीन अलग-अलग इलाकों में, मगर हालात की मजबूरी है और उसमें जो साम्प्रदायिक विचारधारा चली उसकी वजह से वे समस्यायें हल नहीं हुई और इसके लिए सब देखते रहे कि तरह-तरह के झगड़े, झगड़े के बाद आन्दोलन उसके मुकाबले में दूसरा आंदोलन, उलटा आन्दोलन, सत्याग्रह आदि बराबर होते रहे। सैकड़ों और हज़ारों लोग जेलों में जाते रहे, आन्दोलन शुरू हुए, वे दबाए गये, मगर फैसला न होने की वजह से जहाँ काफी दबदबा रहा। हर बार किसी न किसी रूप में, नये रूप में खड़ा हो गया। पुनर्गठन के सम्बन्ध में, जब भारत का पुनर्गठन दोबारा हुआ तो यह विचार था कि शायद मामला ठीक ढंग से, लोगों की ख्वाहिशात के मुताबिक तय होगा, मगर इस माननीय सदन के फाज़िल दोस्तों को मालूम है

कि उस वक्त बजाय वह तय होने के, उसने ऐसी उलझनें पैदा कीं और परेशानी खास तौर पर पहाड़ के लोगों से नई मुसीबत का सामना करना पड़ा और यह मालूम होता था कि यह पहाड़, जिन्होंने कुछ रोशनी देखी थी, जिन्होंने कुछ ज़िन्दगी देखी थी, वह दोबारा बिल्कुल अंधेरे में जा रहे हैं और उसके फलस्वरूप यहाँ का जो ढाँचा बदला, यहाँ की एसेम्बली टूटी और एक नाउम्मीदों की लहर सारे प्रदेश के लोगों के दिलों में खटकती रही, मगर हम मशकूर हैं कि बावजूद उस कदम के जिसने यहाँ की तरक्की को रोका, खास कर यहाँ के गणतंत्र सम्बन्धी, फिर से मौका मिला हम दोनों स्वर्गीय प्रधानमंत्रियों पंडित जवाहर लाल नेहरू और श्री लाल बहादुर शास्त्री जी के, जिन्होंने बड़ी हिम्मत से दोबारा यहाँ एसेम्बली देने का प्रयत्न किया, हौसला किया और फिर से इस प्रदेश में जो काम जिस जगह छोड़ा था, उसको सम्भाला। अभी कुछ अर्सा से प्रदेश की जो माँग भाषाई आधार पर थी, मगर जो केवल भाषाई आधार पर न रहते हुए, जिसकी वजह से दूसरे विचार और दूसरी बाद में उलझनें पैदा हुई वह एक काफी परेशानी पैदा करने वाली स्थिति हमारे पड़ोसी प्रदेश पंजाब में पैदा की और ऐसा मालूम होता था एक क्लास की वजह से या दूसरी की वजह से पंजाब में वही भारी गड़बड़ होने वाली है, बदअमनी होने वाली है और न जाने कैसी स्थिति हो, यह मुसीबत इसके लिए और मुल्क के लिए और परेशानी हो, तो यह सब होने वाला था, यहाँ लड़ाई शुरू हो गई। हमारे पड़ोसी मुल्क के साथ और उसने एक और मौका दिया मुल्क के लोगों को, आज खास तौर पर माईनोरेटीज़ को अपना सहयोग सरकार के द्वारा प्रकट करने का, अपने विचारों के उत्पन्न करने को कहा।

नई भावना पैदा कर देने का कि भले ही यहाँ नाना प्रकार के लोग रहते हैं, अलग-अलग, भिन्न-भिन्न मतों के, उनमें जहाँ तक उनकी सेवा का सवाल है वह कौमी जज़्बा मौजूद है और कोई चीज़ एक से दूसरे को अलग नहीं कर सकती जितनी कृपा उन्होंने दी कि जो बड़े-बड़े मत के लोग हैं उसमें जो बहुत छोटी संख्या के लोग हैं उनका एक उचित दर्जा है और सब जानने वाले लोगों में जो कुछ भ्रम में भी थे उनकी यह बात ज़ाहिर हुई कि इस मुल्क में बावजूद इसके कि कभी-कभी हम छोटे-छोटे झगड़ों में फंस जाते हैं, बुनियादी तौर पर सैक्युलेरिज़्म की जड़ें पक्की हो गईं, गणतन्त्र पक्का हो गया और किसी भी मुसीबत के वक्त बिना बात के कि किस मज़हब के लिए किस दल से ताल्लुक रखते हैं, किस पार्टी से इनका जोड़ है या कोई जब मुल्क पर मुसीबत आएगी, हम सब लोग इकट्ठे होंगे और एक जान होकर मुसीबत का सामना करेंगे। मैं समझता हूँ एक बड़ी भारी खिदमत मुल्क की हुई और इसलिए इन सब बातों का ख्याल रखते हुए एक ऐसा जज़्बा पैदा करने के लिए कि जिससे हमारा जो हिस्सा खास तौर पर सीमा पर है उनके लिए एक तसल्ली रहे एक एलान किया गया भारत सरकार की तरफ से कि पंजाबी सूबे का प्रश्न है, जो बिल्कुल बन्द कर दिया गया एक बार और कोशिश यह थी कि दुबारा न खुले, उस पर गौर किया जाएगा और ये मुनासिब कदम है वह उठाया जाएगा। चुनांचे उसके लिए कमेटियाँ बनीं, एक कमेटी पार्लियामेंट के मेम्बरों की बनी, एक कमेटी केबीनेट के मेम्बरों की बनी, उन्होंने शहादत लीं, पार्लियामेंट कमेटी ने उन सब लोगों से जिन्होंने मैमोरेंडम पेश किए और जिन्होंने मुनासिब समझा उनके सामने पेश हुए और अपनी रिपोर्ट पेश की।

कांग्रेस कार्यकारिणी कमेटी ने भी मामले को अपने हाथ में लिया इसलिए कि वह

एक नेतृत्व कर सके पार्टी का और अपनी सरकार का क्योंकि जब सरकारें पार्टी के आधार पर बनें तो उसके लिए सब से बड़ी संस्था है वह इसके बारे न सोचें और मुनासिब हिदायतें न दें कि क्या करना चाहिए तो वह पार्टी की सरकार पार्टी के आधार पर नहीं चलती और इसलिए हमारे माननीय प्रधानमंत्री ने पार्लियामेंट के अन्दर बयान दिया कि बेशक वर्किंग कमेटी ने यह सुझाव दिया है कि भाषाई आधार पर इसको बंट जाना चाहिए सरकार ने इसमें फैसला नहीं किया मगर यह बात ज़ाहिर है कि वर्किंग कमेटी का फैसला हो चाहे किसी भी वर्किंग कमेटी का फैसला हो उस पार्टी के लिए मेम्बरों के लिए, यह मान्य होता है और वह उससे बाहर जा नहीं सकते। मगर रस्मी ढंग से अभी तक उस पर फैसला होने को था इतने में हुक्म सिंह कमेटी ने अपनी रिपोर्ट पेश की और उस रिपोर्ट ने बड़ी संजीदगी के साथ सब मसले ध्यान में रखते हुए सब लोग जो उनके सामने आए उनके मैमोरेन्डम और उनकी शहादत पर गौर करते हुए अपने सुझाव साफ अलफाज़ में रखे। इस लिए एक तरफ एक यह पंजाबी सूबा पंजाबी भाषा वाले लोग हैं, उनका प्रदेश हो हरियाणा जहाँ हिन्दी बोली जाती है उनका अपना प्रदेश हो और जो पहाड़ी हिस्से हैं वे हिमाचल प्रदेश के साथ उनको शामिल किया जाए।

मैं सोचता हूँ कि जहाँ बहुत खिदमत और बहुत मदद इस मुल्क की हमारी सरकार ने और कांग्रेस ने और दीगर भी नेताओं ने या साथियों ने की है हम सब उससे पूरी तरह वाकिफ हैं, परिचित हैं। मगर जिस तरह की मदद एक तरफ हमारी कांग्रेस कार्यकारिणी कमेटी और उसके अध्यक्ष श्री कामराज ने की है और दूसरी तरफ हुक्म सिंह कमेटी ने जिस तरह से यह आवश्यक मसला आज सरकार के सामने रखा जो पार्लियामेंट के सामने भी है उससे हिमाचल प्रदेश के लोगों के दिल में ही नहीं इन पहाड़ों में रहने वाले लोगों के दिल में तसल्ली हुई है और कुदरती तौर पर यह खुशी हुई है उसकी मिसाल इस इलाके में मिलनी मुकिश्ल है क्योंकि एक बात बराबर परेशान किए रहती है पहाड़ के लोगों को जो काफी मुश्किलात में रहते हैं ज्योग्राफियाई हालात की वजह से रिसोरसीज़ न होने से मौसम भी अजीब तरह का रहता है सर्दी-बर्फ़ की परेशानी से उनकी गिनती बहुत कम होती थी, मुश्किलात की वजह से आबादी बहुत कम होती है पहाड़ और जंगल ज़्यादा, इन्सान कम और गणतंत्री की एक तो समस्या बराबर रहती है थोड़ी गिनती के लोगों को वह यह कि गणतंत्री मानता है मत से, जितने ज़्यादा मत हों उतनी ज़्यादा ताकत और इसलिए जब उस तरफ की बात होती है उसमें जो छोटी गिनती के लोग हैं, उनकी बात जरा कम चलती है और हम लोग तो बदकिस्मती से पहाड़ों में न महज़ गिनती के लिहाज़ से पीछे रहे हैं और दूसरे साधन न होने की वजह से भी जो योग्यता प्राप्त होनी चाहिए, जो साधन होने चाहिए थे मनुष्य को मनुष्य बनाने के लिए और हर तरह से हर विषय में पूरी तरह योग्यता जानकारी और विशेष विशेषज्ञ होने की योग्यता, इनसे लोग मजबूर रहे और उनका असर सारे समाज के ऊपर पड़ा, लाज़मी तौर पर उनके भविष्य के ऊपर पड़ा, जिनका गहरा ताल्लुक उनकी ज़िन्दगी से है।

आज हमको यह जो फैसला हुआ उसके ज़रिए नई ज़िन्दगी, एक नया जीवन पहाड़ के लोगों का शुरू हुआ है और जिन लोगों को महज़ एक इन्तज़ाम और लिहाज़ा मजबूरी की वजह से कितनी हकूमतें आईं, किस तरह से आईं उनके ज़रिए से इनकी वजह से एक-दूसरे

को अलग किया गया और इकट्ठा होने का मौका नहीं मिला जहाँ वे साथ बैठ कर अपने मामलात को सोचें, उनके लिए हल निकालें और अपने लोगों की और अपने तरीके की हकूमत का इंतज़ाम कर सकें वह मौका हमें इस फैसले के ज़रिए पहाड़ी लोगों को मिलता है न महज़ हिमाचल प्रदेश के अन्दर बल्कि कांगड़ा, कुल्लू, शिमला आदि जितने ज़िले हैं जहाँ भी इन इलाकों में खास तौर पर इस तरह इस स्तर में रहने वाले लोग हैं उनके अन्दर एक दिन में एक नया जो एक नई खुशी आज पाई जाती है। कुदरती तौर पर हमारा मन बराबर जाता है इस सिलसिले में हमारी उन्नति की तरफ। वर्किंग कमेटी, पार्लियामेंटरी कमेटी हमारी यूनियन कैबिनेट, हमारे प्रधानमंत्री खासतौर पर जैसा मैंने इस माननीय सदन में कल भी बात रखी कि इन सब का ध्यान हमारी तरफ रहता है ताकि हमारी तरक्की हो लोग खुशहाल हों और अपने पाँव पर खड़े हों क्योंकि किन्हीं वजहों से यह इलाका पीछे रहा है और दूसरे खास तौर पर हम जब इस सीमा पर रहते हैं सीमा का इन्तज़ाम करना होता है। सीमा की हर समस्या से हमारा गहरा ताल्लुक है इसलिए और भी लाज़मी है कि यहाँ के लोगों के मन में बराबर किसी तरह, वे चाहे हिमाचल के हों या पंजाब के हों, कोई इस तरह का ख्याल न रहे कि उनके साथ बराबरी का सलूक नहीं होता, उनके ऊपर भरोसा नहीं किया जाता, उनको मौका नहीं दिया जाता और यह उम्मीद नहीं की जाती कि वे मुल्क के हितों का ख्याल रखते हुए अपनी-अपनी भाषा और संस्कृति के आधार पर अपने प्रदेश को चलायें, अपने प्रदेश में खुशहाली लाएँ और मुल्क को मजबूत बनाने और मुल्क की सीमाओं की पूरी तरह से रक्षा करने को हर तरह से तैयार हों।

मैं समझता हूँ इस फैसले से यह मौका उनको मिलता है और इसका जवाब वहाँ के रहने वाले लोग आज भी दें और आइन्दा भी बराबर देंगे और अभी भी उन्होंने दिया है इस लड़ाई में और कोई भी मौका हो, चट्टान की तरह न मज़हज हमारे पहाड़ हैं बल्कि यहाँ के रहने वाले जो लोग हैं वे भी चट्टान हैं और वे किसी भी दुश्मन का मुकाबला करने के लिए तैयार होंगे इस तरह का मेरा विचार है और यह भावना बराबर और सारी तस्वीर बराबर लोगों के मन में रहती है। तो इस माननीय सदन का कुदरती तौर पर यह फर्ज-सा हो जाता है कि हम अपने ख्यालात और जो अपने मन में विचार हैं उसके बारे में सोचें और अपना शुक्रिया भारत सरकार के प्रति और खास तौर पर अपने प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी के प्रति ज़ाहिर करें और इस बात की तसल्ली उनको भी रहे कि इससे जो एक बुनियादी ढाँचा है गणतंत्र में वह मज़बूत होता है और हिमाचल प्रदेश के लोग जहाँ अपने प्रदेश की तरक्की में जो हमारे साथ आने वाले हैं उन लोगों को भी साथ मिल कर, इंसाफ के साथ, हमने इस प्रदेश को बनाना है ताकि हम इन सब लोगों को ऊपर उठा सकें और पूरी तरह से इस प्रदेश में रहने वाले लोगों का सहयोग हासिल कर सकें और उन को खुशहाल कर सकें जिसके लिए हमें यह सब चीज़ मिली है और मुश्किल मिल रही है और जो रुकावट है या निकल सकती है मैं जानता हूँ कि भारत सरकार की तरफ से जो मुनासिब कदम होंगे वे जरूर उठाए जायेंगे। इन चन्द शब्दों के साथ अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव माननीय सदन के सामने पेश करता हूँ तथा गुजारिश करता हूँ कि सर्वसम्मति से इसको पास किया जाए।

'सदन के नेता', हिमाचल प्रदेश विधानसभा से साभार (22.3.1966)

तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा पूर्ण राज्य के दर्जे की मांग को स्वीकार करने पर डॉ. परमार द्वारा विधानसभा में रखा गया प्रस्ताव :

Mr. Speaker, Sir, The Resolution I have the honour to place before the House is as under: -

"That this House offers its grateful thanks to the Prime Minister, Shrimati Indira Gandhi, for meeting the long and cherished demand of the people of Himachal Pradesh for its admission as a full-fledged State of the Indian Union. It urges that all necessary steps be taken immediately so that the promised Bill for Statehood is introduced and passed in the early part of the ensuing winter Session.

This House is aware of not only the good wishes but active support of all sections of the House in Lok Sabha and Rajya Sabha and expresses its thankfulness to them and to all those who supported this demand.

It also welcomes the decision of the Union Government for the grant of Statehood to Manipur and Tripura and sends its congratulations and good wishes to the people and the Governments of Manipur and Tripura."

There is no doubt in my mind that the whole House, in fact the whole Pradesh, joins me in offering our grateful thanks to our dynamic Prime Minister for meeting the very long-standing and earnest demand of Himachal Pradesh being admitted as a full-fledged State of the Indian Union. We are naturally grateful to the members of her Council of Ministers also and the members of both the Houses of Parliament and those outside the legislatures who supported our demand and we have no doubt that we shall continue to get their help in the passage of the Bill when it is introduced in the winter Session of Parliament. The contribution of our own members of Parliament and Members of Negotiating Committee and of Assembly from all sections of the House is no less. It is our good fortune and honour to congratulate the people of these hills on this great achievement and to wish them progress and prosperity. Our good wishes and congratulations go to the people and Governments of Manipur and Tripura for the decision to grant State-

hood to them also.

Certain sections have been surprised, if not bewildered, by these decisions; for they call them political and not based on merits. Others dislike the formation of small States which will never be viable and will weaken the country. Such prophets of doom have been proved to be false in the past and shall be dismayed again also because they cannot read the signs and changes of the times nor the solutions of the ever increasing difficult problems of our developing country.

The Prime Minister has for once been able to tell the people of the country that agitations, violence, bloodshed, destruction of property and gheraos are not effective means of fulfilment of public demands but that patient and peaceful efforts can achieve seemingly impossible results.

We, in Himachal Pradesh, were being advised by some very knowledgeable persons that the Union Government will never listen merely to reason and we shall not be able to achieve our objective unless we take to agitation and violence. I am glad we did not listen to that but followed our own systematic peaceful efforts for the achievement of our objective. We have no reason to be sorry. In fact, we are glad we did it and have been able is bring credit both to our Pradesh and our Leadership.

The danger of too many States need scarcely disturb any one for it is no secret that there are not only very small States, much smaller than Himachal Pradesh but that in U.S.A. there were only 13 States to start with and the rest were only Union Territories and today they have 53 States giving not only a feeling of pride and, achievement but strengthening and consolidating the Federal Government there.

It is also said in some quarters that the Himachalies did not have to make any sacrifice, they just passed one resolution in the Assembly and got Statehood. That again shows complete lack of Knowledge of a sustained, peaceful and well thought out line of action laid as late as January, 1948 and it is thus the result of a continuous effort of nearly 22 years behind which was the great desire, co-operation and struggle of the people of Himachal Pradesh.

I may be divulging no secret if I bring to the notice of this Honourable House that in 1947, after the country's achievement of independence, when the people of the Indian States seriously took up the matter of democratisation in the Indian States through the A.I.S.P.C. and we too through our Praja Mandals and the Himalayan Hill States Regional Council and Integration and Amalagamation Committee of the A.I.S.P.C. took up the matter and started the movement, the late

Sardar Patel, the then State Minister, had a telephonic message sent to me through the late Shri Jai Narain Vyas, the then General Secretary of A.I.S.P.C., that the Sardar would like to decide about our future and so would like to know which of the following alternatives would be acceptable to us:

1. To merge these Hill States with the Punjab.
2. To merge some States with the Punjab and the others with the Uttar Pradesh.
3. To have a Union of States like the one of the Princess had set up at Solan.
4. To be integrated into a centrally administered province under a Chief Commissioner to start with, and then be given a legislature under a Lieutenant Governor and, finally, after the developing of their resources, to be made an autonomous State like any other.

On behalf of the state's people of these hills immediately told Shri Vyas that we would accept the last i. e. the 4th alternative of being integrated as a Centrally administered province to be finally made, after the developing of the resources, an autonomous State like any other and this was agreed to by Sardar Patel. This unwritten telephonic agreement, which was later confirmed by him through his Private Secretary, vide letter No. S. P. 39/29, dated 10th March, 1948, on March 18, 1948, laid down the strong foundations as also the definite goal of the State of Himachal pradesh. On 26th January, 1948, in extreme cold weather, while snow was falling, I had the honour to move a resolution to that effect. In the Ganj, Simla which was seconded by my friend and colleague Shri Padam Dev. As is fully known to this Honourable House, Satayagrah for the integration of these States into the Indian Union was thereafter started giving 48 hour notice on February 16, 1948, against the Suket State and the Ruler had to sign the instrument of merger. The same was done by the other Rulers also, under pressure of the Praja Mandal on 8th March, 1948 and on 15th April, 1948 after integrating the territories of some 21 Hill States the new province of Himachal Pradesh was inaugurated (vide Para 116 of the White Paper on Indian States, 1949).

There has thereafter been a constant effort first to get Assembly and Then Statehood. The matter was placed before the S. R. C. also but the Commission, as is known, by a majority report recommended its merger with Punjab, the Chairman, the late Shri Fazal Ali dissenting. The then Himachal Pradesh Assembly and all sections of the people opposed merger and respecting the wishes of the people of Himachal Pradesh, the Government of India under the stewardship

of our great leader the late Pt. Jawahar Lal Nehru finally decided to keep it separate though at a very heavy price. We were clearly told that if we wanted a Ministry we had to merge with Punjab, but if we wanted to remain separate we shall have to give up our legislature and Ministry and become a Union Territory. No other people in the country had been called upon to make such a sacrifice but the Leadership rose equal to the occasion and we gave a written undertakings to the late Pt. G. B. Pant, the then Home Minister to that effect. We lost the Ministry and the Assembly but we saved the territory, at what cost, we alone know. But this sacrifice has paid dividends, for had that great sacrifice not been made and had lure of office tempted the people's representatives. Himachal would have been only a district of the Punjab today. And that is why we can boldly, courageously, but with humility tell our people, especially our youngmen and women, who have to manage Himachal Pradesh in future, not to be mis-guided and misled by elements which do not know the history background and traditions of these Hills, but to maintain and value their own heritage and to take only to peaceful and constructive steps for the achievement of their objectives, thus achieving what they need, may be and prosperity to their own Pradesh and a good name to their country. The task may be difficult but it is well worth it.

It was a difficult time after becoming a Territory from a State, but it was borne patiently throughout, trying for the restoration of the Assembly and finally getting it on Ist July, 1963. All attention was now paid to get Statehood and on 5th July, 1965 the H.P.C.C. Executive passed a resolution urging upon the Prime Minister, the late Shri Lal Bahadur Shastri and the Union Government to admit Himachal pradesh as a State of the Indian Union. On 3rd October, 1966, H. P. Congress Assembly party passed a similar resolution. Again on 31st October, 1966, the H. P. Congress Executive and later in a Public Meeting at Simla on Ist November, 1966 another resolution, to the same effect was passed. Thereafter, on January 24, 1968, this Honourable House also passed a resolution urging "the Central Leadership and the Union Government to concede the demand of Pradesh for Statehood by bringing about the necessary legislation without further loss of time." Our M. Os. of both Houses, in addition to continued lobbying, raised the matter several times on the floor of the House. Big rallies were held by the Congress Party in Kulu, Shimla and Nahan thanking the Prime Minister for her settlement of the N. G. Os.' demands and urging the Government of India to grant Statehood. In the Nahan rally it was requested that a Bill to that effect be introduced and passed in the Monsoon Session. The

matter of Statehood had gained special significance and importance, for any delay in it was bound to have very strong and adverse effects in Himachal Pradesh. We are so happy the Prime Minister appreciated it and made a bold announcement about the decision to grant Statehood to Himachal Pradesh, which brought an unprecedented response from the people, for never has such happiness and joy been known. To those who had worked for it for the last 22 years it was an achievement they could not expect. But it electrified the whole people of Himachal Pradesh and generated new enthusiasm and dedication in them.

During the N. G. O's strike the Prime Minister, having had to deal with the problem as a Home Minister, came to realise in full, the difficulties we were facing under a Union Territory set up. That is why she finally accepted our recommendation and ordered that the arrangement will have to have the approval of the Chief Minsiter Himachal pradesh before finalisation. It was painful for me to have faced all that I did in helping the right cause of the N. G. O.'s and insisting on just term even when the N. G. O.'s were themselves prepared under force of circumstances to accept less. That their leaders now realise it is good. I am proud of the fact that in spite of the unbecoming treatment I was given, a fully protected their rights and had justice done to them. They failed to realise and were misled by certain interested elements for a time, that is why sheer helplessness of the Himachal Pradesh Government that as a Union Territory their demand had not been met but that the H. P. Government had gone out of its way to help them throughout. This Government is fully conscious of its responsibilities towards its employees whose interests it has to fully safeguard and protect.

It should be clear to any one with any imagination and sense of justice that there would have been no Teacher's strike nor N.G. O's strike, had this Government enjoyed the status of a state and it if could implement its own decisions. It was as such painful to note that a demand was made by certain sections, not for statehood, in fact to the contrary, but also for the imposition of the President's rule. However, we could not be detracted from it. But the fact is that whether it is in the matter of revenues, in the matter of administration, in the matter of services etc. of development or handling the farmer's problems, delay in grant of statehood is fraught with serious consequences and there should be no delay in introducing the Bill and passing it early in the Winter Session. Matters like number of parliament/Assembly will, I am sure, be decided properly by the Election Commission, the Government of India and the Houses of Parliament where function it is

and who will according to democratic practice be moved by all concerned. I am sure, the Commission, the Government of India and Hon'ble Members of Parliament are sympathetic and alive to our interests and will see that we get proper representation in the Parliament as also in the Assembly. The consequential matters of High Court, Public Service Commission, allotment of services, fixation of orders etc. will be taken up in terms of the Constitution on and procedures established and will be settled in due course. I need scarcely talk of financial viability for that myth has been fully exploded long ago especially when not only Nagaland but other non-viable territories have also to be admitted to statehood.

Before I close I deem it my duty to thank all members of the House, Members of Negotiating Committee and Members of the Parliament for their uninstructed and whole hearted support in the achievement of this objective and hope we shall get it in abundance in future in the discharge of the onerous duties which new responsibilities will entail. We hope, we the Members of this Assembly shall continue functioning with greater dedication, and service in the interest of the people of Himachal Pradesh and the larger interests of the great country to which we have the honour to belong. With these words and thanking you, Sir, Mr. Speaker, I move.

(सदन के नेता, हिमाचल प्रदेश विधानसभा पुस्तक से साभार) (29.09.2070)

बरसात में जवानों का अभिवादन स्वीकार करते हुए डॉ. यशवंत सिंह परमार

डॉ. परमार की बहुमुखी विकास दृष्टि

धीरे-धीरे बागवानी में हमारा नाम हुआ, प्रदेश सरकार का नाम हुआ क्योंकि उसने मदद वगैरह की ज़मींदारों की, मगर असल नाम हुआ यहाँ के लोगों का और सरकार को भी उस हिसाब से क्रेडिट मिलता है। मेरे फाज़िल दोस्तों को मालूम होगा कि बम्बई में एक फ्रूट वैजिटेबल सेमिनार हुआ। इनऑगुरेट करने आये वहाँ के मन्त्री जो खाद्य मन्त्री हैं और प्रेसाइड करने के वास्ते उन्होंने याद किया आप के सेवक को हिमाचल प्रदेश से। क्यों बुलाया? इसलिए नहीं क्योंकि मैं जानता हूँ कि डॉ. परमार में इतनी काबलियत नहीं है और मैं इस मुगालते में भी नहीं आता लेकिन इसलिए बुलाया कि इस प्रदेश ने इस क्षेत्र में खासतौर पर बागवानी के क्षेत्र में एक नुमाया काम किया है। हमारी सरकार ने, हमारी लेबोटरीज़ ने, हमारे किसान भाइयों ने उसमें हिम्मत से काम किया और उसकी वजह से इस प्रदेश का दर्जा ऊँचा उठता है और उसका सबूत इतना नहीं है कि एक तरफ यह इज्ज़त मिली और दूसरी तरफ यह जो अभी ऑल इण्डिया कॉम्पीटिशन हुआ कश्मीर में पिछली गर्मियों में स्टोन फ्रूट का और हम यह मानते हैं कि स्टोन फ्रूट में हमने ज़्यादा काम नहीं किया है जो अब किया है खासकर पीचैज़ का काम मुल्क में और किसी जगह नहीं है जिस तरह से यहाँ पर चला हुआ है, जिस तरह केनिंग यूनिट यहाँ पर चल रहे हैं, उसमें ऐसा हो सकता है कि किसी यूनिट में बड़ा काम है माल कम आता है तो वह दिक्कत तो रहेगी लेकिन हमने एक कदम उठाया है और कश्मीर में स्टेट लेवल पर जो एक मुकाबला हुआ, इस माननीय सदन को यह जानकर खुशी होगी कि जो शील्ड थी वह हिमाचल प्रदेश को मिली। फिर अभी हाल में हुआ। वह भी शो हुआ और उसमें भी मैं जानता हूँ कि हमारा हक बनता है और वह शील्ड हमें मिली। यह एक बड़ा ठोस काम आप के प्रदेश में इस सरकार ने किया। मैं सोचता हूँ कि यह एक नुमाया काम है।

(26 सितम्बर, 1969)

बागवानी विकास पर विचार

मेरे दोस्त को महज़ यह राग रहता है, वह तो रुकेगा नहीं। वह तो अपना राग अलापते रहते हैं, वह तो खत्म होता नहीं क्योंकि मेरे फाज़िल दोस्त तो न बागीचा लगाएँगे, न ही वह बागीचा लगाने वाले के पास जाएँगे, उनको कोई तुज़ुर्बा नहीं है, वह तो बाहर की सुनी-सुनाई ही बातें करते हैं। वह खुद बागीचा लगाएँ तो तुज़ुर्बा होगा। सरकार तो इनकी मदद कर रही है। यह तो इन्फ्रास्ट्रक्चर है, आपको तकलीफ होती है पुराने इलाके वालों की,

जिन्होंने पिछले 25 सालों से काम किए हैं। वहाँ पर तो कुछ नहीं हुआ, सिर्फ कुल्लू में एक हार्टिकल्चर अफसर लगाया गया, इसके नीचे दूसरे हो रहे हैं, ब्लॉकवाइज़ हो रहे हैं। काम तो काम करने से बढ़ेगा, महज़ बातों से बनेगा नहीं। अगर ये हिम्मत करेंगे तो इनको मिलेगा। अगर हम वहाँ पर नर्सरीज़ भी लगा दें, पौधे भी तैयार करके लगा दें तब भी कुछ नहीं होगा जब तक यह खुद काम नहीं करेंगे। यह तो इनको भ्रम है, इसको मेरे फ़ाज़िल दोस्त निकाल लें।

(17 अप्रैल, 1973)

वर्ल्ड बैंक बागवानी परियोजना

सदन में यह भी कहा गया कि एग्रीकल्चर सैक्टर का ज़िक्र ही नहीं किया गया और कहा गया कि सरकार को इस सैक्टर का फिक्र ही नहीं, महज़ बागवानी में लगी हुई है। एक मेरे दोस्त दुनिया-भर में बहुत भ्रमण करते हैं। उन्होंने भी कह दिया कि अमरीका से तो हमारी लड़ाई है इसलिए वर्ल्ड बैंक से यह प्रोजेक्ट हमें नहीं मिलेगा। हमारा तब भी ख्याल था कि हमें मिल जाएगा और अगर नहीं मिला तो जितना अपना सरमाया है, जितने साधन हैं उनकी सहायता से यहाँ काम कर लेंगे। अब जब वह आ गया तो वह भी गलत चीज़ हो गई। जिस तरह से बागवानी से प्रदेश को उठाने के लिए, सेबों को बाहर भेजने के लिए खासतौर से कोल्ड स्टोर और वेयरहाउसिज़ बनाए हैं वैसे प्रयत्न हिन्दुस्तान की किसी सरकार ने नहीं किए हैं। वर्ल्ड बैंक ने इस प्रोजैक्ट को इसलिए मंज़ूर किया क्योंकि इससे प्रदेश की बहुत उन्नति हो रही थी। इस क्षेत्र में हिमाचल ने बहुत ज़्यादा इन्फ्रास्ट्रक्चर बनाया है। अगर सरकार कोई अच्छा काम करती है तो इससे माननीय सदस्यों को खुश होना चाहिए। इस प्रोजेक्ट के मिलने से केवल बड़े-बड़े बागवानों को ही नहीं बल्कि जो छोटे बाग लगाने वाले हैं उनको भी राहत मिलेगी। उनका मैयार ऊँचा होता है और जिस मुश्किल में वह बागवान फंसा हुआ था, उससे वह बाहर निकल जाएगा। जिन चीज़ों से प्रदेश का नाम रोशन होता है उनके बारे में तरह-तरह की बातें निकालना और आलोचना करने से प्रदेश को नुकसान होता है।...

जो कर्ज़ा वर्ल्ड बैंक ने हमें बागवानी के लिए दिया है उसे वापिस भी करना है और उसी योजना से वापिस करना है जिसके लिए यह कर्ज़ा लिया है। इसलिए मेरा निवेदन है कि अगर इस प्रोजैक्ट को हम ठीक से चलाएँ और इसको कामयाब बनाएँ तो अगले दो प्रोजैक्टों के लिए हमें और पैसा आ सकता है। उसमें डेयरी आ सकती है और यह हमारी आर्थिक अवस्था को बदलने में बड़ी मदद दे सकती है। मेरे दोस्तों ने कहा कि मिनी प्लान बनाइए। प्लान बनी हुई हैं, बनती हैं और बन रही हैं। इसमें हॉर्टिकल्चर डिपार्टमेंट ने जो बिलाशुबहा बड़ा काम किया है वह ऊपर के भागों में किया, पहाड़ों में किया और उनमें महज़ सरकार ने ही काम नहीं किया बल्कि वहाँ के लोगों ने जिस हिम्मत से काम किया उसका फायदा भी उठाया। सरकार ने तो निचले हिस्सों में भी काम किया है, सरकार ने मदद की है। मेरे फाज़िल दोस्तों का ख्याल है कि जितनी भी सुविधाएँ हैं वे सब चीफ मिनिस्टर के बागीचे में लगती हैं। मैं बड़ा हैरान होता हूँ अपने दोस्तों के सोचने के ढंग को देखकर कि इनको क्या हो गया है। मेरे बागीचे में सरकारी सहूलियत नहीं है बल्कि मैं अपने बागीचे में हिम्मत से काम करता हूँ। मेरा बेटा और बहू काम करते हैं और इसका मुझे फख्र है।

(26 मार्च, 1974)

फलों का भंडारण एवं विपणन

फलों की पैदावार तेज़ी से बढ़ रही है, परन्तु समस्या केवल पैदावार की ही नहीं है। हम उस एक स्टेज पर पहुँच गए हैं जहाँ फलों का यातायात, स्टोर करने और मार्केटिंग करने की सविधाएँ जुटाना भी इतना ही ज़रूरी है। माननीय सदस्य जानते हैं कि इस राज्य सरकार ने उत्तर जोन परमिट स्कीम के अधीन जोन के अन्य राज्यों के साथ एक समझौता करने का पहले ही फैसला ले लिया है। इससे मौसम में ज़रूरत पड़ने पर पड़ोसी राज्यों से यातायात की सुविधाएँ मिल सकेंगी। जहाँ तक फलों आदि के स्टोर करने का प्रश्न है उसकी समस्या चालू वर्ष के दौरान दिल्ली तथा बम्बई में दो कोल्ड स्टोरेज मुकम्मल हो जाने से काफी कम हो गई है। मार्केटिंग के लिए हिमाचल प्रदेश कृषि उद्योग निगम ने वर्ष 1972-73 में बम्बई की मार्केट में प्रवेश किया और 1973-74 में अपनी गतिविधियों में और तेजी लाई। इसके अलावा बागवानी निदेशालय में उप-निदेशक के अधीन एक मार्केटिंग सैल भी कायम कर दिया गया है। अगले साल के कार्यक्रम में एक प्लांट टिशु विश्लेषण विस्तार सेवा स्थापित की जा रही है जो उत्पादकों को फर्टिलाइज़र सारिणी बनाने तथा टैम्प्रेट और सब-ट्रॉपिकल फलों को ठीक तरह से रखने के उद्देश्य से सलाहकारी सेवा प्रदान करेगी। असल में चौथी योजना अवधि के दौरान बागवानी के क्षेत्र में प्राप्त उत्पादन दर की प्रशंसा देश के उच्च्य-कोटि के योजकों ने भी की है और यह उदाहरण के रूप में पेश की जा रही है कि किसी स्थिति में उपस्थित कठिनाइयों के बावजूद भी यदि प्राकृतिक संभाव्यता के साथ निरन्तर और कृतसंकल्प प्रयत्न किए जाएँगे तो क्या कुछ नहीं हो सकता।

हिमाचल प्रदेश बड़ी ज़मींदारी उन्मूलन तथा भूमि विधेयक

अध्यक्ष महोदय, आज इस माननीय सदन के सामने हिमाचल प्रदेश बड़ी ज़मींदारी उन्मूलन तथा भूमि व्यवस्था विधेयक, 1953 पर विचार होना है। यह विधेयक कितने महत्त्व का है और इससे जो पुरानी खेती के सम्बंध में किसानों के अधिकारों का जो विधान (कानून) था, उसको नये विचारों के अनुकूल और समय की आवश्यकता के मुताबिक बदलने की कोशिश की गई है। क्योंकि भूमि के सम्बंध में किसान जोकि भूमि में उपज पैदा करते हैं, उनका ठीक ढंग से तय हो जाना, उनके अधिकार तय होना उनको तसल्ली होना कि वह अधिक-से-अधिक पैदावार कर सकते हैं और देश में खाने की जो समस्या है, अनाज की समस्या है, उसको हल कर सकते हैं। यह सब ऐसे प्रश्न हैं जिनका आज बहुत महत्त्व है, विशेष कर उन विचारधाराओं का ख्याल रखते हुए जो कि चल रही हैं, इस ज़माने में और दूसरी तरफ देश की दौलत बढ़ाने में।

अध्यक्ष महोदय, अब से पहले जो हमारा कानून इस बारे में था, वह हमारे पड़ोस के प्रदेश में लागू था, उसी के अनुसार हम अपने कानून को बनाने में लगे हुए थे। उसी के आधार पर चलते थे तथा हिमाचल प्रदेश का अपना कोई विधान इस बारे में नहीं था। हिमाचल प्रदेश बनने के बाद और अपनी विधान सभा बन जाने के बाद ज़रूरत हुई कि हम इसके बारे में विचार करें और विचार करके जो पंजाब में कानून लागू है उनसे सहायता लें और अन्य प्रदेशों से विशेषकर जो हमारे पड़ोसी हैं चाहे कश्मीर है, चाहे उत्तर प्रदेश है उनसे फायदा उठाएँ। यही नहीं हमें चाहे मध्य भारत और हैदराबाद दक्कन तक के प्रदेशों से सहायता लेनी

पड़ी, हमने ली ताकि सोच-विचार करके इस किस्म का विधेयक लागू कर सकें जो समय के मुताबिक खेती को बढ़ाने में और किसानों को मदद करने में कारगर सिद्ध हो सके। पिछले अधिवेशन में हम एक छोटा-सा बिल लाये हैं इस माननीय सदन के सामने और जो फौरी कार्रवाई की ज़रूरत थी, किसान को इमदाद देने की वह उसके द्वारा की गई। उस वक्त इस माननीय सदन के सामने कहा गया सरकार की तरफ से सोच-समझ के बाद कि एक बेहतरीन विधेयक अगले सैशन में लाया जायेगा।

अध्यक्ष महोदय, मेरे माननीय मित्र स्वामी कृष्णा नन्द जी को तो यह एतराज़ हो सकता है। मैंने पहले इसलिए प्रस्ताव नहीं रखा कि इस पर विचार किया जाए क्योंकि मैं जानता हूँ कि यह ठीक है। कुछ बातें मेरे माननीय सदस्य ने कहीं और अध्यक्ष जी, जैसी भी आपकी आज्ञा होगी उसके मुताबिक ही कार्रवाई होगी। बहरहाल, ज़रूरी है कि 'हाऊस' के माननीय सदस्य इस बिल को जान पाएँ क्योंकि वे भी तो लोगों के नुमांइदे हैं और फिर जैसे भी माननीय सदस्य चाहें तो उस पर कार्रवाई हो सकती है। तो अध्यक्ष जी, पहला प्रश्न जो इस बिल में है वह ज़मीनों का प्रबन्ध किसानों के हाथ में देने और मालिकों की तादाद बढ़ाने का है। जिनके पास बड़ी-बड़ी हैं, उनसे न तो उन लोगों को ही लाभ है और न ही उन किसानों को जिनके पास ज़मीन नहीं है या है भी तो बहुत थोड़ी है। उनको अवसर देने के लिए यह ज़रूरी है कि इस पर विचार किया जाए और कोई अच्छी-सी योजना बनाकर इस सदन के सामने लाई जाए।

इस विचार को सामने रखते हुए अध्यक्ष महोदय, पिछले अधिवेशन में सरकारी और गैर-सरकारी सदस्यों की एक कमेटी बनाई गई थी। उस कमेटी ने हिमाचल का दौरा करके लोगों से जानकारी प्राप्त की। वे सब ज़मीन मालिकों से, जागीरदारों से, किसानों से और जिनके पास ज़मीन नहीं है, उनसे भी मिले। उन्होंने लिखित रूप में भी लोगों के विचार और एतराज़ात इकट्ठे किए तथा उन सब का विचार करने के बाद कमेटी ने अपनी सिफारशात सरकार को भेजी। सरकार ने उन सिफारशात पर सोच-विचार करने के बाद और अधिकारियों की मदद से इस विधेयक को इस माननीय सदन के सामने मौजूदा रूप में लाया है। हो सकता है अध्यक्ष जी, कि इस विधेयक के लाने से जो सिफारिशें इसमें की गई हैं उनसे न तो उन किसानों को जिनके पास या तो ज़मीन है ही नहीं और अगर है भी तो, न के बराबर है, की पूरी तरह से तसल्ली हो, संतुष्टि हो और न ही ज़मीन के छोटे-बड़े मालिकों को जो कि पहले ही से काफी नाराज़ हैं, कोई खास प्रसन्नता हो सकती है। लेकिन इस माननीय सदन के सदस्यों को यह सोचना है कि हम इस तरह एक तरफ की लड़ाई, एक तरफ के झगड़े में न पड़ें बल्कि सारे प्रदेश की और सारे देश की उन्नति और शान्ति को ध्यान में रखते हुए सारे काम को ठीक ढंग से परस्पर मिलाप से, कंधे से कंधा जोड़कर करने की बात सोचें और अगर हम ऐसा करते हैं, तो कोई भी इस तरह बात सामने नहीं रहती। हमारी तरफ से कोशिश तो यह हो रही है कि जो भूमिहीन है या जिसके पास भूमि बहुत ही कम है और जिनके पास अधिक है उनसे लेकर यह करना है ताकि सबको थोड़ी-थोड़ी भूमि बांटी जा सके। लेकिन यह इस तरह से करना है कि किसी किस्म की उथल-पुथल न हो और जो ज़रूरी सुधार होना चाहिये हमारे ढांचे में, कि किसानों को अधिकार हो खेती से फायदा उठाने का। वे जो हर वक्त अपने मालिक के रहम पर रहते हैं, उनको उन कठिनाइयों से निकाला जा सके और साथ

ही उनको जो शौक है ज़मीन की उन्नति करने का, उसकी पैदावार बढ़ाने का उसका भी उनको मौका दिया जाए। तो इन सब बातों को सोचते हुए अध्यक्ष महोदय, यह विधेयक इस माननीय सदन के सामने लाया गया है।

जो सिफारिशें इस विधेयक में लाई गई हैं, उनकी ओर भी मैं थोड़ा-सा ध्यान इस माननीय सदन का दिलाना चाहता हूँ। अध्यक्ष महोदय, सबसे पहले आपत्ति, जो हिमाचल प्रदेश के एकीकरण से पहले यहाँ किसानों को हो रही थी और जिससे कुछ हिस्सों में काफी अशान्ति भी फैली, वह है धड़ाधड़ बेदखलियों की। कुछ मालिक ज़मीन इस विचार से कि अब हमारे प्रदेश का एकीकरण हो रहा है और मुमकिन है कि अब कानूनन बेदखलियाँ बन्द हो जावें और किसानों को ज़मीन के अधिकार मिल जायें और फिर उनको बेदखल करने में कोई दिक्कत हो, इसलिए उन्होंने धड़ाधड़ बेदखलियों की भरमार कर दी और इसकी रोकथाम करने के लिए 'चीफ कमिश्नरी' राज में ध्यान किया गया और इस बारे में पंजाब में जो विधान अपनाया गया था उसको यहाँ भी लागू किया गया, जिससे सरकार को बेदखलियाँ रोकने का कुछ अधिकार मिला। अभी तक यही विधान यहाँ पर चल रहा है।

लेकिन उसमें फिर भी ज़मींदारों को ऐसे अधिकार थे कि चाहे कोई कितने ही अर्से से क्यों न आबाद हो, वह उसको निकाल सकता था। तो कमेटी ने यह सिफारिश रखी कि उस धारा को यहाँ से बिल्कुल निकाल दिया जाए जिससे कब्ज़े के ऐसे अधिकार पर विचार किया जा सके। और काफी किसान हैं इस तरह के जिनके पास मौरूसी के हकूक हैं। मालिकाना कहीं ज़्यादा, कहीं कम देते हैं मालिक ज़मीन को और बाकी सब अधिकार उनके उन ज़मीनों पर रहते हैं। हमारे पड़ोसी सूबे में भी मौरूसी के अधिकार दिये गए। कानून बना जो कि वहाँ लागू है, उसे सामने रखते हुए इस बिल में सिफारिश की गई है कि जो मौरूसी मालिक है; उनको मालिक बनाया जाये। मालिकों को जैसे कि पंजाब में मुआवज़ा दिया गया है, वैसे ही मुआवज़ा दिया जाये। बटाई के सिलसिले में भी कमेटी ने विचार किया और सिफारिश की कि कोई भी ज़्यादा से ज़्यादा बटाई 1/3 ले सकता है। अध्यक्ष जी, आपको यह ज्ञात होगा कि पिछली दफा भी 1/4 की सिफारिश हुई थी और 1/4 ही पास हुआ था। कुदरती तौर पर सवाल पैदा हो सकता है कि पहले 1/4 को पास करके, अब 1/3 की सिफारिश क्यों की जाती है।

मैं इस सदन के सामने अर्ज़ करना चाहूँगा कि कमेटी ने हिमाचल प्रदेश का भ्रमण करके सिफारिश की है कि हिमाचल प्रदेश के जो हालात हैं, उनके होते हुए शायद 1/3 इस प्रदेश के लिए मुनासिब हो और शायद माननीय सदन अपने पहले फैसले पर विचार करना मुनासिब समझे। पहला प्रश्न उन मुजारों का है जिनको गैर-मौरूसी मुजारा कहते हैं। उनके भविष्य के बारे में सबको चिन्ता रहती है। क्योंकि अभी तक जहाँ तक इस किस्म के मुजारों का और काश्तकारों का सवाल है वे मालिक ज़मीन के रहम पर रहते हैं। जब वे चाहें उनको निकाल सकते हैं। उन लोगों ने आज तक क्या-क्या तकलीफें सहीं, सदन अच्छी तरह से जानता है कि क्या परेशानी उनको रहती है। कोई भी हिम्मत उनकी नहीं रहती। इस बिल में सिफारिश है कि किसी भी हालत में वे लोग जो आबाद हैं, बेदखल नहीं होने चाहिये, क्योंकि उनको बेदखल करने के बाद उनको और जगह आबाद करना होगा। जोती हुई ज़मीनों को छोड़ने के बाद पहाड़ों और पत्थरों को तोड़ करके आबाद करना असंभव होगा, जिसे सरकार

को भी इन्तजाम करने में काफी कठिनाई होगी। इसलिए यह ज़रूरी है कि उन लोगों के सिवाय जो कि फौज में देश की सेवा के लिए भर्ती हुए हैं, उनके अलावा जो ज़मीन किसी के कब्जे में है वह उनसे न छुड़ाई जाये।

काफी परेशानी रहती है कि 5 एकड़, 15 एकड़ या 50 एकड़ ज़मीन ज़्यादा-से-ज़्यादा रखी जाये। कुछ चाहते हैं कि 50 से कम नहीं बल्कि 100 एकड़ होनी चाहिए जो एक ज़मींदार को काश्त करने के लिये छोड़ी जानी चाहिए। उनका मतलब यह है कि जितनी उनके लिये ज़मीन रखी जाये उससे किसानों को बेदखल करने का उनको अधिकार मिलना चाहिये। ज़मींदारों की तरफ से कहा जाता है कि अगर उनको ऐसे अधिकार न होंगे तो उनको बड़ी मुश्किल का सामना करना पड़ेगा, क्योंकि उन्होंने अपनी सब ज़मीनें काश्तकारों के पास दे रखी थीं और उनको यह मालूम न था कि कोई ऐसा विधान आएगा। इसलिए वे चाहते हैं कि उनके लिए ऐसा विधान होना चाहिए कि वे अपने लिए कुछ ज़मीन लेने के लिये काश्तकारों को बेदखल कर सकें। लेकिन कितने ही काश्तकार ऐसे हैं कि छोटी-से-छोटी भी कोई ज़मीन रखी जाये, तो वे बेदखल हो जायेंगे।

इस बात से नई तरह के शरणार्थी यहाँ बन जायेंगे, जिन्हें नये सिरे से आबाद करने का काम सरकार के सामने रहेगा। इसलिये कमेटी ने इस बिल में सिफारिश की है कि कोई भी किसान बेदखल न किया जाये, उस ज़मीन से जहाँ कि वह आबाद है और जहाँ बड़े ज़मींदारों का सवाल है उनसे वह ज़मीनें जो 125 एकड़ से ज़्यादा है, ले ली जाएँ और उनको मुनासिब मुआवज़ा दिया जाए। प्रश्न हो सकता है कि 125 एकड़ तो बहुत ज़्यादा है। इसमें तो बड़ी-बड़ी भूमि वाले लोग ही शायद फायदा उठा सकें। एक हद तक यह सवाल सही है। मगर जो बात इस सदन को अपने सामने रखनी है, उसके बाद शायद वह निर्णय करेगा, तथा यह विधेयक पारित हो सकेगा। वह यह बात है कि अगर एक आदमी को 40-50 एकड़ ज़मीन दी जाती है, तो वह काफी हो सकती है उसके लिये। मगर हिमाचल प्रदेश की जो हालत है और जिस तरह से अभी तक बहुत सारे खानदान इस ढंग के हैं, जिनमें कोई अलग-अलग नहीं हैं, बल्कि 7, 8, 10 और कई जगह 20-50 तक परिवार के सदस्य हैं। तो अगर उनके लिये 40-50 एकड़ की सीमा रख दी जाए तो उनको एक-एक एकड़ भी नहीं आयेगा। बहरहाल यह एक ऐसी बात है, जिसमें सब-कुछ शामिल होगा, यानी जंगल, घासनी है और दूसरी इस तरह की चीज़ें। यह ऐसी चीज़ है जिस पर माननीय सदन बहुत अच्छी तरह से विचार करेगा। जो किसान हैं, जिनके पास ज़मीनें नहीं हैं या जिनके पास ज़मीनें बहुत थोड़ी हैं, वे ज़मीनें उनको दी जा सकेंगी। इस तरह से जो बहुत सारी ज़मीन बेकार पड़ी है, उन बड़े-बड़े जमींदारों के पास जो स्वयं काश्त नहीं करते या जिन्होंने उसे सिर्फ ठेके पर दे रखा है और लाभ उठा रहे हैं, इस प्रकार जहाँ तक उसमें अनाज पैदा करने का सवाल है, यह बराबर उसके रास्ते में भी एक बड़ी भारी अड़चन होती है। तो इस बिल में सिफारिश यह है कि इस तरह की ज़मीनें सरकार अपने पास रखे और किसानों को उसका मुआवज़ा दिया जाए नियमित रूप से और इस तरह से किसी के पास 125 एकड़ से ज़्यादा ज़मीन नहीं रह जायेगी। उम्मीद यह है कि इस तरह से ज़मीनें मिल जाने से हमारी ज़रूरत पूरी हो सकेगी और उन किसानों को जो आज तक बिल्कुल भूमिहीन रहे हैं, ज़मीन दी जा सकेगी। तो यह मोटी-मोटी बात माननीय अध्यक्ष महोदय, मैंने इस सदन

के सामने रखी। आपकी आज्ञा से मैं चाहता हूँ कि इस बिल पर विचार किया जाये और विचार के बाद जो संशोधन किसी ने देने हों, वह दें और बाद में इसको पारित किया जाये।

(23 अप्रैल, 1953)

भूमि सुधार

जिस तरह गवर्नमेंट की नीति है, किसानों के सम्बन्ध में, ज़मीनों के सम्बन्ध में कानून बनाने की, जिस पर टीका-टिप्पणी भी होती है, वह साफ है कि किसान और सरकार के बीच जो एक एजैन्ट कहें, मालगुज़ार कहें, उनको निकालने की है और सरकार की इच्छा है कि सरकार का और ज़मीन पर काम करनेवालों का परस्पर सीधा नाता जुड़ जाये और इसके लिए सरकार पूरी कोशिश भी कर रही है। बाकी जो औकुपैंसी टेनैंट्स हैं उनको मलकियत के अधिकार इस बिल के ज़रिये दिए जा रहे हैं। ताकि जो अब ज़मीन का मालिक है उसको बीच में से निकालें और ज़मीन उसकी हो, जो उसको बोता है।

हिमाचल में ऐसी सड़कों की योजना है कि 5 साल के अंदर-अंदर कोई ऐसी जगह नहीं होगी जहाँ कि उनके फल वगैरह बाहर निकालने का प्रबन्ध न हो। यह बात समझ लेनी चाहिए कि यह स्पष्ट नीति है इस माननीय सदन की, क्योंकि हर एक बात इस माननीय सदन की राय के मुताबिक सरकार करती है, कि सारे प्रदेश में सड़कों का अच्छा प्रबन्ध होना चाहिए, जिससे कि हमारी सारी उपज मार्केट में पहुँच सके। जहाँ सड़कें नहीं हैं वहाँ जल्दी ही सड़कें बनाई जायेंगी और यह खुशी की बात है कि बहुत सारे लोग इस वक्त फलों के पौधे लगा रहे हैं इस आशा से कि उनके यहाँ सड़कें आयेंगी।

(25 नवम्बर, 1954)

हिमाचल में वनों का महत्त्व

हिमाचल का सम्बंध जंगलों से है और इन जंगलों का न केवल हिमाचल से ही सम्बंध है बल्कि सारे भारत से भी इनका कितना सम्बंध है, इस पर रोशनी डालने की इस माननीय सदन के सामने कोई ज़रूरत मालूम नहीं होती। परंतु इतनी बात लाज़मी है इस माननीय सदन के विचारने की कि ये जंगलात, चाहे वे सरकारी हों या गैर-सरकारी, उनका न महज़ कायम रहना लाज़मी है बल्कि उनकी जो हालत बिगड़ रही है और आइंदा जो बिगड़ने की संभावना है उसको दूर करना इसी प्रदेश के हित में और सारे भारत के हित में बहुत ज़रूरी होता है। जो नीति भारत सरकार की इस सम्बंध में है उस के अनुसार तो हिमाचल में कोई 60 फीसदी के करीब हिस्सा जंगलों के नीचे होना चाहिए। क्योंकि जितने दरिया हैं जो कि यहाँ बहते हैं या जिनका यहाँ से निकास है या बह कर यहाँ आते हैं और हिमाचल के बीच में से जाते हैं, जैसे रावी, सतलुज, ब्यास तथा जमुना आदि, वह इस प्रदेश को सैराब करें, खेती-बाड़ी को जरखेज़ बनाएँ। हम अपने पानी को जमा रखें और जब तक ठीक ढंग से इंतज़ाम नहीं होता और उन के बारे में कोई मजबूत नीति नहीं अपनाई जाती तो इससे न महज़ हमारे पहाड़ गिर सकते हैं बल्कि सारे मुल्क में उनसे खराबी पैदा हो सकती है तूफान के ज़रिये से और दूसरी तरह से।

जहाँ तक सरकारी जंगलात का सम्बंध है उनके बारे में बाकायदा वर्किंग प्लान बनते

हैं और यह तय होता है कि कितने दरख़्त कटने हैं, कब कटने हैं और किस तरह से कटने हैं और किस उम्र में कटने हैं और कितने दरख़्त उनके बजाय नए पैदा होने देने हैं या नए लगाने हैं। काफी तादाद में जहाँ-जहाँ ज़रूरत होती है, उस हिसाब से नए दरख़्त लगाने, नए जंगल पैदा करने का इंतज़ाम बराबर सरकार करती है। मगर जो मालिकों के अपने जंगल हैं उन में अभी तक कोई काम बाकायदा इस तरह का नहीं होता। कुछ अर्से तक आज़ादी के फौरन बाद इस बेदर्दी से जंगलात काटे गए, प्राइवेट भी और कभी शायद सरकारी भी और इससे काफी नुकसान इस प्रदेश को पहुँचा। अब भी कई जगह जंगलों का नुकसान, जो मालिकों के अपने हैं, काफी हो रहा है। यह ठीक है कि उन से कीमत मिलती है और कुछ मुनाफा भी होता है लेकिन जो प्राइवेट जंगलात हैं उनमें यह बात सोचने की हो जाती है कि अगर हम बगैर सोचे-समझे जंगल काटते रहें तो यह सवाल पैदा हो सकता है कि उन की अपनी ज़रूरियात कैसे पूरी होंगी और उन ज़रूरियात का माकूल इंतज़ाम हो सकेगा या नहीं हो सकेगा? यह सिर्फ ऐसा सवाल है जिसके बारे में सोचने वाले विचार करते हैं और उसी चीज़ को लाने के लिए यह विधेयक इस माननीय सदन के सामने आया है।

यह ज़रूरी है कि जहाँ तक हो कृषकों को, किसानों को, ज़मींदारों को उनके घरेलू जीवन में हर प्रकार की सहूलियत कायम रहे और रहनी चाहिए और अगर कहीं अड़चन हो तो वह दूर होनी चाहिए। लेकिन योजना यह है कि जो बगैर सोचे-समझे प्राइवेट फोरैस्ट में से दरख़्त काटे जा रहे हैं, वे रोके जाएँ और नए दरख़्त लगाने का इंतज़ाम भी किया जा सके। हालाँकि दरख़्त तकरीबन एक तरह के होते हैं। इसकी वजह यह है कि वे अलग-अलग और थोड़े-थोड़े हिस्से बिकते हैं जिससे मालिकान को जो भी ठेके की रकम दी जाती है वह काफी हद तक मंजूर करनी पड़ती है और कोई चारा नहीं होता। अगर वह जंगल बाकायदा मार्क होकर, जिस वक्त सरकारी जंगलात नीलाम हों उनके साथ-साथ नीलाम किए जाएँ और वे भी उसी उम्र के हों तो उनको भी वही कीमत मिल सकती है जो सरकार को अपने जंगल नीलाम करने से मिलती है और इस तरह से एक अच्छी-खासी रकम मालिक ज़मीन को इन दरख़्तों के बेचने से मिल सकती है।

जंगलों के बारे में एक और ज़रूरी बात जानने के काबिल है और वह यह है कि हम बराबर दरख़्त काटते रहें। अगर दरख़्त अपनी उम्र से ऊपर चला जाए और न कटे तो जंगलों से फायदा नहीं होता बल्कि उल्टा नुकसान होता है। मुनासिब यह है कि एक उम्र तक जब तक कि वह अपनी पूरी उम्र को न पहुँचे, जवान न हो जाए उसको नहीं काटना चाहिए। पूरी उम्र पर पहुँचने से उसकी लकड़ी अच्छी हो जाएगी और दाम अच्छे मिलेंगे। उस वक्त जब कटने की उम्र शुरू होती है उस वक्त जंगल काटे जाएँ और जिस कदर नए जंगल पैदा हुए हैं उनको बढ़ाने का मौका दिया जाए और यह सिलसिला बराबर चलता रहे तो जंगलों की हालत अच्छी बढ़ेगी और जंगलों से जो कीमत मिलेगी वह चाहे सरकारी हों या ज़मींदारी काफी बड़ी बचत हो सकती है। इसके अलावा अगर कहीं खास तौर से दरख़्त पैदा नहीं होते हों या जितने काटे जाएँ उससे कम पैदा होते हों तो वहाँ मनसूई ढंग से नर्सरी के तौर पर लगा दिए जाएँ तो ज़्यादा अच्छा हो सकता है। जहाँ तक जंगलों का कटना ज़रूरी है वह तो ठीक है लेकिन उनकी जगह दरख़्त लगाना और जंगलात की हालत सुधारना ज़रूरी है ताकि पहाड़ों का खड़ना बंद होने में मदद मिल सके। इस तरह का काम करना पड़ेगा जब तक

कि एक साधारण कायदे के अंदर किसी विधान के अंदर इन सारी योजनाओं को न लाया जा सके और जो रुकावटें उसमें आ सकती हैं उनको दूर करके इन कामों को आगे चलाया जा सके।

(01 दिसंबर, 1954)

इस माननीय सदन का ध्यान बराबर दिलाना होगा कि जंगलात की रक्षा भी उतनी ही ज़रूरी है। जहाँ देहात के रहने वालों की ज़रूरियातें ज़िंदगी पूरी होनी लाज़मी हैं; उनको इमारती लकड़ी मिलना लाज़मी हैं, वहाँ जगलों के बारे में भी यह ध्यान देना आवश्यक है कि वे इस बेदर्दी से न कटें जैसे कि कई स्थानों पर देखने में आया है और इस तरह से जो मुल्क की दौलत है उसके खत्म करने की तरफ विचार न हो।

(26 मार्च, 1954)

जंगल बहुत हैं इस प्रदेश में, इसमें कोई शक नहीं है। पर इन जंगलों की रक्षा करना भी तो हमारा फर्ज़ है। मैं तो यह कहूँगा कि जिन जमींदारों के पास बंजर ज़मीनें हैं, उन पर जंगल लगाने चाहिए। उनसे वे लकड़ी मुहैया कर सकते हैं। अगर इन जंगलों को ठीक तरह से इस्तेमाल किया जाये तो हमें काफी फायदा हो सकता है। हिमाचल प्रदेश की अगर आज सबसे बड़ी आमदनी का ज़रिया है तो वह जंगल है।

(19 मार्च, 1965)

पहाड़ में विकास की धूरी–सड़कें

सड़कों के बारे में बहुत से माननीय सदस्यों ने सदन के सामने कहा है कि सड़कों को बनाने का काम बहुत तेज़ी के साथ इस प्रदेश में हुआ है। सड़कों को बनाने में एक लहर दौड़ पड़ी न महज़ सारे हिमाचल प्रदेश में बल्कि अन्य प्रदेशों में भी आपका कुछ दर्जा बढ़ा है। लोगों के विचार में जिस तेज़ी से अपनी सरकार ने, यहाँ के लोगों ने, किसानों और मज़दूरों ने सड़कों के बनाने में हाथ बंटाया है उससे गौरव हो सकता है। वास्तव में उससे इस प्रदेश का मान बढ़ा है। मगर यह सुनकर बेहद अफसोस हुआ कि जो सड़कों की निन्दा की गई उससे न महज़ यह गलत विचार फैलता है बल्कि उन लोगों के हाथ मज़बूत होते हैं जो नहीं चाहते कि इस प्रदेश की उन्नति हो। कहा गया कि सड़कें खतरनाक हैं और इतनी खतरनाक हैं कि मोटरें नहीं चलानी चाहिए, जान का खतरा है और जब तक घण्टों बैठकर प्रार्थना न करें तो एक सिरे से दूसरे सिरे तक नहीं पहुँचेंगे।

हैरानी होती है कि ऐसी जगहों में, ऐसे हालात में ये बातें करें कि इतना खतरा बढ़ गया है। इन सड़कों से इतना खतरा उनको मुमकिन हो सकता है जिन्हें पहाड़ों में गाड़ी चलाने का तुज़ुर्बा नहीं है। ये सड़कें विशेषकर ऐसे लोगों के इस्तेमाल में आती हैं जिनका लगभग सारा जीवन यहीं व्यतीत हो गया है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि हम इन सड़कों को काबिल न बनाएँ। हम यह चाहते हैं कि सड़कें ऐसी हों कि मोटरें एक नहीं दो भी चल सकें और सड़कों पर तारकोल भी बिछा हो।

एक बार मेरे एक दोस्त मेरे साथ कराड़ाघाट रोड पर पहुँचे तो वे कहने लगे कि ज़िन्दगी को हमेशा यहाँ मौत का खतरा रहता है। उनकी बात ठीक थी। मैंने कहा, आप मैदानी सड़कों पर घूमते हैं जहाँ न इस प्रकार सड़कों में गड्ढे हैं, न नदी-नाले हैं और न ही खतरनाक

पहाड़ हैं। सच पूछो तो इन सड़कों की कीमत आप इन पहाड़ वालों से पूछें जिनकी पीठ से बोझ उठ कर मोटरों में चला गया।

जहाँ तक लोगों का सवाल है, लोग सरकार के मशकूर हैं कि इतने अर्से में इतनी सड़कें खोल दीं, इनसे लोगों को समय के हिसाब से काफी फायदा पहुँच रहा है। पी.डब्ल्यू. डी. मिनिस्टर जिन्होंने तय किया है कि हम ज़्यादा-से-ज़्यादा सड़कें खोलेंगे और इस काम में कोई कोताही नहीं होगी, वह भी बधाई के पात्र हैं। ऐसा नहीं है कि सड़कें बिल्कुल ठीक हो गई हैं, अभी उनमें काफी कमी है। इसलिए अब भी उनको ज़्यादा-से-ज़्यादा चौड़ा किया जा रहा है और उनको 24 फुट चौड़ा किया जाए, ऐसा इरादा है। इन सड़कों के बनने की वजह से आज लोगों के अंदर एक नया जज़्बा और उत्साह है।...

सड़कों को बनाने के लिए, इस मुल्क की तरक्की करने के लिए और सरकार की इस बात को ध्यान में रखते हुए कि इतना रुपया नहीं हो सकता कि ज़्यादा सड़कें बनाई जा सकें, तो हमारे किसानों, छोटे-छोटे जमीदारों ने कहा कि हमारी तरफ लाइन डाल दीजिए, अलाइनमेंट कीजिए और उसके बाद ख़र्चा वे खुद कर देंगे। सिरमौर होते हुए जो सड़क जगाधरी जा रही है उस पर हमारे सभी वर्ग के लोगों ने सहयोग दिया और जितना हिस्सा उस सड़क का हिमाचल प्रदेश के अंदर है उसको अपने आप ही बनाया है और वह देखने का विषय है। हमारे जो केन्द्रीय ब्रॉडकास्टिंग मंत्री हैं उन्होंने इसको देखा और इसकी एक फिल्म तैयार हुई जिससे पता चलता है कि इस गवर्नमेंट ने जो इतनी तेज़ी के साथ काम चलाया है इससे लोगों के अंदर कितना उत्साह पैदा हुआ है। सोलन से पैप्सू और दूसरी तरफ पलाशला से नौहरा तक, वहाँ साढ़े तीन हज़ार लोग एक दिन जमा हुए और उन्होंने तय किया कि अगले भादों तक इस सड़क को तैयार कर देंगे। यह एक नई चीज़ है। अगर यह काम किसी दूसरी जगह होता तो वहाँ के लोगों में एक सनसनी अवश्य पैदा होती। इतना ही नहीं बल्कि जितनी ज़मीन उन लोगों की सड़क में आ रही है उस पर उन्होंने कहा कि हमको कोई मुआवज़ा नहीं चाहिए बल्कि जितनी ज़मीन है हम उसको सरकार के हवाले करने के लिए तैयार हैं। हम अपने हिमाचल में सड़कें बनाएँगे।...

(26 सितम्बर, 1969)

समाज सुधार

अस्पृश्यता : माननीय सदस्य ने छुआछूत के बारे में काफी जोर से कहा कोई कार्य इस सम्बन्ध में हिमाचल प्रदेश की सरकार की तरफ से नहीं हुआ। शायद माननीय सदस्यों को मालूम नहीं या क्या बात है, अर्सा से यहाँ पर सोशल डिसेबिलिटी एक्ट लागू है और यदि कोई छुआछूत करता है तो उसके खिलाफ कार्रवाई करना और उसकी इत्तलाह देना ही नहीं बल्कि उसे सजा दिलाना, मैं समझता हूँ, एक ज़रूरी काम है। यहाँ तो बराबर यही नीति रही है और रहेगी कि छुआछूत नहीं रह सकती। हाँ, दूसरी कुछ खामियाँ हो तो मैं मान सकता हूँ और मुझे आशा है कि माननीय सदस्य वे खामियाँ हमारे सामने लाएँगे ताकि हम उनको दूर कर सकें।

(17 मार्च, 1954)

वृद्धावस्था पेंन्शन : निःसंदेह ठीक है कि सब बूढ़ों को सरकार की ओर से सहायता या मदद पहुँचनी चाहिए और यह ख्याल कि इस विषय में सरकार का कोई ध्यान नहीं है, ऐसी बात है नहीं। उनको हर प्रकार की सहायता देनी भी चाहिए। यह बुढ़ापा आता ही है। यह ठीक है कि जैसे-जैसे देश तरक्की करता जाता है वैसे-वैसे ही वहाँ पर अधिक सुविधाएँ भी प्राप्त हो जाती हैं। बाहर के मुल्कों में तो कई प्रकार की सुविधाएँ हैं। वहाँ हर आदमी को हर तरह के आराम देने की व्यवस्था सरकार करती है और उनके पास इतना पैसा भी होता है। जहाँ तक सवाल है हमारी सरकार का, वह अच्छा जीवन बनाने के लिए हर प्रकार का ध्यान रख रही है और हमारी सरकार भी ऐसी सुविधा का इन्तज़ाम करने की तरफ ध्यान दे रही है।

यहाँ पर बीमा हम लोग केवल इसलिए करवाते हैं कि जब रिटायर होंगे तो पैसा मिल जाएगा लेकिन बाहर के मुल्कों में ऐसा नहीं होता है। न ही वे लोग बुढ़ापे के लिए अपना बीमा करवाते हैं। बाहर के मुल्कों में तो बच्चों का भी बीमा करवाते हैं। जब बच्चा पैदा होता है, उसी समय उसका बीमा करवा देते हैं और कॉलेज जाने वाले विद्यार्थी का बीमा करवाते हैं। यह ज़रूरी नहीं है कि वह अपनी जरूरत के समय के लिए बीमा करवाए। दूसरे मुल्कों में हर प्रकार के बीमे किए जाते हैं। ऐसी हालत में जब भी जरूरत होती है तो बीमा का पैसा काम आता है। जब बीमा किए हुए मरते हैं तो वे लोग अपने पीछे कितना ही पैसा छोड़ जाते हैं। परन्तु यहाँ अभी हमारे हिमाचल प्रदेश में ऐसा नहीं है क्योंकि अभी हिमाचल प्रदेश की माली हालत अच्छी नहीं है। आमदनी के ज़रिये इतने अच्छे नहीं है जिससे कि खूब पैसा बचाया जा सके। जब बाहर और दूसरी जगह ऐसे काम चले हुए हैं तो यहाँ पर भी अपने प्रदेश की तरक्की और मुल्क की तरक्की के लिए हर आदमी को अच्छी तरह से काम करना चाहिए। जिससे हर आदमी अपना जीवन बसर करने के लिए हर सुविधा खुद प्राप्त कर सके। अगर लोग अपनी तरक्की हर तरह से करते रहें तो ऐसी मुश्किल आने की बात ही पैदा नहीं हो सकती है। जहाँ तक सवाल है बूढ़ों की मदद करने का वह सरकार के ध्यान में है कि हम कोई इंतज़ाम करें।

(12 फरवरी, 1965 उत्तर)

महिला सम्मान

मुझे थोड़ा-सा अफ़सोस यहाँ इस बात का है, मेरे दोस्तों ने दो-चार शब्द यहाँ पर ऐसे कह दिए कि डॉक्टर परमार ने महिलाओं का अपमान किया है। मैं एक बात आपको कह दूँ कि डॉक्टर परमार के दिल में चाहे निजी हैसियत से, चाहे चीफ मिनिस्टर की हैसियत से या इन्सानियत की हैसियत से जितना आदर व सत्कार है, वह मुश्किल से ही किसी दूसरे में होगा। मैं समझता हूँ कि इन मुश्किल पहाड़ों में हमारी ज़िन्दगी इन महिलाओं की कुर्बानी के बगैर कभी भी नहीं चल सकती। जितनी हम उनके लिए इज्ज़त दें, वह थोड़ी है और जितनी उनकी खिदमत करें, थोड़ी है।

(07 गई, 1975)

समाज उत्थान

मैं भी इसी ख्याल का हूँ कि जो और भी कानून हैं, चाहे पीपल्ज़ रिप्रजेंटेटिव एक्ट है,

और दूसरे हैं, उनके बदले हमारे सामने जो सोशल ऑब्जैक्टिव हैं, जो असमानता को दूर करने का ऑब्जैक्टिव है, छोटे इंसान को उठाकर इंसान बनाना है, मुनासिब दर्जा देना है, उसके रास्ते में जो रुकावटें आएँ, उनको दूर करें और ज़्यादा अख्तियार लेने की जरूरत हो तो वह लें।

(09 अगस्त, 1975)

कुरीतियों पर चोट

मैं सोचता हूँ कि इससे हमारी आधी फीसदी मुल्क की आबादी को राहत मिल सकती है इस किस्म के कदम उठाने से। हम लोग जो पहाड़ में हैं उनको इसका एहसास ज़्यादा नहीं है। खुशकिस्मत हैं जो ऊँचे पहाड़ हैं ऊपर के और तकरीबन जो दरमियाना भी हैं उनमें तो यह रस्म-रिवाज़ थी नहीं और हमारे बीच के पहाड़ वाले इसको नहीं जानते थे। मगर मैदान के नज़दीक जो इलाके थे वहाँ पर यह प्रथा थी और उसका असर वहाँ पड़ा है और कुछ लोग जिनके पास ज़रा ज़्यादा धन था उन्होंने इस प्रथा को चलाना शुरू कर दिया, कुछ हिस्सों में। इसलिए बड़ा ज़रूरी है जहाँ मैदानी इलाकों में इसके लिए तेज़ी से कदम उठाये गए हैं खासकर के जो हमारे पड़ोसी प्रदेश हैं वहाँ पर जो कदम उठाए गए हैं और उन्होंने सख्ती से उठाए हैं और मैं उम्मीद करता हूँ कि हम इस लानत को खत्म कर सकेंगे, इस मुल्क के अंदर।

(13 फरवरी, 1976)

महिलाओं के प्रति सहृदयता

मेरी किताब 'पोलैंड्री इन हिमालयाज़' से बड़ी तकलीफ है और मेरा बराबर ख्याल रहा है कि जहाँ किसी को तकलीफ पहुँचे, वह सवाल न हो। खासतौर पर महिलाओं की बेहुरमती या बेइज्ज़ती का सवाल हो, मेरे ख्याल में यह तो डॉ. परमार के मरने के बाद ही होगा, उससे पहले तो वह सोच नहीं सकता कि किसी महिला की बेहुरमती या बेइज्ज़ती हो। ... यह जो ख्याल रहा है माननीय दोस्तों का कि परमार ने यह कर दिया, चाहे चीफ मिनिस्टर की हैसियत से नहीं लिखा है, मगर मेरा एक दर्जा है और मैं यह उम्मीद करता हूँ कि मैं समाज की इज्ज़त करूँ और कोई ऐसी बात न करूँ जिससे कि समाज के किसी व्यक्ति को तकलीफ हो जाए।... मेरी नीयत तो किसी को ठेस पहुँचाने की नहीं है और खासतौर पर महिला वर्ग जिससे मैं तो बदनाम हूँ। सब जानते हैं कि मेरे ऊपर तो इल्ज़ाम है कि मैं महिलाओं की ज़्यादा इज्ज़त करता हूँ, उनकी ज़्यादा कद्र करता हूँ और महिलाओं का ज़्यादा काम करता हूँ। डॉक्टर साहब के पास किसी महिला को भेज दो, काम हो जाएगा। मैं यह मानता हूँ, आखिर मैं भी इन्सान हूँ और मैं सुनता हूँ। यह मेरे ऊपर इल्ज़ाम है। मेरे दिल में तो सब महिलाओं की कद्र है। खासतौर पर पहाड़ी महिलाओं की।...

मेरा उनके आगे सिर झुकता है। मेरी माँ और दादी पहाड़ी थीं।

(20 फरवरी, 1976)

भाषा एवं संस्कृति

हिन्दी भाषा : माननीय अध्यक्ष महोदय, हिंदी के प्रयोग सम्बन्धी इस प्रस्ताव पर विचार हुआ और संशोधन कोई भी नहीं हुआ। प्रश्न इसमें यह उत्पन्न हुआ है कि इस प्रस्ताव को स्वीकार करने की कोई आवश्यक्ता है या इस पर माननीय मित्र श्री घनश्याम जी पुनः विचार करके इसको वापिस लेना उचित समझेंगे। इस सदन को यह चेतावनी देना आवश्यक हुआ है कि पीछे मंत्रिमंडल बनने के कुछ दिनों पश्चात् एक सम्मेलन, जितने हमारे जिले

के कर्मचारी हैं, उनका किया गया और उसमें यह निश्चय हुआ कि जितना भी जिलों में नीचे के दफ्तरों से पत्र-व्यवहार किया जाए वह सब हिन्दी भाषा में हो, राष्ट्रभाषा में हो और अगर किसी जगह, जैसे कि इस सदन का ध्यान दिलाया गया है इसके विरुद्ध कोई कार्रवाई हुई हो तो माननीय सदस्य कृपा करके उसकी सूचना सम्बन्धित मंत्री को दे दें। क्योंकि यह निश्चय है कि राष्ट्रभाषा को अपनाना है और अपनाया गया है।

हिमाचल प्रदेश ने सबसे पहले इस बात में अपना पग आगे बढ़ाया और उसके ही अनुसार जितने भी कारोबार यहाँ चलने वाले हैं, वे अब हिन्दी में ही चलने वाले हैं। सरकारी कर्मचारियों के बारे में विशेषकर सोचना यह ज़रूरी होता है कि कोई ऐसा प्रतिबन्ध लगाना जो कि विधान के भी विरुद्ध हो, ठीक नहीं है और उसको कार्यान्वित करना काफी कठिन हो सकता है। कठिन ही नहीं बल्कि कई तरह की उसमें वैधानिक कठिनाइयाँ सामने आ सकती हैं। इसके लिए आदेश जारी है कि सभी महकमों के जितने भी कार्यालय हैं वे हिन्दी को सीखने का ज़्यादा-से-ज़्यादा यत्न करें जिससे जितना भी कारोबार है, उनमें वह हमारा राष्ट्रभाषा में हो सके।

(24 अक्तूबर, 1952 सरकारी कामकाज में हिंदी भाषा के प्रयोग पर विचार)

पहाड़ी भाषा

हिमाचल प्रदेश की तरक्की के लिए अपने नौजवानों के हक-हकूक को, उनकी हिफाज़त के लिए, हमारी जो संस्कृति है और हमारी जो भाषा है, उसको भी कायम रखना है और उसको कायम रखना मैं ज़रूरी समझता हूँ। उनको बिल्कुल ऐसी हालत में रहने दें जिसमें उनको बाद में कोई रुकावट न हो। हिमाचल प्रदेश की पहाड़ी भाषा की जो बात है, वह भी सबसे ज़्यादा ज़रूरी है। मेरे दोस्त जो अन्तर्राष्ट्रीय या राष्ट्रीय भाषा की बात करते हैं, मैं तो उनकी बात नहीं करना चाहता। उनके विचार अलग-अलग हैं, इसमें मेरा झगड़ा नहीं क्योंकि उनका मत अलग है। वे तो यह कहते हैं कि सारा मुल्क एक होना चाहिए, ये प्रदेश नहीं होने चाहिए। यह गलत बात है। एक ही देश होना चाहिए, एक ही भाषा हो, हिन्दी हो, वह तो उनका मत है। उनके मत से मेरा कोई झगड़ा नहीं मगर हमने देखना है कि अगर हम अपनी संस्कृति और अपनी भाषा की तरक्की चाहते हैं तो इससे हम संकुचित कैसे हो गए? बंगाल में बंगाली ने तरक्की की, मद्रास में मद्रासी ने, तो वहाँ जब वे संकुचित नहीं हुए, पंजाब में पंजाबी को बढ़ावा दिया, वे संकुचित नहीं हुए और अगर पहाड़ में पहाड़ी भाषा या हिमाचल अपनी भाषा को बढ़ाता है, तो वे संकुचित हो जाएँगे और ऐसी बात करते हैं जिससे सारे मुल्क को ख़तरा हो जाए। यह मेरे दिमाग में बात नहीं आई। पहाड़ी भाषा का वही दर्जा होना चाहिए जो किसी और भाषा का अपने प्रदेश के अंदर है।...

(14 मार्च, 1968)

मैं बराबर इस कोशिश में हूँ और इसीलिए मैंने अपने फाजिल दोस्तों की एक मीटिंग बुलवाई, माननीय सदस्यों से बात की और आइंदा भी बात करेंगे। यह मामला मेरे नज़दीक राजनैतिक नहीं है, यह पोलिटिकल नहीं है, इसको राजनैतिक रंग देने की जरूरत नहीं है। इसमें जो थोड़ी-सी बात है वह ज़रूर करनी होगी और मज़बूती से करनी होगी, उसमें कोई शुबहा की बात नहीं रहती है। एक बात को मैं मानता हूँ कि उसमें मुगालते हो सकते हैं।

जो अपने प्रदेश को पहाड़ी भी कहता हो और वहाँ पहाड़ी भाषा के खिलाफ हो, यह बात नहीं हो सकती। यह ठीक है और सभी मानते हैं कि इसमें जिस तरह से दूसरी भाषाओं में लिखित रूप में रंग दिया गया है वह नहीं दिया गया। तो इसमें लोगों का कसूर नहीं, आपका और मेरा कसूर भले ही हो सकता है, उन सरकारों का कसूर हो सकता है कि उनको पढ़ाने में उन्होंने मौका नहीं दिया न कि उनकी लिपि का जिससे वह बेचारे अनपढ़ ही रहे। मगर अब उनको मौका है।

(02 अप्रैल, 1968)

(हिमाचल प्रदेश विधानसभा में डॉ. यशवंत सिंह परमार पुस्तक से साभार)

यह कहा जाता है कि पहाड़ी लैंग्वेज डॉ. परमार के दिमाग का इफतराह है, जिस दोस्त का यह ख्याल है और जो उनका नारा है तो उस पर तो मैं ज़्यादा बात नहीं करूँगा क्योंकि मेरे फाज़िल दोस्त प्रार्थी जी ने एक सबक-आमोज़ भाषण माननीय सदन में दिया और मैं उनमें से कोई चीज़ दोहराने वाला नहीं हूँ मगर जो ज़रूरी बातें आई हैं वे लाज़मी तौर पर माननीय सदन के सामने रखना चाहूँगा कि यह पहाड़ी लैंग्वेज़ की बात आज पैदा नहीं हुई, यह मुद्दतों से है, फर्क इतना है कि दूसरी जो ताकतें थीं उनको मौका मिल गया इस वजह से उन लोगों ने अपनी भाषा को रूप दे दिया और बदकिस्मती है इस प्रदेश की कि यह ऐसे हालात में रहा कि एक-दूसरे से ताल्लुक नहीं था, छोटी-छोटी राजों-रजवाड़ों का राज था, और वह हिस्सा यहाँ पर ज़बरदस्ती पंजाबी लाना चाहता था और एक दफा तो यह भी कहा गया कि पंजाबी लैंग्वेज़ राइज़ करो अदरवायज़ सत्याग्रह स्टार्ट्स। तो पंजाब में जो लोग नाकामयाब हुए तो उन्होंने हिमाचल पर अपनी आँख गाड़ दीं। पंजाबी वालों का अपना प्रदेश बन गया है और हमारी किसी से कोई लड़ाई नहीं हमने पहाड़ी भाषा बनानी है वह पहाड़ी भाषा जिस के साथ मुझको कहना होगा कि पंजाब के राजनीतिज्ञों ने बुरा व्यवहार किया और इसको कुचलने में और इसको कमज़ोर करने में जाने या अनजाने हर प्रयत्न किया। यह प्रयत्न दीदोदानिस्ता थे या अनजाने में यह मैं नहीं कह सकता और आज वही लोग यह कहते हैं कि यह तो एक बोली है, ज़बान नहीं। ज़बान वह होती है जिसमें कोई लिटरेचर हो। लिंगुइस्टिक सर्वे डॉ. परमार ने नहीं लिखा या जो नक्शे बनाये थे हमने नहीं बनाए, वह हकीकत है और एक फाज़िल दोस्त ने बड़े जोश के साथ यह गलत बात कही कि रूस में रूसी भाषा को छोड़कर और कोई भाषा नहीं है। ऐसा उन्होंने अनजाने में कह दिया। रूस में तो कई भाषाएँ चलती हैं। मैं तो कहूँगा कि वे इस तरह की गलत बातें सदन के सामने न रखें लेकिन साहित्य और धर्म ग्रंथों और शास्त्रों में से कोई ज़रूरी चीज़ें मिलती हैं तो ज़रूर लाएँ उन से सब को जानकारी मिलती है, मगर ऐसी बातें नहीं आनी चाहिए। रूस में तो हर एक कंटोन में अपनी भाषा है और उनका कहना कि वहाँ और कोई भाषा नहीं है ऐसी नामुनासिब बात ठीक नहीं होती। बहरहाल यह मेरा फैसला नहीं, हुक्मसिंह कमेटी का फैसला है।

सारी बात तो देश के इंटैग्रेशन की है, लेंगुएज़िज़ की बात नहीं है और जगह तो स्क्रिप्ट बन गई और वे लोग लिखते चले गए लेकिन हमारी भाषा लिखित रूप में नहीं आ सकी तो उसके मुताबिक जब हम भाषा की बात कहते हैं तो बराबर ख्याल आता है अपने

शरीर को खड़ा करने का। इंसान और हैवान में फर्क है लेकिन शायद भाषा का ख्याल उनको भी आता है और साइंसदानों को कहना है कि वे बोलते भी हैं लेकिन सुनाई नहीं देता। खैर भाषा से जो आत्मा है उससे कम शरीर बनता है। ज़ाहिर है कि शरीर बन गया है, हिमाचल बना लिया है, ढाँचा खड़ा कर दिया है मगर अभी तक उसमें आत्मा नहीं रखी है और इसके बगैर उसका कोई दर्जा नहीं बनता। तो उस आत्मा के बारे में आज हम कोई बात न सोचें बल्कि और ही हवाई बातें करें तो मैं नहीं समझता कि हम कहाँ तक ठीक हैं। मैं नहीं जानता कि जब हर एक प्रदेश की अपनी भाषा है तो हम भी अपनी भाषा बना लें तो इसमें क्या हर्ज़ है। यह तो एक असूली बात है, रूह की आत्मा की जिस के ज़रिए से हमारी संस्कृति और हमारा इतिहास कायम रहता है और दूसरी तरफ जो आपका पहाड़ी साहित्य है वह आता है। एक दोस्त ने कहा कि हमारा साहित्य है ही कहाँ। मैं चाहूँगा कि मेरे फाज़िल दोस्त महज़ जो डॉ. कश्यप हैं कुल्लू के उन्होंने कुलबी में लोक साहित्य की किताब लिखी है और उस पर डॉक्टरेट ली है रिसर्च करके उसको पढ़ कर देखें। यह महज़ कुल्लू की बात नहीं है, यह साहित्य कुलबी, कांगड़ी और मण्डयाली में साहित्य से भरा हुआ है। मगर साहित्य वही समझा जाता है जिसकी एक विशेष लिपि हो और उसे भाषा और लिपि में उसको लिखा गया हो वरना नहीं और साहित्य की असली बुनियाद जो है वह कविता में है लिखित कविता में। नसर में तो कोई भी हो सकता है, कोई भी समझबूझ वाला लिख सकता है लेकिन पोयटरी लिखने के लिए अच्छे विचार और दूर की उड़ान की ज़रूरत होती है और वह साहित्य छपता है। अगर हमें अपने साहित्य की कदर नहीं है तो किसको हो सकती है।

हिमाचल में पढ़े-लिखे नौजवान जिनका ताल्लुक शहरों से हो गया है, हिमाचल के शहरों में हो गया है, हिमाचल के शहरों से या पंजाब या दिल्ली से उनको पता ही नहीं है। हमारे प्रदेश में भी कोई कला या साहित्य है, यहाँ भी झंझोटी है, नाटौ और हार है और इसके साथ में कितने ही नाम ले सकता हूँ, उनमें हमारा साहित्य छिपा हुआ है और उसमें ख्यालात की उड़ान है। वे तो वहाँ तक पहुँच ही नहीं सकते, वे तो उनको मनसूब करते रहते हैं एक गलत तरह के जीवन से उनके लिए भी वह व्यभिचार है, हमारे लड़के और लड़कियाँ गा रहे हैं, क्या गा रहे हैं, यह हमारे लिए फज़ूल-सी बात है क्या गाते हैं, मतलब क्या है, क्या गाना गाया उसको समझते नहीं और महज़ सुनी ही बातें हैं और इसलिए हमने वह जो बहुत ही कीमती दौलत छिपी हुई उस पर कुछ करने का निर्णय किया है और वे उस तक पहुँचे नहीं हैं और जब तक उस तक नहीं पहुँचेंगे आप उन लोगों का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकते जिन्होंने आपको यहाँ भेजा है। चन्द शहर के लोगों ने तो नहीं भेजा? मेरा तो जो चुनाव क्षेत्र है वहाँ तो ऐसे नहीं चलता, अपनी भाषा रखनी पड़ती है और हिन्दी में वह नहीं समझ सकते। किस तरह की यह हकूमत है कि आज 20 साल हो गए हमको आज़ादी को हासिल किये हुए पर जो गाँव का रहने वाला आदमी है, पहाड़ी आदमी है, पहाड़ का रहने वाला है वह सरकारी कर्मचारियों से, सरकार से अपनी भाषा में बात नहीं कर सकता, अपनी भाषा में जवाब नहीं ले सकता। दुनिया-भर में कहीं चले जाइये, किसी भी गणतंत्र को ले लीजिये, इंगलिस्तान में जाइयेगा। जो वह घर में बोलता है वही सरकारी अफसर से बोलता है और उसी भाषा में जवाब लेता है। जर्मनी में चले जाइये, फ्रांस में चले जाइये, दुनिया-भर में जाइये वह अपनी बोली में बात करता है और उसी में सरकार का जवाब मिलता है।

एक बात और है कि अपनी बात उसको कैसे समझायें, उसको हिन्दी ठीक से बोलना नहीं आता, हिन्दी भाषी हम हैं ज़रूर, सरकारी भाषा है, आम आदमी तो नहीं जानता, बोल नहीं सकता और उस वक्त तैयार होना पड़ेगा बात करने के लिए अगर हम उससे बात करते हैं तो वह अपने दिल की बात नहीं कर सकेगा क्योंकि वह आपको शहरी समझता है और अगर हमने कहीं पतलून पहन ली या धोती लगा ली तो जब वह गाँव में जाता है तो उसको देखकर वह सोचते हैं पता नहीं कौन आ गया। हमको ऐसा करना पड़ेगा कि लोगों के विचार और लोगों की भावनाओं का असर पड़े सरकार के ऊपर और हम अभी तक ऐसी फिज़ा पैदा नहीं कर पाये और जब तक वह नहीं पैदा होती, सही तौर पर पंचायती राज्य नहीं है, गणतंत्र नहीं, जनता का राज्य नहीं है, तब तक कुछ पढ़े-लिखे लोगों का ही राज्य है और वह चलने वाला नहीं है। आज जो मुसीबतें आ रही हैं उनकी एक वजह है। मद्रास में क्या कुछ हुआ, मेरे फाज़िल दोस्त को उससे तो ज़रूर तकलीफ पहुँची या जिस तरह से फैलाने की बात है पर जो हमारे हिन्दी के इम्पीरियलस्टिक हैं उसका नतीजा यह सब है, वह नाराज़ भले ही हों, मगर यह उसका नतीजा है वरना जो मद्रास में, आन्ध्र में हिन्दी के पढ़ने में इतने लोग लगे हुए थे जहाँ हिन्दी प्रचारिणी सभा द्वारा इतना काम हो गया था वह आज सब ठप्प हो गया। तो हम उसको भी समझें। हिन्दी का होना ज़रूरी है राष्ट्रीय भाषा है, हमारी भाषा है क्योंकि सरकार ने इसको सरकारी भाषा मान लिया है मगर यह समझना होगा कि हिन्दी ही होगी और कोई न हो और अपनी भाषा को महज़ डायलेक्ट समझ कर छोड़ दें तो यह बात चलने वाली नहीं और जगह चलती नहीं। फिर कही गई थी आदर्श की बात और दूसरी तरफ सच्चाई की बात। यह प्रदेश आदर्श स्थापित करे ताकि बाहर के हमारे दोस्तों को यह मालूम हो कि यहाँ पर सब के लिए जगह है। हर प्रदेश तो दीवार खड़ी कर दे तो यह बात चलने वाली नहीं है। कांगड़े से कुछ अखबार लिखेंगे कि पंजाबी की पढ़ाई हो और उसको सहूलियत मिले। जितने भी अल्पसंख्यक लोग हैं संविधान ने उनके लिए सब हिफाज़त दी है, हर तरह का मौका मिलेगा, कोई उसमें रुकावट नहीं मिलेगी, उसके खिलाफ हम चलने वाले नहीं हैं, उसमें सुविधा देने वाले हैं, कोई अड़चन पैदा करने वाली बात नहीं है। लेकिन यह ख्याल कि पंजाब में पंजाबी की वजह से नौकरी मिलेगी, इसलिए उसको पढ़ें तो वह अपने ख्याल से इसको ज़रूर बाहर कर लें। आज हालात क्या है पंजाब में और हरियाणा में। हरियाणा में तो हरियाणवी के अलावा किसी को जगह नहीं मिलती, पंजाब में भी खास ढाँचा ऊपर से नीचे तक देखते हैं, पंजाबी तो हैं ही और उसको लेंगे वरना नहीं लेंगे।

अपने ही जो नौजवान लड़के और लड़कियाँ हैं, कम से कम उनके लिए ही रोज़गार खुलने वाले हैं या हैं, उनमें कम से कम आपस में ही मुकाबला की ज़रूरत रहे तो इस से इन्कार करना कोई ठीक नहीं है और फायदा भी यहाँ आने वाला है थोड़े दिनों में और कोई भी ढाँचा बना है हमारे प्रदेश का उसको अभी चलाना है। लोगों को जो परेशानी होती है, वह हकूमत से सम्बन्धित होती है। जहाँ तक हिन्दी का सम्बन्ध है वह तो हमने सरकारी भाषा मान ली यह तो बात देखनी होगी कि कितना दरवाज़ा खुला रहेगा, क्या सबके लिए दरवाज़ा खोल दिया जाएगा, कि हिमाचल प्रदेश इतना विशाल हो सकता है। इस बारे में और सब लोगों के लिए दरवाज़ा खुले, जैसा कि मेरे भाई ने कहा कि हम ही हिन्दी के हामी हैं और हम यह दिखायें कि हम सब से ऊपर हैं हिन्दी के मामले में तो यह बात चलने वाली नहीं।

यहाँ पर जनमत की बात होती है। जनमत किसके साथ है? जनमत बराबर पहाड़ी के साथ है, पहाड़ी लिटरेचर के साथ है। क्या वह पंजाबी के साथ है, क्या दूसरी भाषा के साथ है, जनमत इसका फैसला करेगा और फैसला करना हमने अपनी ज़िम्मेदारी समझी। कुछ लोगों की बात कौन सोच सकता है। कुछ इस तरह की बातें की जाती हैं, जिस को सुनकर मुझे भी तकलीफ होती है जो मुझ तक आती है। किसी ने कहा कि यह पोलिटिकल पार्टी की बात है, हकूमत बदलती रहती है कल को दूसरी आयेगी वह कुछ और करेगी। यह उन लोगों की बातें हैं जिन्होंने अपने आप को लोगों के साथ मिलाया नहीं, जिन्होंने गणतंत्र को समझा नहीं और जिन्होंने अपने आपको अभी तक एक ऐसी खलिश पैदा की हुई है पढ़े-लिखे और अनपढ़ की उसको समझने की कोशिश नहीं की। एक बराबर ध्यान चला हुआ है, ख्याल चला हुआ है, इस माननीय सदन में भी घूमता रहा, मेरे दल के दोस्त तो जानते होंगे कि एक ऐसी लहर शुरू हुई है जो पढ़े-लिखे हैं वह अपने को अनपढ़ों से अलग समझते हैं। अंग्रेज़ी बोलने के खिलाफ सारे मुल्क में एक लहर चली है और हिन्दोस्तान में है यह बराबर चली है और हम उससे भी आँखें नहीं मूँद सकते जिसे लोगों के साथ चलना है, अपनी आँखें बन्द नहीं कर सकते। इसकी वजह बुनियादी यह है, ख्याल यह है कि कुछ पढ़े-लिखे लोग जो राजनीति का भी फायदा उठाते हैं, शासन में भी काम करते हैं, अनपढ़ लोग ऐसा नहीं सोच सकते और यह चलने वाली बात नहीं है। मुझे अभी-अभी एक पर्चा मिला है कि हमारे जो विरोधी दल का यूनाइटेड फ्रण्ट बना हुआ है, उसने फैसला किया है कि पहाड़ी लैंग्वेज़ होनी चाहिए, मुझे बड़ी खुशी है।

मैं बराबर इस कोशिश में हूँ और इसीलिए मैंने अपने फाज़िल दोस्तों की एक मीटिंग बुलवाई, माननीय सदस्यों से बात की और आयन्दा भी बात करेंगे। यह मामला मेरे नज़दीक राजनैतिक नहीं है, यह पॉलिटिकल नहीं है, इसको राजनैतिक रंग देने की ज़रूरत नहीं है। इसमें जो थोड़ी सी बात है वह ज़रूर करनी होगी और मज़बूती से करनी होगी, उसमें कोई शुब्हा की बात नहीं रहती है और जितनी मदद उसमें मिलेगी। एक बात को मैं मानता हूँ कि उसमें मुगालते हो सकते हैं। जो अपने प्रदेश को पहाड़ी भी कहता हो और वह पहाड़ी भाषा के या पहाड़ी के खिलाफ हो यह बात नहीं हो सकती। यह ठीक है और सभी मानते हैं कि इसमें जिस तरह से दूसरी भाषाओं में लिखित रूप में रंग दिया गया है वह नहीं दिया गया। तो इसमें लोगों का कसूर नहीं, आप का और मेरा कसूर भले ही हो सकता है, उन सरकारों का कसूर हो सकता है कि उनको पढ़ाने में उन्होंने मौका नहीं दिया न कि उनकी लिपि का जिस से वह बेचारे अनपढ़ ही रहें। मगर अब उनको मौका है। वही सवाल थोड़ा सा इसके बारे में है। मैं सोचता हूँ मेरे फाज़िल दोस्त इस बात को नहीं भूलेंगे क्योंकि इस में जज़्बाती बात नहीं है। अभी तो पंजाब में बराबर वह अनासिर मौजूद है और अनासिर ही मौजूद नहीं है हमारी जो वहाँ सबसे बड़ी संस्था है उनका प्रस्ताव है कि बहुत से पहाड़ी इलाके जो पंजाबी बोलने वाले हैं, जो हिमाचल में चले गए वे वापस लेने चाहिएँ, क्योंकि वे पंजाबी बोलने वाले हैं। तो किसी वजह से भी यह तहरीक व आन्दोलन खत्म नहीं है। मेरे फाज़िल दोस्त ने पिछली बार भी कहा था, किसी साहब ने उधर से कहा था कि डॉक्टर साहब को तो ख्याल रहता नहीं है। तो ऐसी कोई बात नहीं है कि मुझे ख्याल नहीं रहता हो। वहाँ की कमेटी जो इसकी प्रदेश लेवल की है, उनका प्रस्ताव देख, वे यही बार-बार कहते हैं कि पंजाबी

भाषाई लोग हिमाचल प्रदेश में चले गए हैं, हम को उनको वापस लाना है और यह मर्ज़ बराबर तब तक रहेगा जब तक आपने पहाड़ी भाषा को ठीक दर्ज़ा देकर, आखिर में चोट जो पहुँचानी चाहिए थी इस सिलसिले में उनको वह आप पहुँचा न दें वरना आज जो वे कहते हैं, अभी कहा है, पंजाब बाऊंडरी कमीशन के वक्त भी कहा तो यह सवाल उठा है कि किस तरह से कांगड़े को वापस लाएँ। हमारे कांगड़े के दोस्तों के बारे में उनको बड़ी चिन्ता रहती है कि ये बोलते पंजाबी हैं ये तो ज़बरदस्ती हिमाचल में चले गए और वे दोस्त तो ऐसे भी हैं जो कहते हैं कि हम यह कुर्बान कर दें। ठीक बात है वह अपनी तरफ से चला सकते हैं तो यह एक रिपोर्ट है उस कमेटी की जो मैंने बताई। फिर जब पंजाब बाऊंडरी कमीशन बैठा उनके सामने फिर यह सवाल आया कि कौन-कौन से एरियाज़ हैं जो पहाड़ी बोलने वाले हैं या पहाड़ी बोलने वाले नहीं हैं। मुझ को खुशी है, सारी रिपोर्ट में पढ़ा कि जो डिमांडज़, जो मुतालबा हिमाचल प्रदेश कांग्रेस पार्टी की तरफ से या असैम्बली पार्टी की तरफ से हुआ या दूसरे दोस्तों की तरफ से हुआ, जो ये चाहते हैं कि पहाड़ी प्रदेश के जो इलाके उन्होंने कहे थे कि ये पहाड़ी बोलने वाले हैं उनको तसलीम किया है कि बोलने वाले हैं। महज़ चूँकि तहसील के टुकड़े नहीं हो सकते इसलिए वे नहीं आए सिवाय तहसील पठानकोट के। उस में भी दूसरे पैरा में मुनासिब है, वह मैं इस माननीय सदन के नोटिस में लाना चाहता हूँ।

"These Districts that is the hill areas, Simla, Lahaul and Spiti, Kulu and Kangra, these districts have at all times been regarded as hill districts. They contain mountain ranges with very high peaks. A large number of people residing in these Districts are Pahari and depend for their livelihood primarily upon hill produce. The cultural affinity of the people residing in these districts with the people of Himachal Pradesh appear to have been accepted by all authorities customs, manners festivals, food habits, language and dress of the people of this region are manned. It was claimed on behalf of the protagonists of the Punjabi language that even that Simla, Kulu, Lahaul and Spiti are hilly areas, Kangra district is not hill area and has no linguistic affinity with the people of Himachal Pradesh." We are unable to accept the claim.

क्योंकि वे जानते हैं मगर वह बराबर चलती रही बात और इसलिए चलती रही कि ताकत थी उन लोगों के अन्दर। उनके अखबार, रसाले, यह वह सब चलते हैं मगर जो हिमाचल प्रदेश की बात रही भाषा की वह इन्होंने मानी और एक बात जो और दिलचस्प है वह यह है कि आज सब जगह बात करते हैं लैंग्वेज़ की डायलेक्ट की बात कहीं नहीं है क्योंकि डायलेक्ट तो डिफरैन्ट हैं, हर जगह ही होंगे, हर प्रदेश में हैं। पंजाब लैंग्वेज के अन्दर कितने ही डायलेक्ट्स हैं। उनका मेरे दोस्त मुलाहजा करें। अभी पिछले दिनों एक लेख था ट्रिब्यून में, लैटर टू दि एडिटर में यह कहा है कि कम से कम 10 डायलेक्ट तो पंजाबी में भी हैं मगर उसकी वजह से यह नहीं है कि दस लैंग्वेज़िज़ ही गलत हो गई। वह एक लैंग्वेज़ के बैक ग्राउंड होती है मुख्य एक ही लैंग्वेज़ होती है। उसकी फिर उप-भाषाएँ होती हैं। वह अलग बात है। तो ये तो भाषा और उप-भाषा है। डायलेक्ट की बातें तो थोड़े दिनों में निकालनी पड़ेंगी। डायलेक्ट की बात तो अंग्रेज़ों के ज़माने से चली थी। तो उसी तरह से हम भी आज

तक उसे लिए हुए हैं। लेकिन जो लैंग्वेज़ बनती है। जो बुनियादी एतराज़, जैसा कि मैंने कहा, मुझे जो तकलीफ हुई वह इस बात से हुई कि मेरे फाज़िल दोस्त ने ख्याल यह किया, ऐसा मालूम देता है जैसे कि कोई भी चीज़ हिमाचल प्रदेश में आ गई हो कि हिमाचली भाषा हो और यह आज तक कहीं थी नहीं, कहाँ से निकाल डाला उसको, यह नया ख्याल कहाँ से पैदा हो गया। एक बात जो नई हुई वह यह है कि जिस भाषा को आज तक रूप नहीं दिया गया था, जो भाषा महज़ गाने-बजाने में, बात करने में, कला में ही बन्द रह गई थी और जिस को कि लिखाई के रूप में, भाषा के रूप में आगे नहीं लाया गया, क्योंकि लिपि न उनको आती थी और न ही शब्द लिखने उनको आते थे।

हिमाचल प्रदेश तो शासन के काबिल अब हुआ है, अभी तक यह जिन हालात से गुज़रा है वे मेरे फाज़िल दोस्तों को भूले नहीं हैं। पहले यह छोटा-सा प्रदेश बना, फिर बिलासपुर इसमें मिला, फिर हम से असैम्बली छीनी गई और टैरिटोरियल कौंसिल आई और उसके बाद फिर असैम्बली आई इसके बाद फिर दूसरी असैम्बली आई और अब जाकर कहीं एक ठीक तरह का रूप इसे मिला है जो कि मिलना चाहिए था, जो एक अच्छे बड़े प्रदेश का जो पहाड़ी लिहाज़ से होता है। तो असली ताकत तो पहाड़ के लोगों में, पहाड़ियों में अब आई है एकम नवम्बर, 1966 के बाद और इसीलिए अब उन लोगों का जिन लोगों के हाथ में ताकत आई है फर्ज़ हो जाता है कि यह शरीर जो उन्होंने बना दिया है जो खड़ा कर दिया है, मुजस्मा न रह जाए, वह बुत ही न रह जाए, बल्कि उसके अन्दर जो शक्ति है, जो आत्मा है वह हम भरें। तो इसका एक भाषा ही ज़रिया निकलता है। उस भाषा को महज़ अपनाएँ ही नहीं बल्कि उस भाषा से इसको तरक्की दें, खोज के ज़रिए, जानकारी के ज़रिए। मेहनत का काम है उस में। मगर क्या हम मेहनत से डरने वाले हैं या हम मुश्किलात से डरते हैं। उसका मुकाबला करेंगे और उसका हमने मुकाबला किया है उस वक्त जब हिमाचल प्रदेश को ताकत नहीं थी। यह प्रदेश बहुत छोटा था और हर तरह के हमले इस पर थे। आज हम उन हालात से बाहर निकले हैं और अपनी आवाज़ उठा सके हैं, अपनी भाषा का अपने आप इंतज़ाम कर सके हैं, इसको नया रूप दे सके हैं, नई शक्ल दे सके हैं जो कि इसको मिलनी चाहिए। उस में कोई मतभेद की बात होने वाली नहीं है।

मुझ को बड़ी खुशी है कि मेरे दोस्त श्री लालचन्द प्रार्थी जी ने सारे प्रदेश के जितने साहित्यकार थे, लेखक थे, कवि थे, उन सबको इकट्ठा किया, उनसे बातचीत की, सेमिनार किया, उनके ख्यालात लिए तो कुछ प्रस्ताव उनके आ गये हैं अब उन पर आगे विचार होगा। उसके लिए आपको मालूम है कि एक इंस्टीच्यूट ऑफ लैंगवेज़िज़ शुरू किया है लेकिन इतने से ही होने वाला नहीं है यह काम। अभी काम तो बड़ा है। मगर ऐसी जल्दबाज़ी न मेरे फाज़िल दोस्त कोई समझें कि कोई ऐसी जल्दबाज़ी करने की बात है कि एक रात में उठे और सुबह को हुक्म दे दिया तो ऐसी कोई बात होने वाली नहीं है, इस में वक्त लगेगा। मगर यह भी नहीं होगा कि महज़ हम सोचते रहें, सोए रहें और यह सोचें कि धीरे-धीरे करेंगे। अब धीरे-धीरे करने का ज़माना बीत गया है। अब तो इसको हिम्मत करना होगा मगर समझ से करना होगा। अगर तो मेरे दोस्तों की राय यह है कि वे मेरे ख्याल से सहमत हैं तो ठीक हैं मगर जिनको शायद हमारी ज़रा इस तेज़-रफ्तारी से खतरा है और उस तेज़-रफ्तारी का समझा मतलब यह कि सोची-समझी की रफ्तार को ठीक रखें, अगर तो सूझबूझ की रफ्तार से उनका

मतलब है तो मैं सहमत हूँ मगर, अगर इनका मतलब यह है कि आप काम मत कीजिए और इस महकमें के लोगों को जरा कह दें कि वे बैठे रहें और चैन करें। आहिस्ता-आहिस्ता चलें तो मैं समझता हूँ कि उनसे तो उनकी मनशा पूरी होगी नहीं। हम तो यह चाहते हैं कि हम जल्दबाज़ी कोई ऐसी न करें जिस से कोई नुक्स होता है, जिससे कि कोई खराबी होती है, जिससे कि समाज के किसी हिस्से को कोई तकलीफ पहुँचती है या जिसकी कोई ज़रूरत नहीं है। उसकी तरफ हम बेशक ख्याल रखें मगर बुनियादी तौर पर इसमें जितनी तेज़ी हो सकती है काम के करने में, होशोहवास के साथ, समझदारी के साथ, उन सब उलझनों को जो हमारे सामने आनी हैं उनको निकालते हुए तो हमें बिल्कुल तेज़ी के साथ काम करना होगा।

पहाड़ के तो सब लोगों के सोचने की बात है। एक वक्त था जब कि हमारे यहाँ पूर्वी पहाड़ी और पश्चिमी पहाड़ी और मध्य पहाड़ी और ये सब पहाड़ियाँ तरह-तरह की थीं। हिमाचल प्रदेश में यह अपने तरह की बनी हुई थी अलग-अलग इलाके ये बने हुए थे और इनमें यह अलग-अलग किसम से चल रही थीं और इनको अलग-अलग रूप दे दिया, क्योंकि इन पहाड़ों का कोई पुरसांहाल था नहीं। वह चाहे उत्तर के पहाड़ों में है, चाहे वह यू.पी. में है, बात तो वही बनती है। उनको ज़बरदस्ती जोड़ दिया गया और उनका कब्ज़ा हो गया। तो औरों ने तो सब ने अपने-अपने प्रदेश के नाम से भाषा बना ली मगर उसके भी चार-पाँच टुकड़े बन गए, कहीं उत्तरी, कहीं पंजाबी, कहीं कुछ और कहीं कुछ। अगर ज़रूरत होगी, प्रदेश के लिहाज़ से अगर कोई हिस्सा बनता है उसको बनाए मगर उसको इस तरह से न सीमित करके रख दें कि वह आगे न फैल सके। मैंने अभी एक किताब पढ़ी है पिछले दिनों मध्य पहाड़ी यानी गढ़वाली। उसको हम सीधे ही गढ़वाली ही क्यों न कह लें। अगर मध्य पहाड़ी उनकी है तो हमारी भी कोई हो सकती है। बहरहाल यह सब चीज़ें जानकारी की हैं, खोज करने की हैं तो हमारे दोस्तों को तसल्ली रखनी चाहिए कि कोई ऐसा काम नहीं होने वाला है जिससे कि एकदम हम पढ़े हुओं को बना दें जैसे कि हमारे पड़ोस के प्रदेश में पढ़े-लिखे लोग एक दम अनपढ़ हो गये। रेलवे स्टेशन पर जाएँ वहाँ पर नहीं कुछ पढ़ा जाए, बसों पर जाएँ वहाँ नहीं कुछ पढ़ा जाए। तो समझ नहीं आती कि यह क्या है और क्या नहीं है, जितने पढ़े-लिखे थे अनपढ़ हो गए, बेकार हो गए। तो कोई ऐसी बात हमारे यहाँ होने वाली नहीं है और दूसरे इसका तो ताल्लुक ही बराबर देवनागरी से है, इसका तो देवनागरी ही स्क्रिप्ट है और उस स्क्रिप्ट को बदलने की शायद ज़रूरत न हो। न हम कुछ ऐसा सोचते हैं। यह मेरा ख्याल बिल्कुल मुनासिब है कि अपने बच्चों के लिए ज़्यादा परेशानी का, बोली का सवाल पैदा न कर दें। वह तो लाज़मी है, वहाँ तक तो हमें सोचना-विचारना है और ऐसे साधन निकालने हैं कि उनके रास्ते में कोई रुकावट न पैदा हो। यह तो लाज़मी तौर पर होगा भी और सरकार सोचेगी भी और सब तरह से सोच-विचार करके ही इसको करेंगे। आमतौर पर इस काम में जितना ज़रूरी है, जितना ध्यान देना चाहिए वह ध्यान देंगे और जितनी मुनासिब तेजी इसके लिए ज़रूरी है वह भी होगी और जो काम धीमा होना है वह धीमा ही होगा। जो कुछ भी इसमें हमको मुनासिब करना चाहिए वह करेंगे। जो काम धीरे करने वाला होगा उसको धीरे-धीरे ही करेंगे।

('सदन के नेता', हिमाचल प्रदेश विधानसभा पुस्तक से साभार)

यादगार छायाचित्र

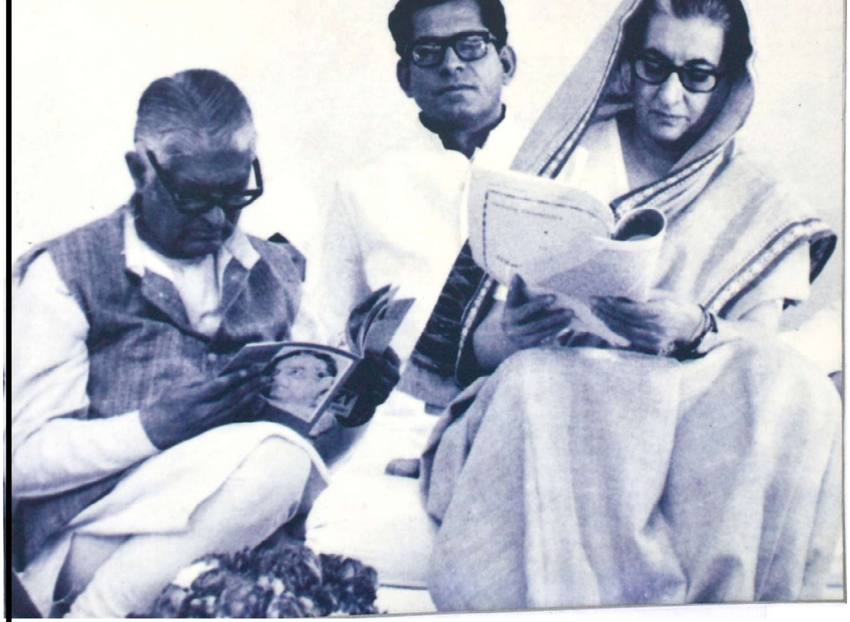

डॉ. परमार, श्रीमती इन्दिरा गांधी के साथ नई दिल्ली में कांग्रेस की राष्ट्रीय कार्यकारिणी में भाग लेते हुए।

श्रीमती इन्दिरा गांधी लोगों का अभिनन्दन स्वीकार करते हुए। साथ में डॉ. परमार, श्री वीरभद्र सिंह एवं श्रीमती लता ठाकुर।

डॉ. परमार, श्रीमती इन्दिरा गांधी एवं श्रीमती लता ठाकुर के साथ किब्बर मौनेस्ट्री से उतरते हुए।

डॉ. यशवन्त सिंह परमार, प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी को मशरूम की खेती के विषय में जानकारी देते हुए

डॉ. परमार, श्रीमती इन्दिरा गांधी, श्री राजीव गांधी एवं श्रीमती सोनिया गांधी के साथ शिमला के प्राकृतिक सौंदर्य का आनन्द लेते हुए।

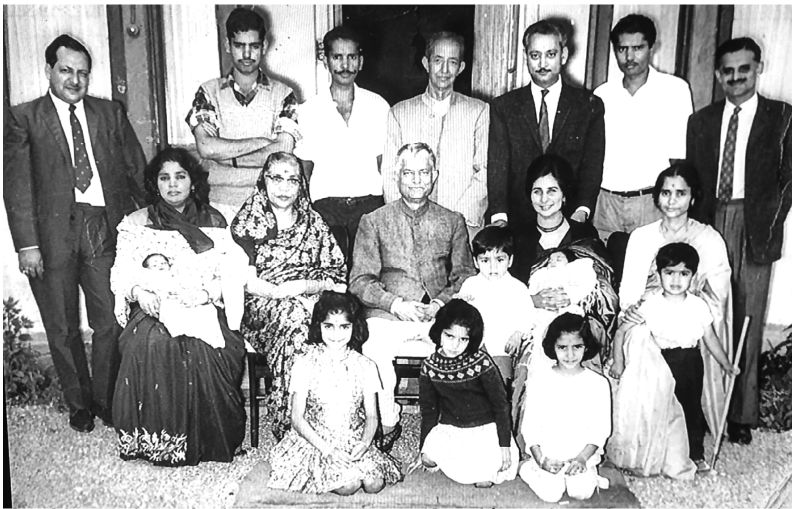

बायें : प्रोमिला (पुत्री), उनके पति जगराज सिंह जमवाल, **दायें :** उर्मिला (पुत्री), उनके पति जनरल महिपत सिंह,
बीच में : भाई जगमोहन सिंह, चारों पुत्र : कुश परमार, लव परमार, जयपाल परमार, जीत परमार

डॉ. परमार एवं श्रीमती इन्दिरा गांधी आम जनता से वार्तालाप करते हुए।

डॉ. वाई.एस. परमार, श्रीमती इन्दिरा गांधी के साथ विचार-विमर्श करते हुए।

श्रीमती इन्दिरा गांधी के साथ डॉ. परमार पारम्परिक भोजन ग्रहण करते हुए।

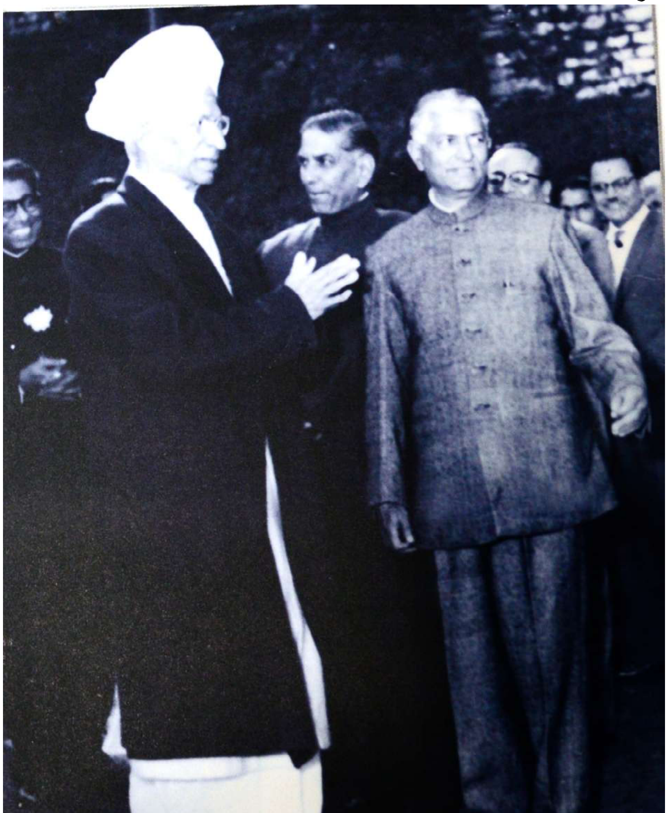

डॉ. परमार, भारत के द्वितीय राष्ट्रपति डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के साथ विचार-विमर्श करते हुए।

डॉ. परमार ग्रामीण क्षेत्र में बच्चों के साथ वार्तालाप करते हुए।

अपने सुपुत्र को गोल्फ सिखाते हुए श्री जीत सिंह परमार साथ में डॉ. परमार भी दिखाई दे रहे हैं।

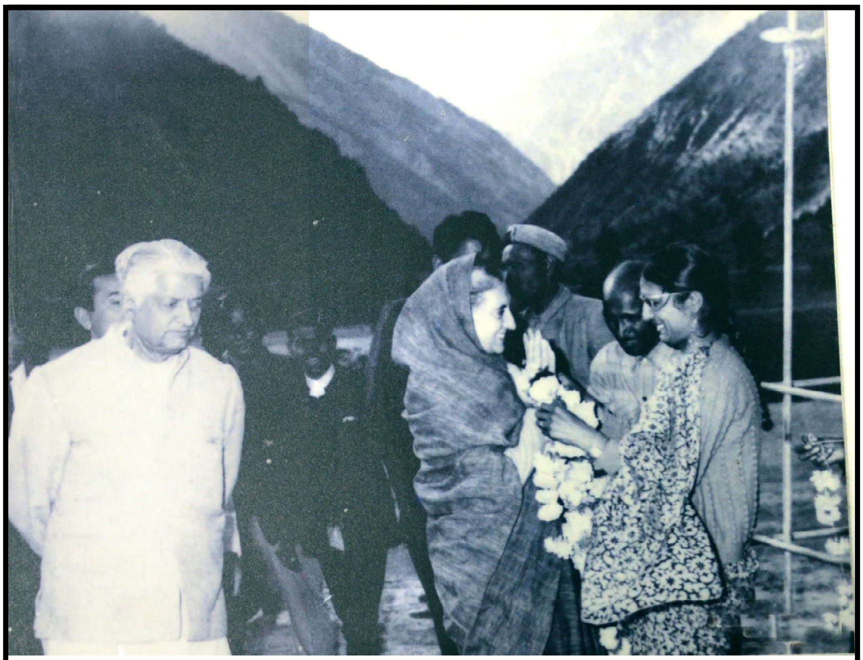

लाहौल तथा स्पीति के कबाइली इलाकों के भ्रमण के दौरान स्थानीय महिलाएँ श्रीमती इन्दिरा गांधी का अभिवादन करते हुए, साथ में डॉ. परमार भी खड़े हैं।

1954 में श्रीमती इन्दिरा गांधी और डॉ. परमार हिमाचल स्पोर्टस क्लब कुफरी में स्कीइंग का आनन्द लेते हुए।

डॉ. वाई.एस. परमार, श्रीमती इन्दिरा गांधी एवं उस समय के राज्यपाल एस. चक्रवर्ती के साथ।

डॉ. परमार, श्री वीरभद्र सिंह एवं श्री राम लाल ठाकुर किसी समारोह के दौरान नृत्य करते हुए।

जीवन वृत्त

डॉ. यशवन्त सिंह परमार : जीवन वृत्त

- 4 अगस्त, 1906 को गाँव चन्हालग, सिरमौर रियासत में भंडारी शिवानन्द सिंह, सिरमौर रियासत के महाराज के सैक्रेटरी के घर जन्म।
- सन् 1922 में स्टेट हाई स्कूल, नाहन से मैट्रिक की परीक्षा पास की। क्रिश्चियन कॉलेज फॉर मैन लाहौर से सन् 1926 में बी.ए. (ऑनर्ज़) की डिग्री।
- केनिंग कॉलेज लखनऊ से 1928 में एम.ए. तथा बाद में एल.एल.बी.।
- 1929-30 में थियोसोफिकल सोसायटी, देहरादून के सदस्य।
- 1930 में वकालत प्रारम्भ।
- 1930 से 1937 तक सिरमौर स्टेट के सब जज और मैजिस्ट्रेट फर्स्ट क्लास।
- 1937 से 1941 तक डिस्ट्रिक्ट एण्ड सैशन जज।
- सन् 1941 से 1943 के बीच लाहौर और दिल्ली में निजी व्यापार।
- सन् 1943 से 1946 तक दिल्ली स्थित सिरमौर ऐसोसिएशन के सैक्रेटरी।
- 1944 में लखनऊ विश्वविद्यालय से 'सोसियो एकोनोमिक बैकग्राउण्ड ऑफ हिमालय पोलिएण्डरी' विषय पर पी-एच.डी. की उपाधि।
- सन् 1947-48 में ग्रुपिंग एंड एमलगामेशन कमेटी ऑफ इंडिया पीपल्ज कॉन्फ्रेंस के सदस्य, प्रजामण्डल सिरमौर के प्रधान तथा सुकेत आंदोलन हिमाचल प्रदेश के मुख्य संचालक आदि पदों पर आसीन।
- सन् 1948 से आखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य।
- सन् 1948 से 1952 तक हिमाचल प्रदेश की चीफ कमिश्नर एडवाइज़री काउंसिल के सदस्य और हिमाचल प्रदेश जुडिशियल कमिश्नरज़ कोर्ट में एडवोकेट के रूप में कार्यरत।
- सन् 1948 से 1950 तथा 1960 से 1964 तक हिमाचल प्रदेश कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष, भारत सरकार प्रेस वर्कर्ज़ यूनियन के सदस्य, हिमाचल प्रदेश गांधी नेशनल मेमोरियल फण्ड के सचिव।
- सन् 1951 में इस्तंबुल (तुर्की) में हुई इंटर पार्लियामेन्टरी कॉन्फ्रेंस में इंडियन पार्लियामैन्टरी डेलीगेशन का नेतृत्व।
- 1952 तक भारतीय संविधान सभा के सदस्य।
- 1952 से 1956 तक हिमाचल प्रदेश के मुख्यमंत्री ।

- 1957 से भारतीय संसद के सदस्य चुने गये तथा इसी अवधि में इंडिया कांग्रेस वर्कर्ज़ ट्रेनिंग कैम्प के डायरेक्टर।
- सन् 1961 से हिमाचल प्रदेश से सुप्रीम कोर्ट के कानूनी सलाहकार।
- 1 जुलाई, 1963 को क्षेत्रीय परिषद् की समाप्ति पर मंत्रिमण्डल की बहाली और पुनः हिमाचल प्रदेश के मुख्यमंत्री।
- 1965 में उन्हें जर्मनी द्वारा निमंत्रण।
- सन् 1966 में पंजाब के पहाड़ी इलाकों का हिमाचल में विलय करवाकर विशाल हिमाचल का गठन।
- सन् 1971 में अमेरिका, यू.के., कनाडा, जापान, इटली, सिंगापुर, मलेशिया, लेबनान तथा ग्रीस आदि देशों का दौरा।
- सन् 1971 में मुख्यमंत्रित्वकाल में हिमाचल प्रदेश को पूर्ण राज्य का दर्जा।
- 24 जनवरी, 1977 को हिमाचल प्रदेश के मुख्यमंत्री पद से इस्तीफा।
- 2 मई, 1981 को देहावसान।

(हिमाचल निर्माता डॉ. यशवंत सिंह परमार,
हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी पुस्तक से साभार)

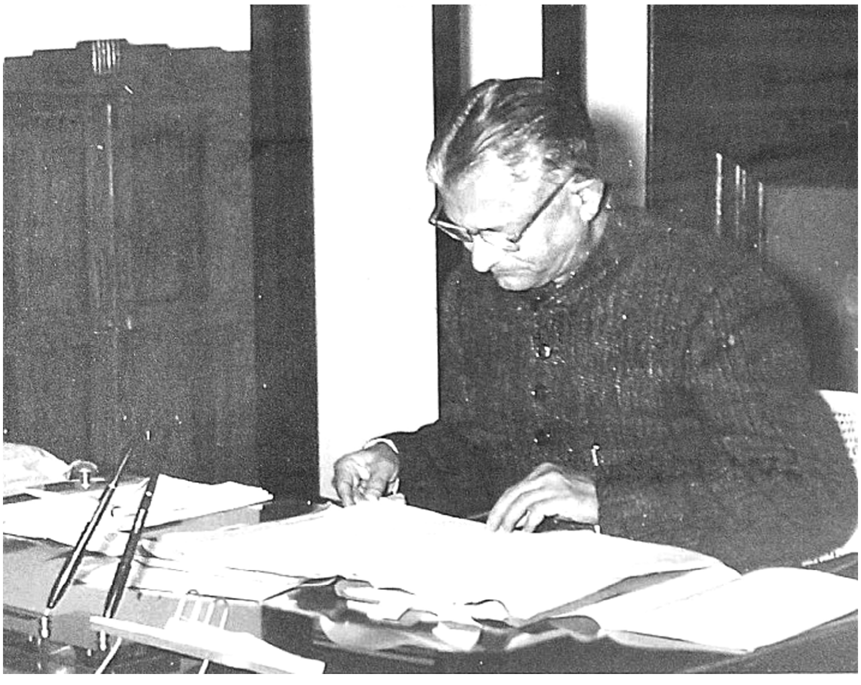

मुख्यमंत्री कार्यालय में सरकारी काम-काज में व्यस्त डॉ. यशवंत सिंह परमार

आकाशवाणी के शिमला केन्द्र में संदेश की रिकॉडिंग करवाते हुए डॉ. परमार।

जिला सिरमौर के बागथन गांव में डॉ. परमार का घर

पंजीयक-समाचार पत्र, भारत सरकार द्वारा पंजीकृत संख्या : 42497/85

निदेशक, भाषा एवं संस्कृति विभाग, हि.प्र., शिमला-171009 द्वारा प्रकाशित तथा नियन्त्रक, मुद्रण एवं लेखन सामग्री विभाग, शिमला-5 द्वारा मुद्रित। मुख्य संपादक : डॉ. पंकज ललित